वाजिद्अली शाह

और

अवध राज्य का पतन

लेखक

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

[सन् सत्तावन की क्रान्ति, नाना फड़नवीस, चालीस दिन की कहानी, छः सप्ताह की बात, कहासुनी, ऐसा-वैसा, रूप और रुपया, आदि के रचयिता]

प्रकाशन-शाखा

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रकाशक
प्रकाशन शाखा
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
जनवरी १९५९

मूल्य : रु० ४.५०

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

उन्नीसवीं शती के मध्य में जब अंगरेजों ने सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार जमा लिया था, भारतीय जन-आत्मा अपनी स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए कसमसा उठी थी, सर्वत्र एक बेचैनी थी, इस महान् राष्ट्र की जनता में विप्लव की आग धीमे-धीमे धधक रही थी, भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का प्रथम अभियान अपने-आप आयोजित हो रहा था और इसका विस्फोट हुआ १८५७ के विद्रोह के रूप में। विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय जनता के इस विद्रोह को, स्वतंत्रता-संग्राम के इस प्रथम विस्फोट को, केवल सिपाही-गदर कह कर छिपाने का प्रयास किया है।

सौ वर्षों के इतिहास के पृष्ठ इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, उनको एकत्र सजाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे उस समय की जनभावना और जन-नायकों के प्रयासों पर प्रकाश पड़ सके। इसी उद्देश्य से उत्तर प्रदेश सरकार ने इतिहास-विज्ञों की एक समिति नियुक्त की है जो उस काल की आधार-सामग्री का संचय कर रही है। इस सामग्री का कुछ अंश हम 'फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश' नाम से तीन खण्डों में प्रकाशित कर चुके हैं। 'स्वतंत्र दिल्ली' और 'संघर्ष-कालीन नेताओं की जीवनियां' भी इसी क्रम के प्रकाशन हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी उसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर हमारा नया कदम है। आशा है, पाठक इसका स्वागत करेंगे।

भगवतीशरण सिंह
सूचना संचालक

निवेदन

इस महत्वपूर्ण विषय पर एक बड़ी प्रस्तावना अथवा भूमिका लिखनी चाहिए थी, उसकी आवश्यकता थी या नहीं, इसका निर्णय पाठक स्वयं करेंगे। यहां तो मुझे केवल दो : चार बातें ही निवेदन करनी हैं।

पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि मुझे अवध के अंतिम नरेश वाजिदअली शाह की जीवनी तथा अवध में नवाबी शासन के अन्तिम दिनों पर प्रकाश डालना था। इसलिए विषय प्रवेश के लिए, अवध में नवाब वज़ीर के शासन का प्रारम्भ तथा विकास और वाजिदअली शाह के गद्दी पर बैठने तक का इतिहास प्रस्तावना में दिया जाता।

पर, दुर्भाग्यवश पिछले १००-२०० वर्ष पूर्व के अवध का साधिकारिक इतिहास अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। बादशाह वाजिदअली शाह तथा अवध की आज़ादी के अन्तिम दिनों की घटनाओं तथा उनके कारण की श्रृंखला मध्य अठारहवीं तथा तीन चौथाई उन्नीसवीं सदी के समूचे इतिहास के साथ ऐसी जुड़ी हुई है कि हमने यही उचित समझा कि संक्षेप में अवध का इतिहास तथा विशेषतः उन संधियों का इतिहास, जिनके शिकार वाजिदअली शाह हुए—मूल पुस्तक में सम्मिलित कर दिया जाय। परिस्थितियों से वास्तविक परिचय कराने के लिए स्थान-स्थान पर तत्कालीन भारतीय इतिहास का भी हवाला दे दिया गया है। इसलिए, पाठकों की अनुमति से, इसे सन् १७५९ से १८५९ तक के युग का इतिहास भी कह सकते हैं।

सन् १९५५ में लन्दन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में कुछ प्राचीन फ़ारसी पुस्तकों को देखते-देखते यकायक एक मित्र से वाजिदअली शाह का ज़िक्र छिड़ गया। उसी सायंकाल यकायक मन में यह बात आयी कि अवध के अन्तिम नवाब की जीवनी लिखनी चाहिए। अंग्रेज़ों ने उस खुश खिसाल और खुश खुल्क़ (अच्छी खसलत और आदत) बादशाह को इतना बदनाम कर रखा है कि आज भी अधिकांश भारतीय उनको निकम्मा, विलासी, लम्पट, कामचोर तथा हीजड़ों और औरतों के हाथों में खेलने वाला राजा समझते हैं। उनके विषय में ऐसी गन्दी, बेहूदी तथा मनगढ़न्त कहानियां प्रचलित हैं कि यह एक आम मज़ाक़ है कि "आप तो पूरे वाजिदअली शाह हैं।"

पर, ऐसा सोचना उस महापुरुष के प्रति अन्याय होगा। जो लोग भाग्य तथा विधाता में विश्वास करते हैं उन्हें तो बादशाह के जीवन से यही पता चलेगा कि सब कुछ गुण तथा प्रतिभा होते हुए भी विधाता वाम हो तो कुछ नहीं वश चलता। वाजिदअली शाह बड़े साहसी, कर्मठ, मनस्वी, ईश्वर-भक्त तथा नेक-चलन व्यक्ति थे। उनमें दूरदर्शिता का अभाव था, वे अपने पूर्वजों के समय से संचित दरबारी षड्यंत्र तथा विनाश काल के समय उत्पन्न आपसी फूट के भले ही शिकार रहे हों, पर न तो उनमें शासन करने की प्रतिभा में कमी थी, न आलस्य था। पर, ईस्ट इंडिया कम्पनी का उठता हुआ सूर्य उनके सितारे को अस्त कर गया। राजनीति में वे असफल हुए, पर अपनी असफलता में निश्चेष्ट नहीं हो गये। ज्यों-ज्यों उनका राजकाज करना असम्भव हो गया, वे साहित्य, कला, गायन-वादन, पुस्तक-प्रेम, संग्रहालय, पुस्तकालय, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य तथा सांस्कृतिक ऐक्य, नाटक लीला——इन सब कार्यों की नयी ज्योति जगाने में लग गये और भारतीय कला तथा संस्कृति की रक्षा का उन्होंने महान कार्य किया था। राजनीति की निराशा तथा उलझनों से जी बहलाने के लिए उन्होंने ६०-७० पत्नियां बना ली थीं, पर कभी किसी भले घर की लड़की की ओर बुरी दृष्टि डालना, जबर्दस्ती उप-पत्नी बना लेना या ग़ैर मुसलिम लड़की से सम्बंध करना उन्होंने सीखा ही नहीं था। उनकी एक भी रखेल नहीं थी। जो थीं, वे बाक़ायदा विवाहिता थीं। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनमें साम्प्रदायिकता छू तक नहीं गयी थी। वे कट्टर "हिन्दोस्तानी" थे।

उस युग का इतिहास प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पर फ़ारसी या उस ज़माने की उर्दू समझने वाले के लिए उन किताबों, पर्चों, दस्तावेज़ों तथा सनदों की ढेर में से काफ़ी मसाला निकाल लेना आसान है। पर, मैं फ़ारसी जानता नहीं। उर्दू मुझे उतनी ही आती है जितना वाजिदअली शाह को अरबी। पुस्तकें भी एक स्थान पर प्राप्य नहीं हैं। मांगना, प्राप्त करना, पढ़ना, सुनना, अनुवाद कराना, यदि पुस्तक अपने स्थान से न हट सकती हो तो उस स्थान तक पहुंचना——यह सब बड़ा लम्बा, कठिन तथा वर्षों के परिश्रम का कार्य था। कुछ तय भी नहीं हो पा रहा था कि कहां से अध्ययन की शुरुआत की जाय। ऐसे संकट के समय उत्तर प्रदेश सरकार की स्वतंत्रता संग्राम इतिहास परामर्श समिति के सचिव डा० एस० ए० ए० रिज़वी का परिचय मुझे प्राप्त हुआ और उन्होंने मेजर बर्ड लिखित "अवध में डाकाज़नी", कर्नल स्लीमन की दुर्लभ डायरी, बादशाह का कम्पनी के नाम उत्तर——यह अमूल्य सामग्री भेजी। इसके बाद सवानेह सलातीने अवध प्राप्त हुई। पिछली

दो पुस्तकों को—फिर उसके बाद एक के बाद दूसरी जो पुस्तकें प्राप्त होती गयीं, उनमें फ़ारसी तथा कठिन उर्दू की पुस्तकों को पढ़ने के लिए मुझे कई मित्रों से सहायता लेनी पड़ी। हलीम मुसलिम इंटर कालेज के अध्यापक मौलवी मुहम्मद यहिया, चमनगंज, कानपुर के उदीयमान शायर तथा कांग्रेस कार्यकर्त्ता श्री अब्दुल रहमान खां 'नश्तर' तथा रामपुर के रज़ा कालेज के उप-आचार्य श्री अब्दुल रसूल खां "मस्त" से मुझे बड़ी सहायता मिली। श्री मस्त ने रामपुर की "रज़ा लाइब्रेरी" में जाकर पर्याप्त सामग्री संकलित करने का कष्ट किया। हुसेनाबाद ट्रस्ट तथा शाहनजफ ट्रस्ट के सेक्रेटरी ने भी काफ़ी सामग्री दिलायी। सबसे बड़ा काम उन्होंने यह किया कि मेरे पास कुछ ऐसे पुराने बुजुर्गों को लिवा लाये जिनकी ज़बानी बातचीत से बहुत सी बातें मालूम हो गयीं। मैं इन सब साथियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

पुस्तक की भाषा के संबंध में भी निवेदन कर दूं। बहुत से स्थानों पर मैंने पुस्तकों के मूल वाक्य या शब्द उद्धृत कर दिये हैं। फ़ारसी तथा कठिन उर्दू का ज्ञान न होने के कारण सम्भव है एकाध शब्द ग़लत भी हों, पर चेष्टा तो यह की गयी है कि कोई भूल न होने पाये। पुस्तकों के उद्धरण के सम्बंध में मैंने पुस्तकों की सूची के साथ एक नोट लगा दिया है। उससे यह भी कई बातें साफ़ हो जायेंगी। पुस्तक का विषय काफ़ी "नाज़ुक" है अतएव स्थान-स्थान पर उद्धरण देना पड़ा है। स्लीमन उस समय रेसिडेन्ट थे जब अवध की गद्दी हड़पने का षड्यन्त्र कलकत्ता में हो रहा था। मेजर बर्ड रेसिडेन्ट के सहायक थे, बाद में बादशाह के वकील हो गये थे। उन्होंने अनेक स्थानों से बादशाह के पक्ष में आधिकारिक प्रमाण एकत्रित किया था। वे प्रमाण भी काफ़ी काम के हैं। अतएव स्लीमन के तर्कों का उत्तर बादशाह ने स्वयं तथा मेजर बर्ड ने दिया है। इनका उद्धरण हमको बार-बार देना पड़ा है। सवानेह सलातीने अवध उस समय का बड़ा क्रमबद्ध इतिहास है। उससे भी काफ़ी सहायता ली गयी है। मैंने चेष्टा अवश्य की है कि पुस्तक में जो कुछ लिखा जाय, वह प्रामाणिक तथा प्रमाणित हो।

पुस्तक की शैली के सम्बंध में निवेदन है कि मैंने सरस तथा सूचनापूर्ण बनाने के लिए चेष्टा की है कि एक विषय पर एक ही स्थान पर सब बातें आ जायँ। पर ऐसा करने में कहीं-कहीं यह भी दोष आ गया है कि कुछ बातें दुहरा देनी पड़ी हैं। किन्तु, इससे विषय की पुष्टि हुई है, हानि नहीं।

एक बात और स्पष्ट कर दूं। स्थान-स्थान पर ऐसे सम्भ्रान्त परिवारों का ज़िक्र आया है जिनके वंशज आज भी समाज में अच्छे पद पर हैं तथा देश की सेवा

कर रहे हैं। तत्कालीन इतिहास में उन परिवारों के सम्बंध में जितनी निष्पक्ष बातें मिल सकीं, वे निष्पक्ष रूप से दी गयी हैं। पुराने ताल्लुक़दारों का वर्णन हो या हनुमानगढ़ी की घटना का––केवल उद्धरण मात्र है। लेखक ने उन पर अपनी कोई सम्मति देने की धृष्टता नहीं की है।

यों तो पुस्तक के विषय में, इसकी त्रुटियों के विषय में मुझे बहुत कुछ लिखना चाहिए किन्तु, यदि मैं विज्ञ पाठकों से जाने-अनजाने की भूलों के लिए क्षमा मांग लूं तो यह काम भी हल्का हो जायगा।

आशा है भारत के इतिहास के नव-शोधन कार्य में इस पुस्तक द्वारा भी कुछ योगदान होगा।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा

जालिपादेवी, वाराणसी
रक्षाबंधन, २०१५

विषय-सूची

अध्याय एक

अवध में नवाब वज़ीर के शासन का प्रारंभ

दिल्ली दरबार के सूबेदार

ईसवीय सन् १७२० में दिल्ली के मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह ने मुहम्मद अमी नामक एक सौदागर से प्रसन्न होकर उनको आगरा का सूबेदार बनाकर भेजा था। मुहम्मद अमी उर्फ़ सआदत ख़ां अवध राज के प्रथम शासक तथा "नवाब" थे। ४ फरवरी, १८५६ को लखनऊ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के रेसिडेन्ट (राजदूत) जेनरल आउट्रम सुबह आठ बजे "ज़र्द महल" पहुंचे और "अबुल मुज़फ़्फ़र नासिरुद्दीन सिकंदर जाह बादशाहे आदिल, क़ैसरे-ज़मां, सुलताने आलम वाजिद अली शाह बादशाह" को सूचना दी कि "अवध की प्रजा पर सु-शासन की भावना से प्रेरित होकर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अवध का शासन अपने हाथों में ले लिया है और बादशाह गद्दी से उतार दिये गये।"

१३ मार्च, १८५६ को अपने फूफा नवाब हिशामुद्दौला को अपना "मुख़्तार-आम" नियुक्त कर बादशाह ने लखनऊ सदा के लिए छोड़ दिया। अपने साथ वे अवध के सुनहले दिन तथा हास-विलास को भी समेट ले गये।

नवाब वाजिद अली अवध के ग्यारहवें नवाब थे। पिछले पांच नवाब "बादशाह" का ख़िताब पा चुके थे। अवध में नवाब-वज़ीर या बादशाहत, यानी नवाबी शासन कुल १३६ साल, ३ महीना, २४ दिन रहा—इस युग में बादशाहत ३७ साल तक रही। नवाब वज़ीर गाज़ीउद्दीन हैदर को अंग्रेज़ों ने रुपये की लालच में सन् १८१९ में "बादशाह" का "ख़िताब" दिया था।

मुग़ल साम्राज्य के अंतिम दिनों में अवध की सलतनत उभड़ी, बनी और पनपी थी। मुग़ल सम्राट निर्जीव, बेकस तथा भूखे-नंगे हो रहे थे। बादशाह आलमगीर द्वितीय को भूखों मरना पड़ा। उनके जनानख़ाने में तीन दिन तक चूल्हे में आग न पड़ी अतएव भूख से व्याकुल होकर शहज़ादियां पर्दा छोड़कर

रोटी की तलाश में शहर भाग आयीं ?[१]

मुहम्मद शाह के शासनकाल में सलतनत की बची-खुची शक्ति भी समाप्त सी हो गयी। निज़ामुलमुल्क ने दक्षिण के छः सूबों पर अपना अधिकार स्थापित कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। अलीवर्दी ख़ाँ बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के नवाब बन बैठे थे।

मुहम्मदशाह ने सय्यद मुहम्मद अमीं ऊर्फ सआदत ख़ां "बुरहानुलमुल्क" को ३ नवम्बर सन् १७२० में आगरा का सूबेदार तैनात किया था। कुछ समय बाद आगरा अवध की सूबेदारी में शामिल हुआ और फिर "अवध" सूबा ही बन गया। सआदत ख़ां बुरहानुलमुल्क सन् १७३९ तक सूबेदार रहे। इन्होंने दिल्ली में आत्म-हत्या करली और इनके बाद इनके पुत्र नवाब अल मंसूर ख़ां सफदरजंग सूबे-दारी की गद्दी पर बैठे। बादशाह दिल्ली ने सूबेदार को "नवाब वज़ीर" का ख़िताव दे रखा था। सन् १८१९ में गवर्नर जेनरल लार्ड मायरा की "सलाह" से बादशाह दिल्ली ने "नवाब वज़ीर" को "बादशाह" की उपाधि प्रदान की थी।

अवध के "नवाबों" की तालिका इस प्रकार है :—

१.	सय्यद मुहम्मद अमीं ऊर्फ सआदत ख़ां	सन् १७२० से	१७३९
२.	नवाब अलमंसूर ख़ां सफ़दरजंग	१७३९	१७५६
३.	शुजाउद्दौला	१७५६	१७७६
४.	आसफ़ुद्दौला	१७७६	१७९७
५.	मिर्ज़ा अली उर्फ़ वज़ीर अली	१७९७	१७९८
६.	नवाब सआदतअली ख़ां	१७९८	१८१४
७.	बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर	१८१४	१८२७
८.	नसीरुद्दीन हैदर	१८२७	१८३७
९.	मुहम्मदअली शाह	१८३७	१८४२
१०.	अमजदअली शाह	१८४२	१८४७
११.	वाजिदअली शाह	१८४७	१८५६

'अवध' और नवाबी शासन का प्रारम्भ

जिस सूबे का इतिहास हम लिखने जा रहे हैं, उसका नाम "अवध" कैसे पड़ा, इस सम्बन्ध में भिन्न धारणाएँ हैं। अधिकांश पश्चिमी तथा भारतीय लेखकों की

१. जदुनाथ सरकार

राय मिलती है कि प्राचीन युग के रामराज्य के नाम पर ही "अवध" नाम पड़ा। सन् १८४७-४८ में लखनऊ के रेसिडेन्ट के सहकारी मेजर बर्ड ने अपनी पुस्तक में[1] रामायण (वाल्मीकि) का उदाहरण देकर अवध की महत्ता सिद्ध की है। मेजर बर्ड के अनुसार नवाब बादशाहों के अधीन अवध (सन् १८५५ में) का क्षेत्रफल २४,००० वर्ग मील था तथा जनसंख्या ५०,००,००० थी। आज भी हम उत्तर प्रदेश के जिस भाग को "अवध" कहते हैं, उसका क्षेत्रफल वही है पर जनसंख्या बढ़कर लगभग सवा दो करोड़ हो गयी है।

अवध की भूमि इतनी उर्वर तथा प्रदेश इतना हराभरा है और था कि विदेशी इसे "भारतवर्ष का उद्यान" कहते थे। मेजर बर्ड ने भी इसे "हिन्दोस्तान का चमन" लिखा है। सन् १८४७ से १८५६ तक लखनऊ में कम्पनी सरकार की ओर से रेसिडेन्ट (राजदूत) कर्नल स्लीमन ने अपनी पुस्तक में[2] लिखा है कि उनको एक ईरानी मिला जो कई साल से लखनऊ में रहता था। स्लीमन ने उससे पूछा कि तुम अपना स्वदेश छोड़कर यहां क्यों पड़े हो। उसने उत्तर दिया कि ऐसा चमन संसार में और कहां मिलेगा।

इसी सूबे पर सन् १७२० में, मुहम्मद अमीन सआदत खां की सूबेदारी शुरू हुई। मुहम्मद अमीन नैशापुर के ईरानी सौदागर थे। बादशाह मुहम्मद शाह के दरबार में इनकी पहुँच हो गयी और उनसे घनिष्टता भी हो गयी। दरबार में प्रभाव बढ़ा और पहले आगरा की सूबेदारी मिली जिससे अवध की "सूबेदारी" तथा "नवाब-वज़ीर" का पद उन्हें सन् १७३२ में प्राप्त हुआ। मुहम्मद अमीन को नवाब "बुरहानुलमुल्क" का ख़िताब बादशाह ने दिया। पर, मुहम्मद अमीन सआदत खां बुरहानुलमुल्क ने नादिरशाह के हमले से घबड़ाकर और यह सोचकर कि उनकी बहुत सी ग़लतियां पकड़ी जायँगी, सन् १७३९ में आत्महत्या करली।

1. Dacoities in excelsis or the spoliation of Oude by the East India Company—published by J. R. Taylor, 54, Chancery lane, London—**लेखक, मेजर बर्ड**

2. Journey through the kingdom of Oude—in 1849-50. Maj-Gen. Sir W. H. Sleeman, K. C. B., Resident at the court of Lucknow. Pub. London-Richard Bentley, Publishers in ordinary to Her Majesty.

उनके उत्तराधिकारी तथा पुत्र नवाब सफदरजंग का १७ वर्ष का शासनकाल सुख और शान्ति का था। यह सुख और शान्ति युगों तक कायम रहती यदि "भारत वर्ष का उद्यान", "हिन्दुस्तान का चमन" ईस्ट इंडिया कम्पनी की ललचायी आंखों के सामने न पड़ जाता। भारतवर्ष अपनी स्वाधीनता १२ वीं सदी में ही खो चुका था जब मुहम्मद गोरी ने दिल्ली के ऊपर अपना झंडा फहराकर अपने प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली का शासक नियुक्त किया था। पर थोड़े ही दिनों में जो बाहर से आये थे वे भी तथा यहां मुसलमान धर्म ग्रहण करने वाले भी—सब इस प्रकार हिल मिल गये कि "विदेशी" रह ही नहीं गये थे। वे शुद्ध भारतीय थे। अनेक मुस्लिम शासकों ने हिन्दू-समाज को बहुत ऊँचे उठाया, उसे पनपने का पर्याप्त अवसर दिया तथा हिन्दू-मुसलमान को वे बराबर समझते थे। हिन्दू-मुसलिम एकता तथा आदर्श धर्म-निरपेक्ष शासन अवध के नवाब-वज़ीरों या बादशाहों का था। नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला ने जब सन् १७७३ में अंग्रेज़ों से संधि करली और अपने राज्य में ब्रिटिश सेना रखना स्वीकार कर लिया तो इस समाचार से दुःखी होकर अंग्रेज़ों के कट्टर शत्रु, मैसूर के स्वामी हैदरअली ने उन्हें एक पत्र लिखकर "ईसाई पल्टन" रखने पर आपत्ति की थी। श्री शुजाउद्दौला ने उन्हें उत्तर दिया था कि—"मैं इस देश का राजा हूँ। मेरी प्रजा में सभी मज़हब के लोग हैं। राजा को यदि न्यायोचित शासन करना है तो उसका कोई मज़हब नहीं होना चाहिए—राजकाज में मज़हबी मामले निजी वस्तु हैं। उनसे और शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है।"[1]

पर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जिस दिन से भारत में पैर रखा, उसने अपनी नीति ही बनाली थी कि हिन्दू-मुसलमानों में बराबर झगड़ा होता रहे। अवध की हुकूमत से ईस्ट इंडिया कम्पनी को एक बहुत बड़ी शिकायत यह भी थी कि यहां के लोगों में, हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा मेल था, बड़ा अमन चैन था जबकि ब्रिटिश यानी कम्पनी की अमलदारी में रोज़ झगड़ लगे रहते थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

सन् १५८५ में कुछ ब्रिटिश यात्री भारत आये थे। बंगाल घूमने के बाद इस देश का वैभव तथा व्यापार की गुन्जायश का इनको अनुमान लगते ही इन्होंने

१. कर्नल स्लीमन की डायरी—भाग १

भारत से सम्पर्क स्थापित करने का निश्चय किया। सन् १६०१ में ब्रिटेन की महारानी एलिज़ेबेथ ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत से व्यापार करने का अनुमति-पत्र दिया। सन् १६३४ में बादशाह शाहजहां ने कम्पनी को यह फ़रमान दिया कि समुद्र के मार्ग से बंगाल से "तिजारत" कर सकते हैं और तट के निकट व्यापार की कोठी यानी फैक्टरी खोल सकते हैं। सन् १६५२ में बादशाह शाहजहां ने कम्पनी को समूचे बंगाल में व्यापार करने की अनुमति दे दी। बादशाह औरंगज़ेब ने सन् १६६६ में कम्पनी के सौदागरों को हथियार रखने की अनुमति दे दी।

औरंगज़ेब के दक्षिण भारत के युद्धों में फंस जाने के कारण बंगाल पर दिल्ली सरकार का प्रभाव कम हो गया था और बंगाल के सूबेदार "नवाब" बन बैठे थे। नवाब ने अंग्रेज़ों की खुशामद से प्रसन्न होकर सन् १६९६ में वह स्थान जहां पर आज कलकत्ता बसा हुआ है, कम्पनी को "अपना कारोबार" करने के लिए दे दिया। सन् १६९९ में अंग्रेज़ों का पहला भारतीय दुर्ग "फ़ोर्ट विलियम" निर्मित हुआ। सन् १७१७ में बादशाह फ़र्रुख़सियर, दिल्ली के दुर्बल नरेश ने एक फ़र्मान जारी कर कम्पनी को तब तक के प्राप्त सभी अधिकारों को दुहराया था। उसपर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी।

सन् १७५६ में नवाब अलीवर्दी ख़ां की गद्दी पर उनके पौत्र सिराजुद्दौला बैठे। बंगाल के इस प्रतिभाशाली पर अभागे नवाब ने स्वदेश के व्यापारियों को तबाह होने से बचाने के लिए अंग्रेज़ों को कलकत्ता से निकाल दिया और उनसे कलकत्ता छीन लिया। पर २ जनवरी १७५७ को लार्ड क्लाइव ने सिराजुदौला को युद्ध में पराजित किया और पहली बार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को यह महत्व प्राप्त हुआ कि वह इतने बड़े शासक से "संधि" कर सके। सिराजुद्दौला के साथ यह पहली संधि हुई।

किन्तु सिराजुद्दौला और अंग्रेज़, दोनों ही एक दूसरे से घृणा करते थे और अपनी घात में थे। २३ जून, १७५७ को प्लासी में युद्ध का नाटक हुआ। वास्तव में युद्ध हुआ ही नहीं। सिराजुद्दौला के सेनापति मीर जाफ़र अंग्रेज़ों से मिल गये। नवाब की पराजय या उनके साथ विश्वासघात के बाद मीर जाफ़र गद्दी पर बैठे।

जब मीर जाफ़र भी कम्पनी का विष न निगल सके तो अंग्रेज़ों ने १७६० में उनको भी गद्दी से उतार दिया और उनके स्थान पर मीर कासिम नवाब बनाये गये। कल जो सौदागर नवाब के दरबार में हाथ बांधे, भीख मांगते हुए खड़े रहते थे आज इतने बलशाली हो गये कि एक के बाद दूसरा नवाब गद्दी पर बिठाने और उतारने लगे। मीर क़ासिम से भी कम्पनी की पटरी न बैठी। कम्पनी चाहती थी

कि बंगाल का समूचा व्यापार उसके हाथ में आ जाय और नवाव से अपने देश के व्यापारियों का भूखों मरना न देखा गया।

मीर क़ासिम

स्व० श्री हरिहरनाथ शास्त्री अपनी पुस्तक[1] 'मीर क़ासिम' में लिखते हैं :—

"अंग्रेज़ व्यापारियों के अत्याचारों को देखते-देखते नवाब मीर क़ासिम कितने अधिक उद्विग्न हो गये थे, उनके दुःसाहस को सहन करते-करते वह कितने तंग आ गये थे, इसका पता पाठकों को इन पत्रों से मिल सकता है :—

५ मार्च सन् १७६३ के पत्र में नवाब एक स्थान पर लिखते हैं :—"मेरा देश नष्ट हो रहा है किन्तु मैं एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता। मेरे अफ़सरों के विरुद्ध अंग्रेजी फ़ौज़ भेजी जाती है। ऐसी दशा में मुझे मालूम नहीं होता कि मैं किस प्रकार राज्यकार्य का सञ्चालन करूँ। जबकि कलकत्ता कौंसिल इस प्रकार के नियम वना रही है तो ऐसी अवस्था में मेरा शासन-भार वहन करना सम्भव नहीं है......"

उस समय के गवर्नर वानसीटार्ट तथा नवाब से पत्र-व्यवहार होते रहे। ११ अप्रैल, १७६३ को नवाब ने गवर्नर वानसीटार्ट को उनके इस आदेश के उत्तर में कि नवाब से बातें करने के लिए अमियाट तथा हे साहब भेजे जाने वाले हैं, यह उत्तर लिखा था कि :—

"यदि मिस्टर हे और अमियाट केवल यात्रा के विचार से यहां आयें तो मेरा घर उन्हीं का है। परन्तु मैं आपको बतला देना चाहता हूं कि उन लोगों का यहां आना मुझे तभी स्वीकार है जब वे केवल थोड़े से ज़रूरी आदमियों को लेकर आयें।"

अमियाट और हे नवाब से मिलन आये पर उनका उद्देश्य था नवाब का सर इतना कुचल देना कि वे फिर कम्पनी के व्यापार में अड़ंगा न लगा सकें। अंत में युद्ध ठन ही गया। अंग्रेज़ों ने पटना अपने हाथ में कर लिया पर वहां से नवाब की सेना ने उन्हें मार कर भगा दिया।[2] अमियाट भी मारे गये। कम्पनी के कर्मचारी वहुत क्रुद्ध हो उठे। १८ जून १७६३ को कम्पनी की कलकत्ता कौंसिल ने मीर क़ासिम से युद्ध करने का निश्चय किया। कतवा, सूती और अज़ीमाबाद

१. मीर कासिम—हरिहरनाथ शास्त्री, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।

२. सियरुल मुतअख़्ख़रीन, भाग २।

के युद्ध में भारतीयों के आपसी जलन के कारण ही नवाब की सेना पराजित हुई। पर अक्टूबर १७६३ में उदवानाला की पराजय के बाद नवाब का सब हौसला पस्त हो गया और वे भागकर अवध के नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला की शरण में आये। मीर कासिम को शरण देने के कारण ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंग्रेज बनियों के साथ अवध के नवाब वज़ीर का झगड़ा शुरू हुआ। मीर क़ासिम के नाम पर उनकी गद्दी स्वयं प्राप्त करने के लिए तथा बादशाह शाहआलम —दिल्ली नरेश—की टूटी प्रतिष्ठा तथा शक्ति को फिर से सजीव करने के लिए नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला के नेतृत्व में बक्सर (बिहार) के मैदान में अंग्रेजों से गहरी मुठभेड़ हुई और १५ सितम्बर, १७६४ को ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना ने दिल्ली के बादशाह, अवध के नवाब वजीर तथा बंगाल-बिहार के नवाब की सम्मिलित शक्ति को चकनाचूर कर दिया। अंग्रेज़ इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि वास्तव में भारत में अंग्रेज़ी राज्य बक्सर के युद्ध में उनकी विजय से प्रारम्भ हुआ।

अंग्रेज़ों का सौभाग्य

ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि भारत में वह उस समय पैर रख सकी जबकि भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। कई पाश्चात्य इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि अपने ३१ वर्ष के सुशासन में दिल्ली नरेश शाहजहां ने भारत में अत्यन्त समृद्धि तथा सुव्यवस्था उत्पन्न कर दी थी तथा वह काल "भारत के लिए स्वर्णयुग था।"[१] कम्पनी को बंगाल में व्यापार करने की अनुमति शाहजहाँ से मिली। बंगाल की आर्थिक दशा उस समय बहुत उन्नत थी। जनता में सुख तथा समृद्धि थी। बर्नियर लिखते हैं कि "बंगाल, जीवन की सभी आवश्यकताओं से भरापूरा था।"[२] इसलिए कम्पनी को पनपने का सुनहला अवसर मिला। और जब वह शक्तिशाली हो चली, दिल्ली का तख़्त तथा उसके मातहतों की हुकूमत कमज़ोर होने लगी। यदि औरंगज़ेब अपनी धार्मिक भूल के कारण गोलकुण्डा तथा बीजापुर की दक्षिण भारतीय, शिया सम्प्रदाय की मुस्लिम रियासतों पर आक्रमण न कर बैठते[३] तथा पश्चिमी और दक्षिण में मराठा शक्तियों से न घिर जाते[४] तो वे अपने लम्बे शासनकाल में अपनी पिता द्वारा प्राप्त हरे-भरे, सम्पन्न

१. डब्ल्यू० हंटर, एलफिस्टन, उलक्रेले, हेग आदि लेखक २. बर्नियर की भारत यात्रा, ३. आर० सी० मजुमदार, ४. डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड।

महान राज्य को न जाने कितना ऊँचे उठा ले जाते। पर, अंग्रेज़ों के सौभाग्य से औरंगज़ेब उनके लिए मैदान साफ करते गये थे। तीसरा कारण था कम्पनी की नीचता तथा विश्वासघात। भारतीय शासकों से मित्रता क़रके फिर उनके साथ विश्वासघात क़रना कम्पनी के लिए साधारण बात थी।

नवाब वाजिदअली शाह के ज़माने में कम्पनी के गवर्नर जेनरल लार्ड डलहौज़ी ने जिन नीचताओं और दुष्टताओं के बल पर अनेक राज्य हड़प लिये थे वह कार्य क्लाइव ने प्रारम्भ किया था और बंगाल के गवर्नर वानसीटार्ट ने बड़ी सफलतापूर्वक उसे आगे बढ़ाया था। प्रथम गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स ने तो विश्वासघातों में विशिष्टता प्राप्त कर ली थी।

सिराजुद्दौला, मीर जाफ़र, मीर क़ासिम आदि के साथ जो कुछ हुआ उससे अंग्रेज़ इतिहासकार भी लज्जित हैं। लायल[१] ने तो यहां तक कहा है कि अंग्रेज़ों पर अक्षम्य कलंक लगा है। माल्कम[२] गवर्नर वानसिटार्ट के शासन को भारत में ब्रिटिश इतिहास का सबसे रद्दी तथा लज्जाजनक समय मानते हैं। मेकाले[३] की भी कुछ ऐसी ही राय है।

वक्सर के युद्ध में नवाब वज़ीर ने मीर क़ासिम की सेना तथा उनका ख़ज़ाना तो लगा दिया था पर स्वयं क़ासिम को युद्ध के एक दिन पहले एक लंगड़ी हथिनी देकर भाग जाने का आदेश दिया था। शुजाउद्दौला बंगाल-बिहार का नवाब स्वयं बनना चाहते थे। इसलिए बादशाह शाहआलम को भी उन्होंने मिला रखा था ताकि दिल्ली नरेश को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर लाभ उठाया जाय। नवाब मीर क़ासिम भाग कर दर-दर की ठोकरें खाते फिरे और सन् १७७७ में दिल्ली की एक झोपड़ी में मरे पाये गये।

मीर क़ासिम को गद्दी से हटाकर मीर जाफ़र फिर नवाब बनाये गये। उनके बाद उनके पुत्र नज़ीमुद्दौला गद्दी पर बैठे। फरवरी १७६५ में।

बंगाल-बिहार पर अंग्रेज़ी शासन

इस कठपुतली नवाब के साथ अंग्रेज़ों ने दूसरी संधि की और "नायब नाज़िम" का पद क़ायम किया गया। बक्सर के युद्ध में पराजय के बाद बादशाह शाहआलम भी अंग्रेज़ों के हाथ की कठपुतली बन गये। फरवरी, १७६५ में अंग्रेज़ों ने उनके

१. अलफ्रेड लायल। २. जॉन माल्कम ३. लार्ड मैकाले।

साथ संधि की और बादशाह की ओर से बंगाल-बिहार की मालगुज़ारी निश्चित करने तथा वसूल करने का अधिकार यानी "दीवानी" ईस्ट इंडिया कम्पनी को मिल गयी। नवाब मीर जाफ़र को "नवाब नाज़िम" का ख़िताब मिला। फरवरी, १७६५ में मीर जाफ़र की मृत्यु हो गयी और उनके पुत्र नजीमुद्दौला ने "नायब नाज़िम" का पद कम्पनी के प्रतिनिधि मुहम्मद रज़ा ख़ां को दिया। पर, कम्पनी इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होने वाली थी। अगस्त १७६५ में इसी नवाब के साथ एक दूसरी संधि करके उनसे उनकी सेना का प्रबंध तथा फ़ौजदारी की अदालत भी ले ली गयी।

शाहआलम से "दीवानी" हासिल करते समय यह तय हुआ था कि बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी से २६ लाख रुपया शाही खजाने में और निज़ामत के प्रबंध के लिए रुपया देकर शेष रक़म कम्पनी अपने पास रख लेगी। निज़ामत के ख़र्च के लिए नवाब नाज़िम को ५३ लाख ८६ हज़ार १३१ रुपया ९ आने मिलना तय हुआ। १७६६ में नज़ीमुद्दौला मर गये। उनके भाई सफ़ुँद्दौला नवाब नाज़िम हुए। इनके समय में राज्य की रक्षा का समूचा भार अंग्रेज़ों को सौंप देना पड़ा तथा निज़ामत का ख़र्च घटाकर ४१,८६,१३१ रुपया ९ आना हो गया। २१ मार्च, १७७० को नवाब मुबारकुद्दौला के साथ एक दूसरी संधि करके निज़ामत का ख़र्च घटाकर ३१,८१,९९१ रुपया ९ आना कर दिया गया। इस नवाब की उम्र १२ वर्ष की थी। १७७२ में यह रक़म १६ लाख कर दी गयी। धीरे-धीरे नाम मात्र के नवाब अंग्रेज़ों के दास बनते गये। सन् १८३८ में मंसूर अली नवाब नाज़िम बने। इनसे अंग्रेजों से एकदम पटरी नहीं बैठती थी। सन् १८५४ में लार्ड डलहौज़ी ने इनके मकान पर पहरा बैठा दिया था और वे पुलिस की निगरानी में रहने लगे। सन् १८५७ में अंग्रेज़ों को गदर दबाने में कोई सहायता इनसे न मिली। १८६९ में ये इंगलैण्ड चले गये। सन् १८८० की संधि के अनुसार इनको "नवाब नाज़िम" का ख़िताब भी छोड़ना पड़ा। इनको "नवाब मुर्शिदाबाद" का पद मिला और सन् १७६५ में ५३ लाख रुपए की जो पेंशन शुरू हुई थी वह एक लाख पर—एक लाख रुपया वार्षिक पर समाप्त हो गयी। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के पतन की यह करुण गाथा है।

हमने बंगाल का इतिहास, संक्षेप में, इसी दृष्टि से दिया है कि पाठकों को ईस्ट इंडिया कम्पनी की तत्कालीन प्रगति, उसके अभ्युदय तथा उसके शासकों की नीयत और मनोवृत्ति का पता लग जाय। कम्पनी का शासन प्रारम्भ होने से जनता को किसी प्रकार का सुख या सहूलियत मिलती थी, यह बात नहीं है। कम्पनी

के हाथों में दीवानी तथा निज़ामत आ जाने से "बंगाल की जनता की दशा पहले से भी अधिक ख़राब हो गयी।"[१] वहां पर "भ्रष्टाचार और भ्रष्ट" हो गया[२] तथा मालगुज़ारी से आमदनी बढ़ाने के लोभ में कम्पनी ने किसानों का घोर दमन किया।"[३]

लार्ड क्लाइव के बाद वारेन हेस्टिंग्स कम्पनी के प्रधान शासक तथा प्रथम गवर्नर जेनरल बने। इनका शासनकाल अत्याचार तथा उत्पीड़न का भयानक युग रहा है। इन्हीं के शासन काल में बंगाल के नवाब के फ़ौजदार महाराजा नन्दकुमार को इसलिए फांसी पर लटकना पड़ा कि उनके विरुद्ध जालसाजी का एक झूठा मकद्दमा वारेन हेस्टिंग्स ने चलवाया था तथा प्रधान विचारपति इम्पे को मिला लिया था। नन्दकुमार का प्रथम अपराध यह था कि उन्होंने कम्पनी की कौंसिल में वारेन हेस्टिंग्स पर यह अभियोग लगाया था कि वे नवाब मीर जाफ़र की विधवा से साढ़े तीन लाख रुपया रिश्वत ले चुके थे। पश्चिमी लेखकों ने भी इस फांसी को "न्याय की हत्या"[४] या "आवश्यकता से अधिक कठोर"[५] या "वारेन हेस्टिंग्स को कलंकित करने वाला"[६] स्वीकार किया है।

जब शुजाउद्दौला बक्सर के युद्ध में हार गये तो उन्होंने बनारस के राजा बलवन्त सिंह से सहायता मांगी थी। राजा बलवन्तसिंह बड़े कुशल शासक थे। वे नवाब की दुर्बलता को समझ गये थे अतएव उन्होंने सहायता देना अस्वीकार किया। सन् १७७५ में फ़ैज़ाबाद की संधि के अनुसार उनके लड़के काशी नरेश चेतसिंह को ईस्ट इंडिया कम्पनी को २२॥ लाख रुपया देना था पर सन् १७७८ में वारेन हेस्टिंग्स ने ५ लाख रुपया अधिक मांगा। राजा ने विरोध करते हुए भी अदा कर दिया। १७७९ में फिर रुपया मांगा गया। राजा के चतुर दीवान बख़्शी सदानन्द ने किसी प्रकार मामला तय करा दिया। १७८० में पांच लाख रुपया तथा युद्ध के लिए २०,००० घुड़सवारों की मांग पेश की गयी। राजा बेचारे कहां से देते। अन्त में युद्ध तो होना ही था। पहले वारेन हेस्टिंग्स पिटे और फिर राजा की हार हुई। चेतसिंह काण्ड इतना लज्जाजनक तथा अनुचित था कि कम्पनी के लंदन के दफ़्तर ने भी उसे "अनुचित और अराजनैतिक"[७] स्वीकार किया था।

१. रिचार्ड बेशर

२. काये (Kaye)

३. रैमजेम्योर, ४. एच० बेवरिज, ५. पी० ई० राबर्ट्स, ६. जेम्स मिल, ७. बोर्ड ऑव डायरेक्टर्स।

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पिट ने इसे "बेरहम, अन्यायपूर्ण तथा अत्याचारपूर्ण"[१] कहा था।

वारेन हेस्टिंग्स पर दो गहरे आक्षेप और हैं— अवध की बेगमों पर अत्याचार तथा रुहेलों का संहार, हम इनका ज़िक्र आगे करेंगे।

तत्कालीन इतिहास की इतनी पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट हो गया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकमात्र लक्ष्य तथा उद्देश्य था भारत के हर कोने को लूट लेना तथा अधिक से अधिक द्रव्य प्राप्त करना। ऐसी लूट का वहुत कुछ रुपया कम्पनी के कर्मचारियों की जेब में रह जाता था तथा बची खुची रक़म लन्दन पहुंचती थी। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा ऐसे धनी प्रदेशों को हाथ में करने के वाद भारतवर्ष के "उद्यान" या चमन अवध की ओर ध्यान आकृष्ट होना अनिवार्य था और नवाब शुजाउद्दौला के साथ बक्सर के युद्ध के वाद जो पहली संधि सन् १७६५ में हुई, उसी से अवध को हड़पने क़ी शुरूआत हो गयी।

कम्पनी के शासक

वारेन हेस्टिंग्स के युद्ध तथा अन्यायपूर्ण शासन के बाद लार्ड कार्नवालिस ऐसे शान्त तथा सुधारक गवर्नर जेनरल आये। उन्होंने भूमि का स्थायी प्रबंध, शासन तथा न्याय-प्रणाली में सुधार तथा व्यापार के बारे में भी कुछ सुधार किये थे। भारतीय विद्वान श्री आर० सी० दत्त के कथनानुसार सन् १७९३ का स्थायी प्रबंध ब्रिटिश सरकार का सब से बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य था। पर, अधिकांश विदेशी इतिहासकारों ने इसकी निन्दा की है।[२]

थोड़े काल के लिए गवर्नर जेनरल बनने वाले लोगों का ज़िक्र करने का यहां स्थान नहीं है। प्रमुख अधिकारियों का परिचय करा देना उचित होगा। लार्ड कार्नवालिस के बाद लार्ड वेलेज़ली का महत्वपूर्ण शासन रहा। सन् १७९८ में वे नियुक्त हुए थे। उस समय भारत की राजनैतिक दशा बड़ी शोचनीय थी। छोटे छोटे राज्य तो आपस में लड़ ही रहे थे। मुगल, मैसूर, मराठे, निज़ाम, कर्नाटक, पंजाब में सिक्ख, दक्षिण में फ्रेन्च—सब एक दूसरे का गला काट रहे थे। स्वदेश तथा "भारतवर्ष" का ध्यान किसी को न था। उस स्थिति का वेलेज़ली ने लाभ

१. विलियम पिट
२. होम्ज़, बेवरिज, रैमज़ म्योर इत्यादि।

उठाया था। उस समय तक कम्पनी की सरकार देशी नरेशों के साथ कम से कम बराबरी का व्यवहार तो करती थी। वेलेज़ली ने "सहायक संधि" का सिद्धान्त चालू किया यानी अपनी रक्षा के लिए देशी नरेश कम्पनी की सरकार से संधि करते थे। कम्पनी इनकी रक्षा के लिए सैनिक सहायता देती थी। कम्पनी की सेना के ख़र्च-मद में या तो राज्य का कुछ अंश कम्पनी को मिल जाता या काफ़ी बड़ी रक़में प्राप्त होतीं। इस संधि से अंग्रेज़ों को बड़ा लाभ रहा। देशी राज्यों की सैनिक सहायता लेकर, अपनी सेना द्वारा वे नये-नये राज्य जीतते गये। जब देशी नरेशों की सेना न लेते तो उनसे धन लेकर उसी से अंग्रेज़ अपनी सेना संगठित करते गये। अन्त में ये देशी नरेश अंग्रेज़ों की मुट्ठी में हो जाते थे। सब से बड़ा लाभ कम्पनी को यह था कि संधि करने वाले देशी राज्यों की वैदेशिक नीति कम्पनी के नियंत्रण में आ जाती थी। ऐसी संधि में नीचे लिखी शर्तों का पालन करना पड़ता:—

१. राज्य की विदेशी नीति कम्पनी से पूछकर निर्धारित की जायगी।
२. राज्य के ख़र्च पर कम्पनी की एक सेना अपने यहां रखनी पड़ेगी।
३. कम्पनी का एक रेसिडेन्ट निरीक्षक के रूप में अपनी राजधानी में रखना होगा।
४. किसी अन्य यूरोपियन (ब्रिटिश को छोड़ कर) को अपने राज्य में रखने, आने देने या नियुक्त करने के पहले कम्पनी की सरकार से अनुमति लेनी पड़ेगी।

इस संधि[१] के द्वारा कम्पनी की सरकार बराबरी के स्थान से ऊपर उठकर संरक्षक, अभिभावक तथा साम्राज्यवादी बन गयी।[२] डलहौज़ी के कुचक्र से दर्जनों देशी नरेश पदच्युत न होते तथा उनका राज्य ब्रिटिश (कम्पनी) सरकार में मिला लेना सरल न होता यदि उनसे ५० वर्ष पहले लार्ड वेलेज़ली ने "सहायक संधि" का सूत्रपात न किया होता। अवध का राज्य भी इसी संधि के द्वारा समाप्त हो गया।

भारत में बहुत कुछ उत्पात करके जब वेलेज़ली चले गये तो अपनी नीति के अनुसार अंग्रेज़ों ने लार्ड विलियम बेंटिक ऐसे सज्जन तथा कर्मठ व्यक्ति को भारत भेजा। अपने सात वर्ष के शासनकाल में बेंटिक ने सती-प्रथा का अन्त, नर-बलि

१. Subsidiary Alliance.
२. विंसेंट स्मिथ, लायल, मजुमदार इत्यादि।

की मनाही, सरकारी कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ता में कमी, लगान की समुचित वसूली तथा सर्वप्रथम भारतीयों की उच्च स्थानों पर नियुक्ति आदि बड़े-बड़े कार्य किये थे। इस कुशल शासक ने कम्पनी के प्रति बढ़ते हुए विद्वेष की आग को थोड़े समय के लिए रोक दिया। बेंटिक की बहुतों ने तारीफ़ क़ी है।[1]

वेलेज़ली के बाद उल्लेखनीय गवर्नर जेनरल लार्ड डलहौज़ी थे। सन् १८५२ तक। जिन दिनों अवध में नवाब वाजिदअली शाह का शासन था, इन्होंने पंजाब, (सिक्ख) सिक्किम तथा बर्मा (ब्रह्मा) को ब्रिटिश राज्य में युद्ध करके मिला लिया था। कम्पनी के प्रभाव क्षेत्र अथवा अधीन राज्यों में उन्होंने यह नियम चालू किया कि जो राजा सन्तानहीन होगा वह न तो गोद ले सकता है और न बिना कम्पनी की स्वीकृति के अपना राज्य किसी दूसरे राज्य में मिला सकता है। इसी सिद्धान्त के अंतर्गत सतारा, झांसी, नागपुर, सम्भलपुर, जैतपुर, बघात आदि राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंग बन गये। बरार भी समाप्त हुआ।

अवध को समाप्त कर वेलेजली द्वारा प्रारम्भ किये गये साम्राज्य-विस्तार के यज्ञ में डलहौज़ी ने पूर्ण आहुति दे दी। भारत की स्वतन्त्रता लुप्त हो गयी और जिस भूमि से इसका लोप हुआ था—अवध, लखनऊ, कानपुर आदि—उसी भूमि से सन् १८५७ में स्वाधीनता की चिनगारियां पुनः फूट निकलीं।

शुजाउद्दौला का दुर्भाग्य

शुजाउद्दौला अवध के तीसरे नवाव वज़ीर थे। उनके पहले के दो शासकों का शासन-काल उल्लेखनीय नहीं है। राज्य के संस्थापक नवाब बुरहानुलमुल्क ने आगरा के बाद फ़ैज़ाबाद को अपनी राजधानी बनाया था। वे लखनऊ भी आये थे। उस समय लखनऊ गोमती के तट पर एक छोटा-सा क़स्बा था। प्रथम नवाब को जगह पसन्द आयी और वहां पर उन्होंने कुछ बाग़ लगाये और कई महल बनवाये। उनके उत्तराधिकारी का शासनकाल महत्वशून्य है। पर तीसरे नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला को बक्सर क़ी लड़ाई में पराजय के बाद ऐसी संधि ईस्ट इंडिया कम्पनी से करनी पड़ी कि "अवध के दरबार में भी अब उनका पांव पड़ गया।"[2]

यदि शुजाउद्दौला की नीयत मीर क़ासिम की सच्ची सहायता करने की होती तो उन्होंने वक्सर के युद्ध के पहले उनकी सेना को अपने साथ लेकर खुद कासिम को

१. विल्सन, राबर्ट्स, हेग आदि २. मीर कासिम—हरिहरनाथ शास्त्री, पृ० २४२।

क़ैद न कर लिया होता। लड़ाई के एक दिन पहले उस अभागे नवाब को लंगड़ी हथिनी पर बैठाकर भगा दिया था। शाहआलम से तो वे इसलिए मिले थे कि बंगाल-बिहार-उड़ीसा पर क़ब्ज़ा करके बादशाह से "आदेश" यानी "शाही फ़रमान" प्राप्त कर लेंगे। पर, युद्ध में पराजय ने उनकी शक्ति को एकदम नष्ट कर दिया। अपने कुछ विश्वासपात्र नौकरों को उन्होंने फ़ैज़ाबाद भेज दिया कि उनके परिवार तथा ख़ज़ाने को लेकर बरेली में रुहेला सरदार हाफ़िज़ रहमान ख़ां के पास रख दें। स्वयं वे इलाहाबाद भागे और अपने क़िले का भार अलीबेग ख़ां को सौंप कर माता तथा पत्नी के साथ बरेली पहुंचे।

शुजाउद्दौला अंग्रेज़ों से संधि करने को तैयार नहीं थे। अभी भी वे लड़ना चाहते थे। उन्होंने अफ़ग़ानों से सहायता मांगी पर न मिली। मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर सेना लेकर आ पहुँचे। युद्ध अनिवार्य देखकर अंग्रेज़ों ने बनारस में राजा बलवन्तसिंह को अपनी ओर मिला लिया और चुनारगढ़ पर चढ़ दौड़े। पर वहां पर वे बुरी तरह से पिट गये। पर अंग्रेज़ों के भाग्य से एक मुसलिम सेनापति ने अंग्रेज़ों से मिलकर उनका अधिकार इलाहाबाद के क़िले पर करा दिया। इलाहाबाद का क़िला हाथ से निकलते ही नवाब वज़ीर का साहस टूट गया। मल्हारराव भी हार कर अपनी सेना लेकर सीधे ग्वालियर भागे। इधर अंग्रेज़ों ने दुबारा आक्रमण कर चुनारगढ़ छीन लिया था। अन्त में वह दिन भी आया कि कुछ ही आदमी लेकर नवाब वज़ीर स्वयं संधि करने के लिए अंग्रेज़ी छावनी पहुँचे।

यह संधि ही अवध के राज्य की समाप्ति का प्रारम्भ थी। वज़ीर को ५० लाख रुपया लड़ाई का ख़र्च अंग्रेज़ों को देना पड़ा जिसमें से २० लाख रुपया तुरन्त जमा करना था। इलाहाबाद पर से अपना अधिकार हटाकर उसे बादशाह शाहआलम को देना पड़ा। अवध के दरबार में एक अंग्रेज़ रेसिडेन्ट रखना स्वीकार करना पड़ा। नवाब को राजा बलवन्तसिंह को "क्षमा" कर देना पड़ा। नवाब बीस लाख रुपए की क़िस्त भी न दे पाते यदि उनकी पत्नी ने अपना सब ज़ेवर उतार कर न दे दिया होता।

संधि की शर्तें

अवध के इतिहास में यह संधि इतनी महत्वपूर्ण है कि उसको ज़रा विस्तार से समझ लेना चाहिए। इस संधि ने ईस्ट इंडिया कम्पनी रूपी हिंसक पशु के मुख में वह ख़ून लगा दिया जो अवध की हुकूमत को खा जाने के बाद ही शान्त हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने लड़ाई के हर्जाने के रूप में ५० लाख रुपया नवाब शुजाउद्दौला से

मांगा था, जिसमें से २० लाख रुपया तुरत जमा करना था तथा ३० लाख वाद में देना था। मेजर बर्ड, जो सन् १८४७-४८ में कम्पनी के रेसिडेन्ट स्लीमन के सहायक के रूप में लखनऊ में सब कुछ अपनी आंखों देख चुके थे, अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि सन् १७६५ की संधि के वाद से अवध का राज्य छीनने तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अवध के राज्य से ५० करोड़ रुपया वसूल किया था।[१]

शुजाउद्दौला को ३० लाख रुपया वाद में अदा करने की ज़मानत में चुनारगढ़ का क़िला अंग्रेज़ों को देना पड़ा था और जब इस रक़म का भुगतान हो गया, तब भी कम्पनी ने किला वापस नहीं किया।[२] कम्पनी की एक पल्टन फ़ैज़ाबाद भेज दी गयी और नवाब को अपने फ्रेंच कर्मचारी हटा देने पड़े। नवाव ने कम्पनी की सेना रख ली, इसकी सूचना भारत भर में फैल गयी। जब मैसूर-नरेश हैदरअली नायक को इत्तला मिली तो उन्होंने नवाव को सन् १७७२ में लिखा कि "ताज्जुब है कि इतनी पल्टन रखते हुए भी ईसाइयों की गुलामी कर रहे हो।" नवाब ने इसका सराहनीय उत्तर भेजा था यद्यपि "गुलामी" वाली बात की झेंप भी वे मिटाना चाहते थे। उन्होंने लिखा:—[३]

"धार्मिक अंधविश्वास उनको शोभा देता है जो सांसारिक विषयों से विरक्त हो चुके हों। पर हमारे ऐसे लोगों के लिए यह अनुचित वस्तु होगी क्योंकि हमको अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के मानने वाले लाखों लोगों से सम्पर्क रहता है। हम एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय से विशिष्ट नहीं समझ सकते। जहां तक हमारी बड़ी सेना का ताल्लुक़ है, वह तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के शत्रुओं के विरुद्ध काम आयगी।"

नवाब जो उत्तर हैदरअली के पास भेज रहे थे, वह अंग्रेज़ों को मालूम भी न होता। पर हैदरअली के दूत को अवध में ही कम्पनी के आदमियों ने पकड़ लिया और उसके पास से सब कागज़ात वरामद हुए। नवाब की नेकनीयती से रेसिडेन्ट बड़ा प्रभावित हुआ और उसने नवाब की अनुमति से सब पत्र-व्यवहार की नकल कलकत्ते में गवर्नर जनरल के पास भेज दिया। पर जिसकी नीयत स्वयं

१. Dacoities in Excelsis—डाकेज़नी की पराकाष्ठा—लेखक: मेजर बर्ड।

२. मेजर बर्ड

३. मेजर बर्ड की पुस्तक में उद्धृत—पृष्ठ १३

ख़राव होती है वह दूसरे की अच्छी नीयत से कदापि प्रभावित नहीं होता।

सन् १७७१में नवाब के साथ कम्पनी की एक और संधि हुई थी जिसके अनुसार इलाहाबाद का क़िला भी नवाब को वापस मिल गया था। पर चुनारगढ़ के समान अंग्रेज़ उसे भी दबाये बैठे रहे और मार्च, १७७२ में ये दोनों क़िले उनके ही हो गये। हैदरअली के पत्र की नकल तथा नवाब का उत्तर कलकत्ता पहुंचने से नवाव की प्रतिष्ठा बढ़ी नहीं, उनको और भी दुर्बल समझा गया। ७ सितम्वर, १७७३ को बूढ़े नवाब शुजाउद्दौला को बादशाह के द्वारा बाज़ाप्ता "वज़ीर" का ख़िताव दिलाया गया और उनसे फिर ५० लाख रुपया लेकर "कम्पनी" का कड़ा-इलाहाबाद वग़ैरः का इलाक़ा नवाव के हाथ बेच दिया गया। सन् १८०१ की संधि में,जिसका ज़िक्र हम आगे करेंगे, नवाब सआदतअली ख़ां से वे सब "बिके हुए" इलाक़े छीन लिये गये और ५० लाख रुपया बेकार गया।[1] ब्रिटेन की हर बात को सही साबित करने वाले[2] भी स्वीकार करते हैं कि गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स रुपये की ज़रूरत पूरा करने के लिए "उचित या अनुचित" सभी तरीक़े अख़्तयार कर रहे थे।

७ सितम्बर, सन् १७७३ की संधि बनारस में हुई थी अतएव उसे "बनारस की संधि" कहते हैं। इसके अनुसार नवाब को अपने राज्य में कम्पनी की जो पल्टन रखनी पड़ेगी उसका ख़र्च २,१०,००० "सिक्का रुपया" माहवार देना पड़ेगा और "इस रक़म को छोड़कर और किसी भी मद में कभी भी एक पाई नहीं मांगी जायगी" पर, वारेन हेस्टिंग्स की बदनीयती और धूर्तता तो इतिहास प्रसिद्ध है। नवाव के ऐसे "नीच साथी"[3] ने नवाब के नेत्र मुंदते ही, उनके पुत्र से कस कर रक़में ऐंठ लीं। नवाब के शासनकाल में कम्पनी ने नवाब के शत्रु रुहेलों को नष्ट करने में कुछ मदद पहुंचायी थी। कम्पनी सेना का पूरा ख़र्च नवाब को देना पड़ा। ज्यादा तर लड़ी नवाब की ही सेना और नवाब की मदद से अंग्रेज़ों ने एक उभड़ते हुए राज्य को कुचल दिया। पर, रुहेलों से संधि में अंग्रेज़ों को कई लाख रुपये मिले। वारेन हेस्टिंग्स की रुहिला-नीति की पश्चिम के इतिहासकारों ने भी निन्दा की है।[4]

१. मेजर वर्ड। २. मैकाले

३. "Pernicious Allies"—Bird पृष्ठ २०

४. राबर्ट्स, लायल आदि

सन् १७७५ में नवाब शुजाउद्दौला का देहावसान हो गया। सब कुछ विपत्तियां सामने आने पर भी वे कुशल शासक थे तथा उनके शासनकाल में अवध में सुव्यवस्था तथा शान्ति थी। नवाब का स्वभाव कोमल था। वे उदार हृदय तथा उदार नीति के थे। उन्होंने अवध के राज्य को बहुत बढ़ाया होता यदि वे मीर क़ासिम के साथ बदनीयती तथा स्वार्थपरता से पेश न आते। बक्सर का युद्ध अवध के लिए घातक युद्ध था। जैसी नीयत से युद्ध लड़ा गया, वैसा ही परिणाम निकला।

अध्याय दो

आसफ़ुद्दौला से अमजदअली शाह तक

शुजाउद्दौला के वाद ऐसा कोई भी नवाब अवध की गद्दी पर नहीं बैठा जिसके सत्तारूढ़ होने के मौक़े से कम्पनी ने फ़ायदा न उठाया हो। यदि किसी के गद्दी पर बैठने में कोई उलझन न होती तो अंग्रेज़ उलझन पैदा कर देते। शुजाउद्दौला के बेटे आसफ़ुद्दौला अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। बड़े सज्जन, बड़े समझदार तथा दानी व्यक्ति थे। पर उन्हें एक ओर तो अंग्रेज़ों से डर था कि कहीं उनके भाई को रुहेलखंड का स्वतंत्र शासक न बना दें, दूसरे अपनी सौतेली माताओं से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। स्वयं अपनी माता से भी उन्हें स्नेह नहीं था। इसीलिए वे फ़ैज़ाबाद छोड़कर लखनऊ चले आये। सन् १७७५ में गद्दी पर बैठते ही उन्होंने फ़ैज़ाबाद छोड़ दिया।

लखनऊ

उस समय लखनऊ एक समृद्ध देहात मात्र था।[१] मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के अनुज लक्ष्मण ने इसे बसाया या, स्थापित किया था—वर्त्तमान लक्ष्मण टीला के आसपास। कुछ लोग कहते हैं कि जौनपुर के मुसलिम शासक ने लखना नामक एक कारीगर को इस नगर के निर्माण के लिए नियुक्त किया था। इसलिए लखनऊ नाम पड़ा। अस्तु, लक्ष्मणपुर अथवा लखनऊ में प्रथम नवाब मुहम्मद अमीन सआदत खां बुरहानुलमुल्क भी कुछ इमारतें बना चुके थे पर आसफ़ुद्दौला की राजधानी बनते ही नगर चमक उठा। गांव से नगर बन गया और सन् १८५६ में इसकी आबादी दस लाख बतलायी जाती है।[२] राजधानी होने के कारण लखनऊ शाही तक़ल्लुफ़ व तहज़ीब, सभ्यता तथा संस्कृति, कला, उर्दू अदब, भारतीय संगीत, वाद्य कला तथा शृंगार का केन्द्र बन गया था।

१. Glories of U. P.—**लेखक श्री नन्दलाल चैटर्जी** २. **मेजर बर्ड और कई लेखक तथा स्लीमन। स्लीमन लिखते हैं**—"Lucknow is an overgrown city."

इसमें सन्देह नहीं कि सभी नवाबों को इमारतें बनवाने का शौक़ था और यह शौक़ आसफ़ुद्दौला में सब से अधिक था। पर इन इमारतों में मुग़ल युग की पत्थर या संगमरमर की इमारतों की तरह से रुपया नहीं वहाया गया है। चूना, गारा तथा ईंट में ही भव्य सदन रचे गये हैं। दूसरे, बहुत सी इमारतें मनोरंजन के लिए नहीं अपितु, प्रजा रंजन के लिए बनी हैं। सन् १७८४ में जब भयंकर अकाल पड़ा था जनता को भूखों मरने से बचाने के लिए विश्व-प्रसिद्ध लखनऊ का इमामबाड़ा बना था—उसका नक़्शा कारीगर किफ़ायतुल्ला ने बनाया था। इसका मुख्य कमरा जिसे अंग्रेज़ी में "हॉल" कहते हैं, संसार में सब से बड़ा[1] गुम्बजदार कमरा है—१६२ फ़ुट लम्बा, ५३ फ़ुट चौड़ा और ५० फुट ऊंचा। इतने बड़े कमरे में एक भी खम्भा नहीं है। इसी में नवाब आसफ़ुद्दौला और उनकी बेगम चिरकाल के लिए सो रही हैं। प्रति वर्ष मुहर्रम के दिनों में यहाँ बड़ी रोशनी होती है। रूमी दरवाज़ा या तुर्की फाटक (६० फुट ऊंचा) भी १७८४ में बना था।

लखनऊ "बाग़" तथा "महलों" का शहर था और अब भी उसका अवशेष है। इसका एक ख़ास कारण यह भी है कि आसफ़ुद्दौला के समय से नवाबों में यह प्रथा बन गयी कि गद्दी पर बैठे हुए नवाब के मरते ही उनका उत्तराधिकारी कभी मुर्दे के साथ क़ब्रगाह तक नहीं जाता था तथा उस मकान या महल में नहीं रहता था जिसमें नवाब की मृत्यु होती थी। इसलिए प्रायः नवाब अपने "वली अहद"—उत्तराधिकारी के लिए अलग महल बनवा दिया करते थे।

आसफ़ुद्दौला के बाद उनके भाई सआदत अली खां गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपनी प्रिय बेगम खुरशीदमहल के लिए "खुरशीद मंज़िल" बनवाया। इस भवन की कारीगरी तथा "नक़्शे" की ज़िम्मेदारी फ्रेन्च कारीगर क्लॉड मार्टिन की है। सआदतअली के जीवनकाल में इमारत पूरी न हो सकी अतएव उनके बाद उनके पुत्र गाज़ीउद्दीन हैदर ने इमारत पूरी करवायी। सन् १८७६ में अंग्रेज़ी हुकूमत ने इस भवन को "ला मार्टिनियर" स्कूल चलाने के लिए पादरियों को दे दिया।

ईराक़ में एक पहाड़ी का नाम है "नजफ़"। उसी पर हज़रत मुहम्मद साहब के दामाद हज़रत अली की क़ब्र है। उसी इमारत की नक़ल कर नवाब गाज़ी-उद्दीन हैदर ने अपने तथा अपनी पत्नी के दफ़नाने के लिए "शाह नजफ़" बनवाया था।

१. श्री नन्दलाल चैटर्जी।

लखनऊ की अन्य प्रसिद्ध इमारतों में हुसेनाबाद का इमामबाड़ा (छोटा इमामबाड़ा), हुसेनाबाद का सुन्दर तालाब इत्यादि नवाब मुहम्मद अली शाह (१८३७-१८५४) ने बनवाया था। वाजिद अली शाह का बनवाया क़ैसरबाग़ तथा छत्तर मंजिल इमारत की दृष्टि से, कला की दृष्टि से पूर्वी तथा पश्चिमी निर्माण कला का ऐसा सम्मिश्रण है कि निर्माण-कला विशेषज्ञों ने उन्हें बहुत पसन्द नहीं किया है।[1] नवाबी राज्य चिह्न में "मछली" का उपयोग नवाब सआदत अली खां ने प्रारम्भ किया था तथा आज भी उत्तर प्रदेश की सरकार का राज्य-चिह्न यही है। नवाबी इमारतों पर "सुनहली छतरी" का रिवाज़ भी सआदत अली-गाज़ीउद्दीन हैदर के समय में उन्नत हुआ।

लखनऊ में बाग़ इत्यादि भी बहुत से बनाये गये पर हम उनका जिक्र नहीं करेंगे। लखनऊ नवाबी शासन में कितना उन्नति कर गया था इसको उनके शत्रु कर्नल स्लीमन भी अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं।[2] वे लिखते हैं कि "यह शहर आवश्यकता से अधिक बढ़ गया है। यहां पर बराबर जलूसों का, रोशनी का, त्योहारों तथा उत्सवों का शोर बना रहता है...पर नगर या देश की जनता के कल्याण के लिए नवाबों या रईसों ने शायद ही कभी कोई काम किया भी या सोचा भी हो। हां, वर्षों में एक काम नरेश ने अवश्य किया है कि लखनऊ से कानपुर तक पक्की सड़क बनवा दी गयी है...पर यहां की जनता कम्पनी के कर्मचारियों तथा आमतौर पर यूरोपियनों के प्रति आदर का भाव रखती है। गहरी भीड़भाड़ में भी यदि कोई यूरोपियन चला जाता है तो लोग उसके साथ आदर से पेश आते हैं और यह स्थिति हैदराबाद (निज़ाम की राजधानी) से बिलकुल भिन्न है। वहां तो रेसिडेंसी से कोई यूरोपियन बिना अंगरक्षकों के निकल नहीं सकता ..."

स्लीमन निन्दा करना चाहते थे पर सत्य वह है जो सर पर चढ़कर बोलता है। यदि लखनऊ की जनता तबाह होती तो इतना उत्सव तथा रासरंग क्यों तथा कैसे रहता और नगर में इतनी घनी आबादी कैसे हो जाती? यदि वहां के नवाब सभ्य तथा शिष्ट न होते तो यूरोपियनों के साथ हैदराबाद जैसा सलूक क्यों न होता। पर स्लीमन एक बात और लिखना भूल गये। नवाब लोग जन-कल्याण के लिए बड़ी इमारतें बनाते थे यह तो सन् १७८४ के अकाल में इमामबाड़ा के निर्माण से

१. **नन्दलाल चैटर्जी** Glories of U. P. **पृष्ठ ८४-८६, २. कर्नल स्लीमन की डायरी, भाग १—पृष्ठ २७५।**

स्पष्ट है। जब वे अच्छा काम करना चाहते थे तो अंग्रेज़ उन्हें करने नहीं देते थे। लखनऊ में आबपाशी के लिए अच्छी नहर निकाल कर गंगाजी तथा गोमती के पानी को मिलाकर किसानों के लाभ के लिए नवाब ग़ाजीउद्दीन हैदर ने (१८२४-१८२७) जो योजना बनायी थी, उसे कम्पनी ने चलने नहीं दिया। आज भी उस नहर की अधूरी यादगार लखनऊ में देखी जा सकती है। बादशाह अमजदअली शाह के ज़माने में गोमती पर "लोहे का पुल" लन्दन से लाकर बनवाया गया था। कानपुर तक की पक्की सड़क पर पांच लाख रुपया ख़र्च हुआ था और इस सड़क से सब से बड़ा लाभ अंग्रेज़ों का था। उनकी कानपुर की अमलदारी के लिए राज-मार्ग बन गया था।[1]

कर्नल स्लीमन को लखनऊ का कोई उत्सव, त्यौहार व धूमधाम इसलिए नापसंद था कि हिन्दू-मुसलिम दृढ़ एकता तथा प्रेम का यही बड़ा भारी प्रमाण था। ऐसा प्रेम अंग्रेज़ नहीं चाहते थे। स्लीमन के मुख से यह पाप भी निकल ही गया। वे लिखते हैं—"कभी ताज़ियादारी, मुहर्रम, कभी रोशनी, हिन्दू त्यौहार—ये सब दक्षिण तथा मध्य भारत के हिन्दू राज्यों के समान हैं। कट्टर मुसलमान यह सब पसंद नहीं करते।"[2]

पादरी हेबर सन १८२४-२५ में लखनऊ आये थे और अवध भी घूम चुके थे। वे लिखते हैं:—

"मैंने अवध के बारे में जो कुछ सुन रखा था तथा मुझे जो बतलाया गया था, उसके बाद स्वयं इस प्रदेश में इतनी सुव्यवस्थित खेतीबारी तथा किसानी देखकर मुझे प्रसन्नता के साथ आश्चर्य भी हुआ क्योंकि यदि राज्य में दुर्व्यवस्था तथा अत्याचार की जो बातें कही जाती हैं, सत्य होतीं तो इतनी घनी आबादी न होती, उद्योग-धंधा न होता, किसान परिश्रमी तथा सन्तुष्ट न होता। गांवों की भी दूकानें साफ़-सुथरी हैं। लोग आराम से रहते हैं तथा जनता समृद्ध है।"[3]

अपने प्रति लगाये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए, नवाब वाजिदअली शाह ने जो स्मृतिपत्र मल्का विक्टोरिया को भेजा था, उसमें वे लिखते हैं:—

"जिस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी के अफ़सरान अवध के "विनाश" की रिपोर्ट

१. वाजिदअली शाह का उत्तर
२. स्लीमन की डायरी भाग १—पृष्ठ २७६।
३. मेजर बर्ड की पुस्तक, भूमिका से उद्धृत—पृष्ठ ६।

तैयार करने के लिए सूचना एकत्रित कर रहे थे और अपनी बात पक्की करने के लिए हरेक बात को किस तरह से रंगना चाहिए, यह भी वे जानते थे। हर कर्मचारी यह दिखाने में एक दूसरे को मात देना चाहता था कि नवाबी शासन में अवध की आमदनी (मालगुज़ारी) किस प्रकार गिरती जा रही है, उसकी सेना कितनी असंगठित हो गयी है, उसके ज़मीदार बलवा कर रहे हैं, उसकी खेती चौपट हो गयी है, कुछ स्थानों में उसकी उर्वर भूमि रेगिस्तान बन गयी है, उसके परिश्रमी किसान गुलाम बनाकर बेंचे जा रहे हैं—और फिर यहां तक कह दिया कि उसके एक गांव से ४०,००० हल लुप्त हो गये (यानी इतने ही लोगों ने खेती छोड़ दी होगी) तो उनके मनगढ़न्त की हद हो गयी क्योंकि एक गांव में इतने हल हो नहीं सकते..."[१]

नवाबों के शासन की महिमा के सम्बन्ध में मेजर बर्ड ने साफ़ लिखा है :—

"नवाब की ऐसी बुरी तरह से चित्रित सरकार में कम्पनी की लूटने वाली सरकार की तुलना में रहना लोग अधिक पसंद करते थे। कम्पनी की सेना में अवध के रहने वाले कम से कम ५०,००० सिपाही भर्ती हैं। पर वे अपना परिवार नवाब के राज्य में छोड़कर निश्चिन्त रूप से नौकरी करते हैं। वे अपने परिवार को अवध के बाहर नहीं ले जाते और कम्पनी की फ़ौज से "रिटायर" करने पर यहीं वापस आकर शान्तिपूर्वक रहते हैं.... जब से अवध कम्पनी की सरकार में आया है, केवल लखनऊ से ४००० व्यक्ति भाग कर चले गये। नगर में चीजों का दाम बहुत बढ़ गया है। नगर में अपराध बहुत बढ़ गया है। लखनऊ की जनता हमारे अधिकार ग्रहण के बहुत विरुद्ध है।"

लखनऊ और उसकी जनता के विषय में हम बिशप हेबर (१८२०-२४) के एक और कथन को उद्धृत करके आगे बढ़ते हैं। अभी तो बार बार ऐसी बातों का ज़िक्र आयेगा। हेबर साहब लिखते हैं:—

"लखनऊ हमारे ड्रेसडन नगर के समान है—यहां के सभी आदमी बड़े शिष्ट तथा बड़े अच्छे स्वभाव के हैं। यहां के राजाओं की तथा मौजूदा बादशाह की सब परेशानी ईस्ट इंडिया कम्पनी की बदौलत है। उनके कहने से राजा ने, उनके पूर्वजों ने अपनी बढ़िया पल्टन समाप्त कर दी और अब उनके पास महल पर पहरा देने भर ही सन्तरी रह गये हैं। सरकारी मालगुज़ारी की वसूली में सहायता

१. वाजिदअली शाह का उत्तर, उर्दू,—पृष्ठ ५७।

देने के लिए सेना नहीं है . . . और असल बात तो यह है कि पिछले एक साल से, जब से कम्पनी ने ब्रिटिश फ़ौजों की मदद रोक दी है, राज्य का शासन तथा उसकी दशा पहले से अधिक अच्छी होती जा रही है।"[१]

आसफ़ुद्दौला

आसफ़ुद्दौला के गद्दी पर बैठते ही कम्पनी उनसे कुछ रुपया ऐंठने तथा उनकी अच्छी हुकूमत में टांग अड़ाने के लिए आगे बढ़ी। जो-जो चीज़ें नवाब शुजा के ज़माने में अंग्रेज़ों को नहीं मिल सकी थीं, वह सभी प्राप्त हो गयीं। उस समय उत्तर भारत में संस्कृति तथा व्यवसाय दोनों का केन्द्र बनारस या काशी था।[२] यद्यपि काशी के राज्य पर महाराजा बलवन्तसिंह के समय से—अवध का नाम मात्र का शासन रह गया था, पर अवध राज्य में तो था ही। इसी प्रकार सन् १७७३ की संधि के अनुसार कोड़ा, कड़ा तथा इलाहाबाद वग़ैरः हमेशा के लिए अवध राज्य में मिला लिये गये थे। बनारस के इलाक़े से ७५ लाख रुपया साल की आमदनी थी। उस समय वारेन हेस्टिंग्स के हाथ में कम्पनी की हुकूमत थी। रुपये की सख्त ज़रूरत थी। कम्पनी सौदागरी छोड़कर तलवार चला रही थी। अतएव देशी-नरेशों से ही रुपया प्राप्त करना पड़ा। वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब को सूचित किया कि नवाब शुजाउद्दौला के मर जाने के बाद उनके साथ जो संधि हुई थी, वह भी समाप्त हो गयी। अब नयी संधि की आवश्यकता होगी। फलतः २१ मई, १७७५ को दूसरी संधि हो गयी और नवाब ने अपने वज़ीर मुख्तियारुद्दौला के कहने से ५० लाख रुपये नक़द के बदले में बनारस का इलाक़ा दे दिया। यानी इससे भी कम्पनी का २५ लाख रुपये का लाभ ही रहा। अवध में स्थित कम्पनी की सेना के मद में ५०,००० रुपया मासिक बोझ नवाब पर और बढ़ा दिया गया।

इस संधि की रुपये सम्बन्धी शर्त्तों को पूरा कर देना नवाब के लिए सम्भव न था। कम्पनी को रुपया चाहिए था। आसफ़ुद्दौला को मालूम था कि मरने के पूर्व उनके पिता ने अपनी पत्नी तथा बहू के लिए एक बड़ी जागीर तथा दो करोड़ रुपया दिया था। माता से नवाब की पटरी नहीं बैठती थी। उन्होंने वारेन हेस्टिंग्स के द्वारा बेगमों से रुपया मंगवाया। एक बार २५ लाख उन्होंने दे दिया। फिर

१. मेजर बर्ड की पुस्तक—"डैकायटीज़"—पृष्ठ ७५। २. मेजर बर्ड—पृष्ठ २२

मांग की गयी तो ३० लाख और दे दिया। पर कम्पनी की भूख मिटती ही नहीं थी। वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब से फिर रुपया मांगा। जब नवाब न दे सके तो हेस्टिंग्स ने फ़ैज़ाबाद में बेगमों का महल घिरवा लिया और उनको जितना लूट सके, लूट लिया। औरतों के साथ इस व्यवहार तथा ऐसी लूट को पाश्चात्य लेखकों ने भी अनुचित, लज्जाजनक तथा निंद्य कहा है।[१]

किन्तु, सन् १७७५ की संधि इतनी अनुचित थी तथा उसकी शर्तें इतनी अवांछनीय थीं कि ब्रिटिश सरकार भी उसे हज़म न कर सकी। १५ दिसम्बर, १७७५ को गवर्नर जनरल की कलकत्ता कौंसिल ने उसे स्वयं अस्वीकार कर दिया। कलकत्ता कौंसिल ने यह मानना ही अस्वीकार कर दिया कि नवाब शुजाउद्दौला के मर जाने के कारण उनके साथ सन् १७६५ तथा १७७३ में जो संधियां हुई हैं, वे भी समाप्त हो गयीं। गवर्नर जनरल तथा उनकी कौंसिल के बीच मतभेद का यह मामला कम्पनी के डायरेक्टर बोर्ड के सामने लन्दन पहुंचा। बोर्ड ने "संधि" तो स्वीकार कर ली पर उसके अनुसार कार्यवाही करने की मनाही कर दी। लंदन से कलकत्ता पत्र आया:—

"नवाब से यह कहना कि कम्पनी की एक और टुकड़ी अपने खर्च से अपने ऊपर तब तक रखे रहें जब तक तुम्हारी इच्छा हो—यह साबित करता है कि तुम्हारी नीयत ठीक नहीं है। इस प्रकार का कार्य कम्पनी की इज़्ज़त पर बड़ा बट्टा लगायेगा।"[२]

पर वारेन हेस्टिंग्स ने कुछ नहीं, किसी की नहीं, अपनी कौंसिल या अपने मालिकों की भी नहीं सुना। इस समय वह चारो ओर से रुपया लूटने में लगा हुआ था। नवाब से रोज़-ब-रोज़ रुपये की नयी-नयी मांगें पेश की जाती थीं। अन्त में, ऊब कर, १७७९ को नवाब आसफ़ुद्दौला ने गवर्नर जनरल को पत्र लिखा कि "अब तो दम घुट रहा है। आपकी मांग रोज़ बढ़ती ही जा रही है।" पत्र-व्यवहार चलता रहा। अंत में ११ सितम्बर १७८१ को चुनार के क़िले में नवाब तथा वारेन हेस्टिंग्स की भेंट हुई। १९ सितम्बर, १७८१ की फिर दूसरी संधि हो गयी जिसके अनुसार कम्पनी की सेना घटाना तय हुआ ताकि नवाब का बोझ कुछ कम हो सके। उस समय नवाब को प्रतिवर्ष ८४ लाख रुपया कम्पनी की सेनाओं के

१. अलफ्रेड लायल, पी० ई० राबर्ट्स इत्यादि। २. मेजर बर्ड—पृष्ठ २५

खर्च के मद में देना पड़ता था तथा ६५,००० पौंड वार्षिक यानी ९,५०,००० रुपया सालाना कम्पनी के "रेसिडेन्ट तथा उनके दफ्तर का खर्च" देना पड़ता था। कम्पनी का राजदूत नवाब का नमक खाता था। नवाब की सरकार को कम्पनी की ओर जो कुछ करोड़ों रुपये की सहायता करनी पड़ती थी, वह एक अतिरिक्त स्थायी "बोझ" था। अस्तु, चुनार की संधि में पल्टन कम कर देने का निश्चय हुआ पर काग़ज़ पर ही यह निश्चय बना रहा। न कोई पल्टन हटी और न नवाब पर कुछ बोझ ही कम हुआ। सन् १७८३ में भी, जिस साल अवध में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था तथा नवाब इमामबाड़ा, रूमी दरवाज़ा आदि बनवा कर जनता की प्राण रक्षा कर रहे थे, कम्पनी की सरकार ने उनसे कई लाख रुपया लिया। यही नहीं, उस समय का "बिना तारीख़" का एक गुप्त सुलहनामा प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार "रेसिडेन्ट को नवाब के ख़जाने का निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया था और नवाब को आदेश दिया गया था कि वे अपने राज की, अपनी देशी पल्टनों की संख्या और कम कर दें।"

अस्तु, १ फ़रवरी, १७७४ से सितम्बर, १७८३ तक ईस्ट इंडिया कम्पनी नवाब से कुल २-३० करोड़ रुपया नक़द प्राप्त कर चुकी थी। इतने अंधेर की बात चारों ओर फैलने लगी। कुछ न कुछ रोकथाम करना ज़रूरी हो गया था। लखनऊ दरबार में रेसिडेन्ट रखने की प्रथा तथा रेसिडेन्ट के अधिकार के विषय में भी काफ़ी क्षोभ था। कलकत्ता कौंसिल के एक सदस्य श्री शोर के शब्दों में—"रेसिडेन्ट इसीलिए रखा जाता था कि जिस राज्य में रहे, वहां दुर्व्यवस्था तथा गड़बड़ी पैदा करे।"[१]

अस्तु, ३१ दिसम्बर, १७८३ को "रेसिडेन्ट" का पद तोड़ दिया गया और उसके स्थान पर कम्पनी तथा नवाव के बीच में एक "प्राइवेट एजेन्ट" नियुक्त हुआ, पर, इस अधिकारी के अधिकार, इसके कारनामे सव वही रहे, केवल एक "नैतिक ज़िम्मेदारी" न रही। इसका वेतन आदि भी नवाब के ज़िम्मे रहा और रेसिडेंसी पर ९,५०,००० रुपया सालाना ही खर्च पड़ता था। अब वही बढ़कर १२,००,००० रुपया वार्षिक यानी १,१२,९५० पौंड खर्च पड़ने लगा। इसलिए थोड़े ही समय में नवाव इस "प्राइवेट एजेन्ट" से त्राहि बोल गये और उन्होंने पुनः 'रेसिडेन्ट' पद को चालू कराने की लिखा-पढ़ी शुरू कर दी।

१. Hon'ble F. G. Shore—**देखिए मेजर बर्ड की पुस्तक—पृष्ठ २९**

वारेन हेस्टिंग्स ने समूचे देश में चारों ओर ऐसी आग लगा रखी थी कि उनके बाद एक और शान्तिप्रिय तथा मित्रतापूर्ण गवर्नर जेनरल भारत भेजना ही पड़ा। अतएव अपनी "शान्ति-नीति" को लेकर १७८६ में लार्ड कार्नवालिस भारत आये। उन्होंने नवाब का ब्रिटिश सेना पर ८४ लाख रुपया वार्षिक ख़र्च घटाकर ५० लाख रुपया कर दिया। कार्नवालिस के समय में नवाब के साथ और कोई छेड़-छाड़ भी नहीं हुई। नवाब के शासन में प्रजा सुखी तथा समृद्ध हो रही थी। दस वर्ष शान्तिपूर्वक बीत गये।

कार्नवालिस के स्थान पर सर जान शोर अस्थायी गवर्नर जनरल हुए। लार्ड कार्नवालिस का शान्तिकाल समाप्त हो चुका था। देशी नरेशों को समाप्त करने के यज्ञ का प्रारम्भ करने वाले, "सहायक संधि" ऐसी विषम प्रथा के प्रणेता लार्ड वेलेज़ली भारत के लिए रवाना हो चुके थे। सर जान शोर ने नवाब को दबाना शुरू किया कि अपने राज्य में, कम्पनी की एक यूरोपयिन तथा एक देशी पल्टन और रख लें यानी ५० लाख रुपये वार्षिक के ऊपर साढ़े पांच लाख रुपया माहवार का ख़र्च बढ़ा लें। उस समय नवाब के प्रधान मन्त्री महाराजा झाऊलाल थे। वे किसी भी दशा में इतना बड़ा बोझ स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। अंग्रेज़ों ने उनको गिरफ़्तार करवा कर कानपुर अपनी अमलदारी में भेज दिया। सर जान शोर स्वयं कानपुर आये और नवाब कानपुर बुला भेजे गये। मार्च १७९७ की बात है। डरा धमका कर उन्हें राज़ी कर लिया गया। पर, इस "संधि" से नवाब के दिल पर इतना सदमा पहुंचा कि वे कुछ ही महीनों में मर गये। उनके मरते ही अंग्रेज़ों को अवध को लूटने का अच्छा अवसर मिला।

नवाब सआदतअली

आसफ़ुद्दौला के लड़के वज़ीरअली गद्दी पर बैठे। आसफ़ुद्दौला के सुयोग्य भाई सआदतअली भी गद्दी चाहते थे। बस, कम्पनी का उनके साथ अच्छा सौदा पट गया और वज़ीरअली कम्पनी की फ़ौज की सहायता से तख़्त से उतार दिये गये और २१ जनवरी, १७९८ में सआदत अली का राज्याभिषेक हो गया। सौदा तो पहले से ही पट चुका था अतएव गद्दी पर बैठने के कुछ दिनों के भीतर ही, यानी फरवरी, १७९८ में सर जान शोर के साथ १७ धाराओं की एक संधि हो गयी।[१]

१. Parliamentary Return of Treaties—Ms. 71—74.

यह संधि अवध के इतिहास में बड़ा महत्व रखती है। इसकी पहली धारा के अनुसार कम्पनी तथा नवाब में मित्रता तथा एकता को दुहराया गया तथा वर्त्तमान संधि के प्रतिकूल न पड़ने वाली पिछली सभी संधियों को पुनः स्वीकार किया गया। धारा २ के अनुसार उस समय तक नवाब के राज्य से कम्पनी को ५६ लाख रुपया साल ही मिलता था, वह बढ़ा कर एक करोड़ रुपया वार्षिक हो गया। इलाहाबाद का क़िला भी स्थायी रूप से कम्पनी के सुपुर्द हो गया।

मई, १७९८ में लार्ड मार्निंगटन उपनाम लार्ड वेलेज़ली कलकत्ता पहुंचे। समुद्र का मार्ग तय करते समय वे भारत की स्वाधीनता को समाप्त करने का उपाय सोचते आये होंगे। अपनी समझ पर सर जान शोर ने नवाब सआदत अली को काफ़ी बांध रखा था और १७९८ की संधि से उनकी कमर काफी तोड़ दी थी। पर वेलेज़ली इतने से संतुष्ट नहीं हुए। अक्टूबर, १७९८ में वे परामर्श करने लगे कि "किस उपाय से अवध दरबार पर वाजिब कम्पनी का रुपया समय पर अदा होता रहे तथा नवाब की सेना में भी सुधार हो जाय।" सन् १७९८ की संधि के अनुसार नवाब ने स्वीकार कर लिया था कि बिना रेसिडेन्ट की अनुमति के वे किसी भी यूरोपियन को अपना कर्मचारी नहीं रख सकेंगे। नवाब की सेना में सुधार का तात्पर्य केवल इतना था कि उनकी सेना एकदम किस प्रकार समाप्त कर दी जाय। "केवल इतनी ही पल्टन वे रख सकें कि रियासत का ज़रूरी काम चलता रहे तथा मालगुज़ारी वसूल होती रहे।"[१]

इस परामर्श से नवाब सआदत अली इतना घबड़ा गये कि वे गद्दी छोड़ने को तैयार हो गये। कम्पनी अभी इतनी दूर तक जाने के लिए तैयार नहीं थी। वेलेज़ली ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनके मूल प्रस्ताव का आशय ही था नवाब की सैनिक शक्ति को सदा के लिए समाप्त कर देना।[२] बातचीत में कुछ नर्मी आयी। ११ जनवरी, सन् १८०० को नवाब ने लखनऊ के रेसिडेन्ट—लेफ्टे० कर्नल विलियम स्कॉट के द्वारा गवर्नर जनरल को एक स्मृति-पत्र भेजा जिसमें लिखा था:—

"ऊपर लिखी बातों का विचार करते हुए तथा अंग्रेज़ कम्पनी की सरकार की उदार मनोवृत्ति को जानते हुए मैं आप श्रीमान से इतनी दयालुता की आशा करने

१. ईस्ट इंडिया कम्पनी सम्बंधी काग़ज़ात, हाउस ऑव कामन्स की अनुमति से प्रकाशित—सन् १८०६, भाग ३।

२. मेजर बर्ड—पृष्ठ ४०।

लगा हूं कि मेरी मित्रता में विश्वास करते हुए तथा हर अवसर पर हमने इस मित्रता का जो परिचय दिया है उसका ध्यान रखते हुए मेरे समूचे राज्य, उसकी प्रजा, उसकी सेना आदि पर मेरा पूर्ण स्वामित्व रहने दिया जायगा। आपसे अनुरोध है कि आप लेफ्टे० कर्नल विलियम स्कॉट को हिदायत देंगे कि मेरे सैनिक संगठन में मुझे बराबर परामर्श देते रहें और ख़ुदा ने चाहा तो यह सेना बहुत जल्दी मुस्तैद और वफ़ादार तैयार हो जायगी और आपकी मेहरबानी से मैं हमेशा आपका आज्ञाकारी और हुक्म पूरा करने वाला बना रहूंगा।

"इस तरह से कम्पनी का यश पृथ्वी पर चारों ओर फैलेगा और मेरी भी इज़्ज़त बढ़ेगी और मैं कम्पनी की तरक़्क़ी के लिए बराबर दुआ माँगता रहूंगा। इस तरह अपनी दोस्ती के कारण आज़ादी के साथ मैंने श्रीमान के सामने अपने दिल की बातें रख दी हैं..."

एक आज़ाद देश के आज़ाद बादशाह का इतना कायरतापूर्ण तथा भिखारी पत्र शायद ही पढ़ने को मिले। अंग्रेज़ों के सौभाग्य से अवध के सभी नवाब इतने सुशील थे कि उन्होंने "मित्र कम्पनी" के विरुद्ध हथियार उठाने, विश्वासघात करने आदि की कभी सोचा ही नहीं। इसीलिए वे हर पग पर ठोकर खाते गये।

इतने मीठे पत्र का उत्तर २२ जनवरी, १८०१ को मिला। लार्ड वेलेज़ली ने उत्तर भेजा कि अवध से नियमित रूप से सेना का ख़र्च मिलने के लिए यह आवश्यक है कि अवध के राज्य का आधा भाग कम्पनी को दे दिया जाय। कम्पनी सेना के मद में नवाब से, सन् १७९८ की संधि के अनुसार वार्षिक ७६ लाख रुपया पाने के वादे से सन्तुष्ट नहीं हैं। अवध की आधी रियासत, जिसकी वसूली १,३५,००,००० रुपया वार्षिक थी, कम्पनी को देनी ही पड़ेगी। यदि नवाब सहमत न हों तो गद्दी छोड़ सकते हैं। उनकी पेंशन मुक़र्रर कर दी जायगी। २८ अप्रैल, १८०१ को लार्ड वेलेज़ली ने लखनऊ के रेसिडेन्ट को पत्र लिखा कि यदि नवाब न राज़ी हों तो जबर्दस्ती क़ब्ज़ा कर लो।

अब सआदत अली ख़ां के लिए कोई चारा नहीं था। या तो वे कम्पनी से लड़ते या उसकी मांग स्वीकार कर लेते। लड़ने की गुन्जायश उनके पिता नवाब शुजा-उद्दौला ही समाप्त कर गये थे। इन्हें १० नवम्बर, १८०१ की यह संधि मजबूरन करनी पड़ी, जिसके द्वारा लार्ड वेलेज़ली ने स्वयं अवध में अपनी "सहायक संधि" नीति को समाप्त कर दिया पर अवध का भविष्य भी ब्रिटिश शासनकाल के सामने डूब गया।

इस संधि की दूसरी धारा के अनुसार अवध की सरकार को सेना के लिए कम्पनी को आगे कभी कुछ न देना होगा क्योंकि बदले में अवध का आधा राज्य कम्पनी की अमलदारी में चला गया। यदि नवाव के राज्य की रक्षा के लिए कम्पनी को अतिरिक्त पल्टन भी रखनी पड़ेगी तब भी नवाब को अतिरिक्त व्यय नहीं देना होगा।

धारा तीन के अनुसार नवाब के राज्य की रक्षा की ज़िम्मेदारी कम्पनी की होगी। उसकी दो पल्टनें अवध में रहेंगी। नवाब के पास पैदल सेना के चार बटालियन, एक बटालियन नजीब और मुवायतियों का तथा २००० घुड़सवार और ३०० गोलन्दाज़ रहेंगे। मालगुज़ारी की वसूली के लिए आवश्यक सेना तथा आमीलों (कलेक्टरों) के लिए कुछ घुड़सवार तथा अंग रक्षक नजीब छोड़कर शेष पूरी सेना तोड़ दी जायगी।

धारा ४—**नवाब की अंग रक्षा में सदैव एक ब्रिटिश दस्तक रहेगा।** धारा ५—नवाब के ख़ज़ाने पर अब कभी किसी क़िस्म की कोई मांग नहीं की जायगी। धारा ६—नवाब के राज्य का जो भाग कम्पनी को दे दिया गया है उस पर कभी भी उनके उत्तराधिकारियों का कोई दावा नहीं रहेगा तथा नवाब अपने राज्य में प्रजा की वृद्धि तथा समृद्धि के लिए उचित अधिकारी रखकर शासन चलायेंगे। **अपने शासन कार्य में वे कम्पनी के अफ़सरों की सलाह पर अमल करेंगे।** धारा ७—अवध की सरकार कम्पनी को जो वार्षिक रक़म देती है वह तभी बन्द होगी जब कम्पनी के प्राप्त इलाक़ों पर उसका पूरा क़ब्ज़ा हो जायगा। धारा ८—इसके पूर्व दोनों सरकारों में मित्रता तथा एकता की पुष्टि के लिए जो भी संधियां हुई हैं, उसमें से जिनका खण्डन इस संधि से हो जाता है, उनको छोड़कर शेष सभी लागू तथा चालू समझी जायंगी।

इस संधि से कितने स्पष्ट रूप से नवाब की पराधीनता प्रकट कर दी गयी है? धारा ४ के अनुसार वे सदा ब्रिटिश पल्टन की निगरानी में रहेंगे। राजकाज में कम्पनी उनको "आदेश" देती रहेगी, यह तो धारा ६ से स्पष्ट ही है। इतना सब कुछ अपमान करने के बाद संधि के साथ ही रेसिडेन्ट के नाम कुछ हिदायतें भी थीं:—

"रेसिडेन्ट को चाहिए कि हर अवसर पर नवाब वज़ीर के प्रति अत्यन्त सम्मान आदर, सौहार्द्र तथा सावधानी से पेश आये। उनके साथ हर बरतावे तथा व्यवहार में मित्रता तथा एकता का परिचय दें। उनका कर्तव्य है कि नवाब वज़ीर के अधिकार तथा शासन को मज़बूत बनायें। नवाब के शासन कार्य में यदि कभी

कोई हस्तक्षेप करना हो तो बहुत ही गुप्त रूप से नवाब से परामर्श करके तभी कुछ करना चाहिए, अन्यथा नहीं।"

किन्तु ये आदेश भी दो चार वर्ष के बाद रेसिडेन्ट पदाधिकारी भूल गये और नवाब (बादशाह) वाजिदअली शाह के शासनकाल में रेसिडेन्ट कर्नल स्लीमन के व्यवहार से यह स्पष्ट था कि इस आदेश को मानते ही नहीं थे।

अस्तु, नवम्बर, १८०१ की संधि के अनुसार अवध के नीचे लिखे इलाके कम्पनी की सरकार को मिले। उस समय नवाब का एकमात्र देहाती टैक्स मालगुज़ारी था। सन् १८०१ की सरकारी आमदनी भी दी जाती है[१]:—

इलाका	आमदनी		
	रुपया	आना	पाई
इटावा, कोड़ा, कड़ा,	५५,४८,५७७	११	९
रेहुर वग़ैरः	५,३३,३४७	०	६
फर्रुखाबाद	४,५०,००१	०	०
खैरागढ़ व कंचनपुर	२,१०,००१	०	०
अज़ीमगढ़ वग़ैरः	६,९५,६२४	७	६
गोरखपुर व बुटबल	५,४९,८५४	८	०
इलाहाबाद वग़ैरः	९,३४,९६३	१	३
बरेली, मुरादाबाद, बिजनौर, बदायूं, पीलीभीत, शाहजहांपुर	४३,१३,४५७	११	३
नवाबगंज, रेहली वग़ैर:	१,१९,२४२	१२	०
मोहवल वग़ैर:	१,६८,३७८	४	०
कुल—	१,३५,२३,४७४	८	३

नवाब वाजिदअली शाह के शासन काल तक अवध का उपर्लिखित भाग ही कम्पनी के पास था पर उसमें कुछ थोड़ा परिवर्तन ११ मई, १८१६ की संधि के अनुसार हुआ यानी इलाहाबाद ज़िले की हंडिया तहसील ब्रिटिश गवर्मेन्ट को मिली और उसके बदले में नवाबगंज अवध को मिला। ब्रिटिश

१. कर्नल स्लीमन की डायरी, भाग २.

(कम्पनी) सरकार ने नवाब गाजीउद्दीन हैदर से एक करोड़ रुपया ऋण ले रखा था। उसके बदले में खैरागढ़, कंचनपुर और नैपाल राज्य से मिली हुई अर्थात् उसकी सरहद की तराई भूमि नवाब को दे दी गयी।

नवाबगंज तथा खैरागढ़ के जो इलाके नवाब को मिले, उनसे ३,२९,२४३ रुपया १२ आना साल की आमदनी होती थी और कम्पनी को हंडिया का जो इलाका मिला, उससे १,५८,९०५ रुपये की आमदनी होती थी। इस प्रकार कम्पनी को वास्तव में १,३३,४७,१३५ रुपया १२ आना ३ पाई की आमदनी की जायदाद मिली। कम्पनी को यह भी अधिकार मिला कि अवध में जहाँ चाहें अपनी सेना रख सकते हैं।

कुछ ब्रिटिश लेखकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि जिन इलाकों से नवाब के शासन काल में केवल १·३३ करोड़ की आमदनी थी, उन्हीं से कम्पनी के सुप्रबंध के कारण दुगनी आमदनी होने लगी। पर, नवाब की सरकार में केवल मालगुजारी की आमदनी का हिसाब लगाया गया था। कम्पनी की सरकार ने कर भार भी बढ़ाया था तथा उनके हिसाब में सब मदों में आमदनी शामिल है। नवाव से प्राप्त इलाकों का प्रशासकीय बंटवारा करके जो "डिवीजन" बनाया गया था, उसके अनुसार आमदनी नीचे दी जा रही है।

नवाबों के बचे हुए आधे राज्य में लगान एक करोड़, सवा करोड़ के बीच में हमेशा रही। कभी कभी खज़ाने में पहुँचने वाली रकम इसलिए कम मालूम पड़ती थी कि आमीलों यानी कलेक्टरों को हुक्म[1] था कि कर्मचारियों के वेतन मिलने में देर न हो, इसलिए उनका वेतन काट कर शेष रकम खज़ाने में जमा किया करें। इसके लिए बराबर वाउचर्स भेजने पड़ते थे। नवाब के राज्य में लगान में वसूली में कमी इसलिए हो जाती थी कि रेसिडेन्ट कभी किसी आमिल, कलक्टर, को हटा देते या कभी किसी आमिल से खफ़ा हो जाते। दोहरी हुकूमत में अवध का नाश हुआ जा रहा था। अस्तु, सन् १८०१ में कम्पनी ने जो इलाके नवाब से प्राप्त किये थे, उनसे १८४८ में आगे लिखी आमदनी थी—ज़िलों का बंटवारा सन् १८०१ से कुछ भिन्न प्रतीत होगा, पर भूमि तथा क़स्बे वही हैं :—

१. मसीहुद्दीन।

ज़िला या इलाका	लगान १८४६–४६	आबकारी कर १८४६–४७	स्टैम्पकर १८४६–४७	कुलयोग १८४६–४७
		रुपयों में		
रूहीलखण्ड	६४,४४,३४१	२,४७,८५४	२,०४,५७६	६८,९६,७७१
इलाहाबाद हंडिया	२१,२९,५५१	१,४१,४०९	६१,८०२	२३,३२,७६२
फ़र्रुखाबाद	१३,५७,५४४	८८,०६१	४९,६९८	१४,९५,३०३
मैनपुरी	१२,३३,९०१	२४,८२२	२०,४८४	१२,७९,२०७
इटावा	१२,८०,५९६	१९,६४७	१०,३५५	१३,१०,५९८
गोरखपुर	२०,८०,२९६	२,१०,०४५	९६,५४९	२३,८६,८९०
आज़िमगढ़-महौल	१४,८९,८८७	८१,२५७	५३,९२५	१६,२५,०६९
फतेहपुर	१४,२५,४३१	६०,३७०	२१,०६३	१५,०६,८६४
कानपुर	२१,५१,१३९	१,२६,१५५	५७,४०६	२३,३४,७००
कुल	१,९५,९२,६८६	९,९९,६२०	५,७५,८५८०	२,११,६८,१६४

अवध के भाग्य को मोड़ देने वाली सन् १८०१ की संधि का ज़िक्र ख़त्म करने के पहले एक मार्के की बात और लिख देना ज़रूरी है। १८०१ की संधि का हवाला हमको बार-बार देना ही पड़ेगा। सन् १७९७ में २१ सितम्बर को नवाब आसफुद्दौला के पास जो फ़ौज थी, उसमें ८०,०००सिपाही थे। यदि वे दृढ़ता तथा साहस से काम लेते तो अंग्रेज़ों को मार भगाने में क्या दिक्क़त थी। पर वे समझौता और संधि ही करते रह गये। सन् १८०१ की सुलह के बाद नवाब सआदतअली के पास केवल ३०,००० की पल्टन रह गयी। ५०,००० सिपाही काम से हटा दिये गये। जब ८०,००० की फ़ौज से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का काम नहीं लिया गया तो, ३०,००० से कोई आशा ही नहीं रह गयी थी।

मैकाले तथा स्मिथ ऐसे इतिहासकारों ने भी अवध के सभी नवाबों को विलासी और निकम्मा कहा है। कर्नल स्लीमन जब अवध राज्य के विरुद्ध मसाला तैयार कर रहे थे, उन्होंने भी अवध की हुकूमत तथा शासकों में कोई गुण नहीं देखा पर चेष्ठा करने पर भी वे सआदत अली खां के गुणों तथा उनकी सराहनीय शासन-पटुता को न छिपा सके। इसलिए नवाबों के सबसे बड़े शत्रु कर्नल स्लीमन के ही शब्दों में सआदतअली की प्रशंसा का विशेष महत्व है। वे लिखते हैं कि "नवाब सआदतअली खां ने बड़े परिश्रम से राजकाज सम्भालना शुरू किया। उन्होंने राजाओं के पास जो "लगान से माफ़" ज़मीनें पड़ी हुई थीं, उसका सिलसिला ही

समाप्त कर दिया। बेकार के कर्मचारी निकाल दिये गये. . . . १२ जुलाई १८१४ में जब उनकी मृत्यु हुई वे खजाने में १४ करोड़ रुपया छोड़कर मरे थे. . . . . . वे महान सर्वांग योग्यता के व्यक्ति थे।"[१]

एक स्थान पर अपनी डायरी में स्लीमन ने लिखा है[२]—"सआदत-अली खां सन् १८०१ में ही कम्पनी को गद्दी देकर निश्चिन्त होना चाहते थे। . . . उन्होंने पहली बार सरकारी ख़ज़ाने की रचना की। सरकार के पास रुपया इकट्ठा करने लगे. . . . नवाब शुरू में पक्के शराबी थे पर सन् १८०१ में वे लखनऊ में हज़रत अब्बास की दरगाह पर गये और वहां क़सम खाई कि अब कोई इल्लत नहीं रखेंगे, फलतः वे पूर्ण सच्चरित्र हो गये. . . . . इतना क़ाबिल बादशाह अवध की गद्दी पर नहीं बैठा. . . २१ जनवरी,१७९८ में गद्दी पर बैठे। १२ जुलाई १८१४ को मरे और इस बीच में १४ करोड़ रुपया ख़ज़ाने में बचा लिया. . . उनके बाद यह ख़ज़ाना खाली ही होता गया। उनके लड़के गाज़ीउद्दीन हैदर ख़ज़ाने से ४ करोड़ रुपया खा गये। २० अक्टूबर १८२७ को उनके देहान्त पर नवाब नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। ७ जुलाई १८३७ को उनका देहान्त हुआ। वे ख़ज़ाने से ९ करोड़ १० लाख रुपया ख़त्म कर गये। इस तरह सिर्फ ७०,००,००० रुपया बचा रहा। उनके उत्तराधिकारी मुहम्मदअली शाह १६ मई, १८४२ को मरते समय १,२४,००० सोने की मुहरें तथा ३५ लाख रुपया सरकारी ख़ज़ाने में और २४ लाख मोहरें हमारी हुण्डियों में छोड़ गये थे। १३ फरवरी, १८४७ को अमजदअली शाह मरते समय हमारी हुण्डियों में ऊपर लिखी मोहरें तथा शाही ख़ज़ाने में १,२४,००० सोने की मुहरें तथा ९२ लाख रुपया नकद यानी १ करोड़ ३६ लाख रुपया छोड़कर मरे थे. . . . वाजिदअली शाह इस सम्पत्ति को लुटाये दे रहे हैं। सोने की मुहरें गला डाली गयीं। हमारी हुण्डी भुना ली गयीं—३० नवम्बर १८५१ को . . . . आमदनी से ज्यादा २० लाख रुपया साल अवध की सरकार का ख़र्च है . . . . वेतन वग़ैरः के मद में उनके ऊपर ५०,००,००० रुपये का बक़ाया है।"

स्लीमन का यह बयान बड़ा महत्वपूर्ण है। आगे चलकर पाठकों को स्वयं पता चलेगा कि नवाब सआदतअली की दौलत को उनके उत्तराधिकारियों ने लुटा दिया या स्वयं कम्पनी लूट ले गयी। सआदतअली ने इसलिए रुपया इकट्ठा किया

१. स्लीमन की डायरी, भाग २—पृष्ठ १९०। २. वही, भाग १—पृष्ठ ३०९

था कि १८०१ की संधि के बाद से ही वे कम्पनी से अपना आधा दिया हुआ राज खरीदना चाहते थे।[१] वे जानते थे कि कम्पनी को पैसे की लालच है और इस लालच में उससे कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। पर वे असमय मर गये।

ऊपर हम अवध के उन इलाकों की आमदनी लिख आये हैं जिनको नवाब सआदतअली खां ने अपनी लाचारी, कमज़ोरी या भूल से कम्पनी की सरकार को दे दिया था। जो इलाक़े अवध में रह गये थे उनकी आमदनी सन् १८०१ से १८५६ तक, नवाबी हुकूमत में बराबर ज्यों की त्यों बनी रही और मसीहुद्दीन ने सच लिखा है कि वाज़िदअली शाह् के शासन-काल में कभी भी साल में एक करोड़ रुपये से कम वसूली नहीं हुई। अवध के अधीन इलाक़ों की तालिका इस प्रकार है :—

इलाक़ा	इलाक़े के अंतर्गत केन्द्र	केन्द्र के अंतर्गत ताल्लुके	लगान रुपयों में
१. लखनऊ	लखनऊ	५७	९,५८,६६१
	दरियाबाद	६९	१३,६८,७२६
	उन्नाव	४४	११,१५,३६४
२. फ़ैज़ाबाद	सुलतानपुर	२७	११,६४,९५७
	फैजाबाद खास	२८	११,१०,३९४
	प्रतापगढ़	३४	२,४३,६०६
३. खैराबाद	हरदोई	६४	१४,६१,३६१
	सीतापुर	१७	१३,५८,५७४
	लखीमपुर	६२	५,००,०००
४. बहराइच	बहराइच	४२	८,९८,९५१
	गोंडा	५२	१,७७,८७९
	मल्लावां	३६	३,६३,३३०
		५४२	१,०७,२१,८०८

१. तवारीखे अवध—लेखक नजमुलग़नी खां रामपुरी, प्रकाशक मतलौले उलूम प्रेस, मुरादाबाद, कुल पृष्ठ सं० १९०, सन् १९०५ ईसवीय

बादशाह वाजिदअली शाह ने कम्पनी द्वारा अपने ऊपर लगाये अभियोगों का उत्तर देते हुए ब्रिटिश महारानी मल्का विक्टोरिया को जो स्मृतिपत्र[1] लिखा था उसमें वे लिखते हैं कि सन् १८०१ की संधि के बाद से ५५ साल में इलाक़ों की आमदनी में, लगान-वसूली में कोई अन्तर नहीं पड़ा। "अगर यह मुक़ाबला करना हो कि किसकी अमलदारी में नगरों ने ज्यादा उन्नति की तो ब्रिटिश अमलदारी के कानपुर, फर्रुखाबाद और शाहजहांपुर से हमारे इलाक़ों की तुलना कर लेनी चाहिए। हमारे यहां आबादी भी उनके मुक़ाबले में ज्यादा बढ़ी है। **हमारे यहां रियाया राज़ी, मुल्क सरसब्ज़ है....रौनक व सरसब्ज़ी उन अज़ला से ज़्यादा है।"**

आगे चलकर वे लिखते हैं:—"कम्पनी की सलाह मानकर नवाब आसफ़ुद्दौला ने अपने यहां से सभी ग़ैर-अंग्रेज़ गोरों को बर्खास्त कर दिया....बनारस के राजा चेतसिंह की अंग्रेजों के ख़िलाफ़ मदद नहीं की....अपने मुल्क की हिफ़ाज़त के लिए ५६,७७,६६८ रुपया सालाना नवाब आसफुद्दौला कम्पनी को देते थे। नवाब सआदतअली ने इस रक़म में १९,२२,३६२ रुपये की वृद्धि कर दी ...कम्पनी का खर्च आमदनी से बहुत ज्यादा था। उसके सिपाहियों की तनख्वाह महीनों तक बक़ाया रह जाती...हमारी हरेक चीज़ से कम्पनी फ़ायदा उठाती थी...सन् १८०३ में हमारे राज्य के घोड़े अंग्रेज़ी फौज के लिए भेजे गये। २० अगस्त, १८०३ को लार्ड वेलेज़ली ने इसके लिए बड़ी कृतज्ञता प्रकट की थी... हर तरह से फ़ायदा उठाते थे.....नवाब शुजाउद्दौला व आसफ़ुद्दौला के ज़माने में इनके विश्वासपात्र विद्वान् और सुयोग्य ख्वाजासरा दुर्राबअली खां थे। उनके पास नवाब शुजा की बेगम के नाम वसीयतनामा था। उसे लेकर गवर्नर जेनरल के पास दुर्राब गये भी थे और उस ज़माने के कठिन से कठिन दस्तावेज़ों का मतलब समझाने का काम भी उनके ज़िम्मे था। पर गवर्नर जेनरल ने जो चाहा वह मतलब लगाकर रुपया ऐंठ लिया। ख्वाजासरा अलमाशअली खां के पास नवाब

१. बादशाह के विरुद्ध अभियोगों की एक पुस्तक कम्पनी सरकार ने लंदन में तैयार की थी पर उसकी एक प्रति भी बादशाह को नहीं दी गयी थी। जब उनके युवराज तथा भाई लन्दन गये—बादशाह की फरियाद लेकर, तो उन्हें यह पुस्तक मिली जिसे उन्होंने बादशाह के पास कलकत्ता भेजा और तब यह "उत्तर" लिखा गया था।

आसफुद्दौला का ६० लाख रुपया नक़द जमा था। कम्पनी की लाख कोशिश पर भी अलमाश ने भेद ज़ाहिर न होने दिया। ख्वाजासरा (जन्म से नपुंसक पैदा होने वाले व्यक्ति) में इतनी विद्या, गुण तथा वफादारी देखकर ही अंग्रेज़ों ने चिढ़कर "ख्वाजासरा" वर्ग को ही बदनाम करना शुरू किया[1]। वाजिदअली शाह को गद्दी से उतारते समय जो "दोष" उनपर लगाये गये थे, उनमें एक यह भी था कि वे "ख्वाजासरा" से घिरे रहते थे।

बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर

१२ जुलाई, १८१४ को नवाब सआदत के पुत्र गाज़ीउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। उस समय तक नवाब का खिताब था "नवाब वज़ीरुल मुमालिक बहादुर"। कम्पनी को मालूम था कि सआदतअली १४ करोड़ रुपया छोड़ कर मरे हैं इसलिए पहले तो नवाब की बड़ी ख़ुशामदें होने लगीं। गवर्नर जेनरल मायरा यानी लार्ड हेस्टिंग्स इनसे मिलने लखनऊ आये। बड़ी धूमधाम से भेंट हुई। लार्ड ने नैपाल से छिड़ने वाली जंग का ज़िक्र किया और सहायता चाही। नवाब ने भी मुसलिम तहज़ीब के अनुसार कह दिया कि "जान माल हाज़िर है"। लार्ड के चले जाने के बाद नवाब से १ करोड़ रुपया ऋण लिया गया। मजबूरन उनको देना पड़ा। कर्नल स्लीमन यद्यपि इस घटना को छिपा गये हैं पर और इतिहासकार इसे हज़म न कर सके। कुछ इतिहासकारों ने इसे नवाब द्वारा "कम्पनी सरकार को अनायास दान" भी कहा है तथा कम्पनी ने "दान न मानकर उसे ऋण" मान लिया। वास्तविकता यह है कि उनका गला दबाकर उनसे धीरे-धीरे एक करोड़ रुपया ऋण तथा बाद में नैपाल युद्ध के लिए ५० लाख रुपया दान लिया गया। सन् १८१६ में ऋण के भुगतान में खैरागढ़ व बिना काम का नैपाल की तराई का इलाक़ा उनको दे दिया गया।[2] नैपाल की तराई के बारे में स्वयं कर्नल स्लीमन स्वीकार करते हैं कि इसके घने जंगलों में अवध के बाग़ी जमींदार अपना अड्डा जमाते थे।[3] ऋण के रुपये की लालच में ही सन् १८१९ में नवाब को "बादशाह" की उपाधि मिली।[4] और वे "हिज़ एक्सलेन्सी" से बदल कर "हिज़ मैजेस्टी" बन गये। बादशाह वाजिदअली

१. नवाब वाजिदअली शाह का कम्पनी सरकार को "उत्तर"।
२. मेजर बर्ड। ३. स्लीमन की डायरी भाग १ व २, दोनों में
४. मेजर बर्ड।

का कथन है कि गाज़ीउद्दीन हैदर ने कम्पनी को पहले १ करोड़, फिर १ करोड़, फिर ५० लाख रुपया दिया।[1] कर्नल स्लीमन यह शिकायत तो करते हैं कि वे नवाब सआदतअली के खज़ाने में से ४ करोड़ रुपया खत्म कर गये पर यह नहीं लिखते कि उसमें से ढाई करोड़ रुपया तो कम्पनी ने ही उनसे छीन लिया था।

अस्तु, १४ अगस्त, १८२५ को तत्कालीन गवर्नर जेनरल लार्ड एमहर्स्ट ने बादशाह हैदर को पत्र लिखा था :—

"हमारी मित्रता के हरे-भरे और फूलते हुए बाग़ में एक नयी ताज़गी तथा सजावट आ गयी है। साथ ही युगों से हमारी-आपकी मित्रता के लाभ तथा फल की महत्ता प्रत्येक अंग्रेज़ के दिल में बस गयी है....मैं इस पत्र के द्वारा आपके सुयोग्य प्रधान मन्त्री, योग्य पिता की योग्य सन्तान, सच्चे दोस्त नवाब मातमुद्दौला मुख्तियार-उल-मुल्क के कार्यों के प्रति पूर्ण सन्तोष तथा स्वीकृति प्रकट करता हूँ।"[2]

२३ जून, १८२६ को लार्ड एमहर्स्ट ने बादशाह को एक पत्र लिखा था, जिसमें वे लिखते हैं :—[3]

"यह सुनकर कि अपनी गद्दी की रौनक तथा राज्य की मर्यादा बढ़ाने वाले आप श्री सम्राट् ने माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी को ५० लाख रुपया देने की महानतम उदारता तथा कृपा की है.....मैं श्री सम्राट् महोदय के अनगिनत दिनों के वैभव तथा सुख की कामना करता हूं......"

राजनैतिक इतिहास के विद्यार्थी को राजनीति या कूटनीति के इतिहास में चापलूसी तथा ख़ुशामद की ऐसी मिसाल कम मिलेगी, विशेषकर जबकि एक ओर ख़ुशामद की जा रही हो और दूसरी ओर, उसी नरेश के पैरों में कुल्हाड़ी चलायी जा रही हो। १४ अगस्त, १८२५ को गवर्नर जेनरल ने बादशाह को जो पत्र लिखा है, वह पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं। २२ जुलाई १८२५, इस पत्र के लिखने के ठीक २३ दिन पहले उसी लार्ड के दफ्तर से, कलकत्ता से एक पत्र लखनऊ के रेसिडेन्ट के पास भेजा गया जिसमें लिखा था :—

"सन् १८०१ की संधि की धाराएं ३, ५ और ६ पर पूर्णतः विचार करने के बाद और सन् १८०२ के लार्ड वेलेज़ली के स्मृतिपत्र को देखने के बाद हम इस

१. वाजिदअली शाह का उत्तर।

२. अवध में डांकेज़नी—मेजर बर्ड, पृष्ठ ६८। ३. वही, पृष्ठ ७१।

नतीजे पर पहुंचे हैं कि ब्रिटिश सरकार का यह पूरा हक़ और नैतिक अधिकार है कि हमारी सेनाएं अवध की सरकार के उसी काम में लगायी जायं जो उचित और न्याय-संगत हों यानी अन्याय के लिए या जनता से रुपया छीनने के काम के लिए न हों. . .रेसिडेन्ट का यह निश्चित तथा अनिवार्य कर्त्तव्य है कि बिना इस विषय में पूरा इत्मीनान किये कम्पनी की सेना देना अस्वीकार कर दे।"[१]

जिस गाज़ीउद्दीन हैदर की इतनी तारीफ थी, जिनके मन्त्री की इतनी प्रशंसा स्वयं गवर्नर जेनरल करते हैं, जो इतना योग्य नवाब वज़ीर समझा जाता है कि उसे "बादशाह" बना दिया जाता है, उसके बारे में और उसके उत्तराधिकारी नासिरुद्दीन हैदर के बारे में अवध के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार के "विशेषज्ञ" स्लीमन साहब लिखते हैं :—

"लेकिन जब गाज़िउद्दीन हैदर ऐसे निकम्मे और चरित्रहीन शासक तथा नैतिकता से रहित मंत्री और इन दोनों के पिछलगुये तथा कृपापात्र राज्य की आमदनी का रुपया हज़्म करने लगे. . .और प्रधान मंत्री अवध की सैनिक शक्ति को धीरे-धीरे बढ़ाने लगे. . .अवध की सेना ६०,००० से ऊपर हो गयी. . . .सन् १८३७ में नासिरुद्दीन के ज़माने में, उनके प्रधान मंत्री ने ८ अप्रैल १८३७ को ब्रिटिश रेसिडेन्ट को जो सूचना पत्र दिया था, उसके अनुसार घुड़सवार, पैदल सब मिलाकर ६७,९५६ व्यक्ति थे जिनमें से २०,००० की स्थायी सेना थी. . . . २६ नवम्बर १८३७ को ब्रिटिश सरकार ने रेसिडेन्ट को आदेश दिया कि हमारी पलटनें केवल राज्य के अंतर्गत विद्रोह या झगड़ा होने पर ही काम में लायी जा सकती हैं. ."[२]

अर्थात्, सन् १७९५, १७९८ तथा १८०१ में सेना की सहायता देने के बारे में जो वादे किये गये थे, सब समाप्त कर दिये गये। वाजिदअली शाह ने लिखा है :—"कम्पनी की सेना बाग़ी ज़मींदार या राजाओं को दबाने के लिए कभी नहीं दी गयी। सन् १७९८ की संधि के अनुसार कम्पनी को सदैव ८०० की पल्टन रखना चाहिए था। पर, अपना खर्च बचाने के लिए कम्पनी ने कभी इतनी बड़ी सेना नहीं रखी। सन् १९३६ में कम्पनी ने सीतापुर वगैरः की सेनाएं भी समाप्त कर दीं।"[३]

१. स्लीमन की डायरी—भाग २, पृष्ठ १९४। २. स्लीमन की डायरी—भाग २, पृष्ठ १९२। ३. कम्पनी को उत्तर—वाजिदअली शाह।

असल बात यह थी कि लार्ड हेस्टिंग्स की दोस्ती के इज़हार से गाज़ीउद्दीन हैदर भुलावे में पड़ गये। १२ नवम्बर १८१४ को उन्होंने गवर्नर जेनरल को पत्र लिखा कि "हमारे पास जो भी रियासत है उसका अब एक भी गांव या परगना न लिया जाय। हमारी रियाया से रेसीडेन्ट का प्रत्यक्ष कोई सम्पर्क न हो, वे कोई अर्जी भी न ले सकें। जो हमारे राज्य में हमसे बाग़ी हो उसे रेसीडेन्ट के यहां कोई पनाह न मिले।" उस समय लखनऊ में रेसिडेन्ट लेफ्टे० कर्नल बेली थे। गवर्नर जेनरल के यहां से बड़ा गोल जवाब आया; पर अंग्रेज़ों के कान खड़े हो गये थे। स्वतन्त्रता तथा हिम्मत के साथ राज्य करने वाला शासक उनको स्वीकार न था। अतएव एक ओर रुपया ऐंठने के लिए ख़ुशामद की जा रही थी, दूसरी ओर उनके राज्य को खोखला करने का भी प्रयत्न हो रहा था।

कम्पनी को नवाब से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त रक़म की ही आमदनी नहीं थी। और भी लूट-खसोट होती थी। नवाब शुजाउद्दौला की पत्नी बहू बेगम के साथ जो सलूक हुआ था, वह पाठकों को बतलाया जा चुका है। गाज़ीउद्दीन के शासन-काल में उनका देहान्त हुआ। एक करोड़ रुपया छोड़कर वे मरी थीं। क़ायदे के मुताबिक उनकी जायदाद गाज़ीउद्दीन को मिलनी चाहिए थी पर सब रुपया अंग्रेज़ों ने ले लिया और कुछ हज़ार रुपया नवाब के पास भेजा।[1] यही नहीं, बल्कि वाजिदअली शाह लिखते हैं कि बेगम के ग़ुलाम (नौकर) हुसेन, अलीजान वग़ैरः को कम्पनी ने २००० रुपया मासिक पेंशन नवाब से ही दिलवाया।[2]

"और जब यह सोने की खान ख़त्म हो गयी, स्लीमन अवध पर टूट पड़ा।"[3]

नसीरुद्दीन हैदर

२० अक्टूबर, १८२७ को गाज़ीउद्दीन हैदर की मृत्यु हुई और उसी दिन उनके पुत्र नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी उम्र २५ वर्ष की थी। भरी जवानी थी ही, भोग-विलास से उनको विशेष रुचि थी। पर ऐश-परस्त होते हुए भी राजकाज से वे कदापि उदासीन नहीं थे। रुपया खर्च करने में उनका हाथ नहीं रुकता था पर विशेषतः वे दान देने तथा दरिद्रों की सेवा-सहायता में बहुत दिलचस्पी रखते थे। एक लेखक के शब्दों में "उन्होंने मुहताजों का घर भर

१. अवध पर डाकेज़नी—मेजर बर्ड। २. वाजिदअली शाह का उत्तर। ३. मेजर बर्ड—पृष्ठ ७१।

दिया।" संगीत से बड़ा प्रेम था। उनके यहां सौ शहराती तथा सौ देहाती वेश्याएं मुलाज़िम थीं। स्वयं काफ़ी अच्छा भोजन करते थे और अपने कर्मचारियों को भी अच्छा भोजन कराते थे। इनको नये बाग़ लगवाने का बड़ा शौक़ था। चारबाग़, कम्पनीबाग़ वग़ैरः इन्हीं की देन है। इन्हीं के शासनकाल में लखनऊ "उद्यानों का शहर" बन गया था।

इनकी जीवनचर्या के सम्बन्ध में "फ़सानये इब्रत"[1] में लिखा है कि "जब बादशाह भोजन के लिए तशरीफ़ लाते थे तो गाना शुरू होता था। अंग्रेज़ी बाजा पहले बजता था....बादशाह खाना खाने के समय किसी से आंख तक नहीं मिलाते थे....हर आदमी अपने काम में कुशलता के साथ लगा रहता था....दीवारों पर बड़े-बड़े आईने लगे रहते थे और इन्हीं आईनों में देखकर बादशाह हर आदमी पर नज़र रखते थे...जो स्त्री वहां पसन्द आ गयी, उसे पास बुलाया, कुछ खिलाया पिलाया...जिससे इख़तलात मंज़ूर हुआ, उसका दिल वार हुआ...आधी रात को महफ़िल बरख़्वास्त होती थी...रात भर भोग-विलास में बिताकर जब सुबह को उठते...नया मकान व ताज़ा सामान फिर तैयार मिलता...मिजाज़ बहुत नाज़ुक पाया था...जानवरों का बड़ा शौक था...बेहतरीन घोड़े और हाथी सजे-सजाये। मुहर्रम बड़े एहतराम से मनाते थे..चहल्लुम तक ज़मीन पर सोते थे.."

आगे चलकर लिखा है :

"गर्मी की फ़सल में गुलदस्तों का चमन बनता था। फूलों का शामियाना बनता था।"

इतने विलासी नरेश की तबीयत एक अंग्रेज लड़की पर आ गयी। कम्पनी की एक सेना का एक कर्मचारी हापकिन्स वाल्टर्स लखनऊ आया। वहां पर उसने श्री व्हीर्त्ति की विधवा से विवाह कर लिया। व्हीर्त्ति एक ब्रिटिश सौदागर थे। इस विधवा-विवाह से एक कन्या उत्पन्न हुई थी जिसने बादशाह का मन खींच लिया। विवाह के बाद हैदर ने उसका नाम मुक़द्दरा औलिया रखा। यह सन् १८२७ की घटना है।[2]

१. फ़सानये इब्रत--ले० मिर्ज़ा रज्जब अली बेग "सरूर", वर्त्तमान प्रकाशक--किताब नगर, दीनदयाल रोड, लखनऊ।

२. स्लीमन की डायरी, भाग १--१५ जनवरी १८५० को यह घटना उन्होंने लिखी है--पिछला इतिहास दिया है।

मुक़द्दरा की माता दुश्चरित्र थीं। हापकिंस के मरने के बाद बख़्शअली नामक एक डोम मुसलमान से उनका अनुचित सम्बन्ध हो गया। श्रीमती वाल्टर्स को हापकिंस के द्वारा चार लड़कियां प्राप्त हुई थीं। बादशाह की सास बन जाने के बाद, उनकी शेष सन्तान का भरण-पोषण भी बादशाह को करना पड़ा। इन दिनों कम्पनी की सरकार ने बादशाह पर बहुत दबाव डाला कि कम्पनी को रुपया कर्ज़ दें। मजबूर होकर बादशाह को १ मार्च, १८२९ को ६२,४०,००० रुपया कम्पनी को कर्ज़ देना पड़ा। कम्पनी से यह तय हुआ कि इस ऋण के सूद की रक़म नियमित रूप से श्रीमती वाल्टर्स तथा उनकी चारों लड़कियों को, जिनमें मुक़द्दरा औलिया भी शामिल थीं—देना होगा। जुलाई, १८३७ में बादशाह की मृत्यु के बाद मुक़द्दरा औलिया भी अपनी मां के पास चली गयीं। बादशाह की यह बेगम बड़ी बदचलन थी। वैधव्य काल में उसे गर्भ रह गया। ९ नवम्बर १८४० को बहुत बीमार पड़ी। गर्भपात कराना चाहती थी, उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी बहन सर्फ़ुन्निसा ने अपने सौतेले पिता बख़्शअली से संबंध कर लिया। इस डोम की चारों ओर बड़ी शोहरत थी। अंग्रेज़ों में इसकी बड़ी पूछ थी, इसका पेशा चकला चलाना था। बादशाह वाजिदअली शाह ने इसे जेल में डाल दिया। ऋण से प्राप्त "पेंशन" यानी सूद की रक़म और मूल रक़म भी अंग्रेज़ हड़प कर गये। बादशाह ने अपना रुपया वापस चाहा पर कम्पनी ने नहीं सुना।[१]

ऊपर का बयान कर्नल स्लीमन साहब का है। हमने जानबूझ कर इस घटना को दिया है जिससे यह अन्दाज़ लग सके कि किस-किस उपाय से अवध की सरकार का रुपया लूटा जाता था। साढ़े बासठ लाख की ऋण की रक़म और उसका सूद कितनी सरलता से कम्पनी निगल गयी। स्लीमन ने वाल्टर्स की विधवा की दुश्चरित्रता का वर्णन कर अपनी बदनीयती को छिपाने की या उसकी सफ़ाई देने की चेष्टा की है। उस समय यानी जब ऋण दिया गया था, १ मार्च, १८२९ को, मेजर लो लखनऊ में रेसीडेन्ट थे और बीस वर्ष बाद यानी १८४९ में, जब यह रक़म ज़ब्त कर ली गयी, कर्नल स्लीमन रेसीडेन्ट तथा मेजर बर्ड उनके सहायक थे। मेजर बर्ड ने इस रक़म को निगल जाने की बड़ी निन्दा की है।"[२]

नसीरुद्दीन विलासी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। तत्कालीन लेखक भी

१. स्लीमन की डायरी—१५ जनवरी, १८५०।

२. अवध में डांकेज़नी—मेजर बर्ड।

उनकी इस दुर्बलता को स्वीकार करते हैं, जिस स्त्री से प्रेम हो जाता था, उस पर लाखों रुपया ख़र्च कर देने में उनको संकोच नहीं होता था। एक साधारण कुल की स्त्री से इनको बड़ा प्रेम हो गया। उसका नाम कुदसिया बेगम रखा गया। वह इतनी तेज़ स्त्री थी कि बादशाह को काफ़ी फटकार दिया करती थी।

एक दिन बादशाह दिलकुशा गये हुए थे। वहाँ बादशाह का शिकारगाह था और जंगल के बीच में एक ख़ूबसूरत महल बना हुआ था। उस दिन बादशाह ने जंगल में कई लंगूर मार डाले। शाम को जब घर वापस आये तो अपनी प्रिय बेगम कुदसिया से इनका झगड़ा हो गया। कहते हैं कि कुदसिया का किसी अन्य दरबारी से संबन्ध था और बादशाह को पता चल गया। कुदसिया के साथ ही महल की दो कहारिन बांदियों का भी बड़ा ज़ोर था—दिवई व धनियां।[1] अस्तु, उस दिन झगड़ा इतना बढ़ा कि कुदसिया बेगम ने इतना कड़ा ज़हर खाया कि उसके मुख से आंतें निकल पड़ीं। बादशाह इतना वीभत्स दृश्य देखकर इतना डरे कि महल छोड़कर अस्तवल में जाकर छिप रहे। जब बेगम मर गयीं और उनकी लाश महल से हट गयी तब वे घर वापस आये। बन्दर मारने का यह परिणाम हुआ।[2]

स्लीमन लिखते हैं कि बन्दर मारने को नवाबी शासन में सदैव बुरा समझा जाता था। प्रसिद्ध वज़ीर आग़ा मीर ने बादशाह बाग़ में एक बन्दर मार डाला। कुछ ही दिन बाद उनकी वज़ारत छिन गयी और वे जेल भेजे गये। वाजिदअली शाह के पिता बादशाह अमजदअली शाह को गद्दी न मिलती यदि उनके बड़े भाई असग़रअली ने एक दिन बन्दर न मार दिया होता। दूसरे दिन उनको ज्वर चढ़ आया और "बन्दर से बचाओ" चिल्लाते-चिल्लाते मर गये। कहते हैं कि बन्दर के इसी भय से फ़ायदा उठाकर दो हिन्दू दुष्टों ने सन् १८५७ में बेगम हज़रत महल के प्रधान कार्यालय की सूचना कम्पनी को दी थी। उनसे जाकर कहा गया कि आप यदि विजय चाहती हैं तो हनुमानजी की पूजा कराइए और बन्दरों को खिलाइए। उनसे काफ़ी रुपया ले लिया गया। फिर उनसे कहा गया कि अपने कार्य-क्षेत्र (महल) के ऊपर हनुमानजी का झंडा ख़ूब ऊँचे फहरा दीजिए ताकि उनको पता चल जावे कि उनका भक्त कहां पर है। जब झंडा फहरा दिया गया तो इन दुष्टों ने अंग्रेज़ों

१. फ़सानये इब्रत। २. स्लीमन की डायरी, भाग २, अध्याय २।

को बतला दिया कि महीनों से जिस स्थान का पता नहीं चल रहा था, उस पर झंडा फहरा रहा है। फिर क्या था, ब्रिटिश तोपें उस ओर मुड़ गयीं।

अस्तु, नसीरुद्दीन की विलासप्रियता को हम उनका एक बड़ा अवगुण स्वीकार करते हैं। सुन्दरी स्त्रियों का उन्हें बड़ा शौक़ था। उनकी एक बेगम ताजमहल के विषय में एक यूरोपीय महिला ने, बादशाह के रनिवास में उसे देखकर यह लिखा कि उसका रूप मुग्ध कर लेने वाला था और "सहस्र-रजनी चरित्र" में वर्णित महान सुन्दरी लाला रुख दूल्हन जैसी लगती थी। कर्नल स्लीमन ने इस महिला के बारे में लिखा है कि उसे शाही खज़ाने से ६००० रुपया मासिक पेंशन मिलती थी पर वह बदचलन निकली। इसे वैधव्य में गर्भ रह गया अतएव इसके महल पर पहरा बिठा दिया गया था।

बादशाह नसीर की पहली शादी दिल्ली के बादशाह की पोती बड़ी सुन्दर लड़की से हुई थी। पर वे बराबर नयी औरतों पर रीझते रहे। दिल्ली के बादशाह की पोती बादशाह बेगम को दूध पिलाने वाली एक धाय की जरूरत पड़ी। शहर से एक औरत लायी गयी जिसका नाम दुलारी था। इसे हाल में ही एक लड़की पैदा हुई थी।

दुलारी के पिता एक हिन्दू कुर्मी थे। उन्होंने अपने पड़ोसी फ़तेह मुराद से ६० रुपया कपड़ा खरीदने के लिए कर्ज़ लिया था। कुर्मी रुपया न चुका सका और मर गया। कर्ज़ के एवज़ में फ़तेह मुराद ने उसकी बेवा को घर में डाल लिया। उसके पूर्व पति से उसे दुलारी नामक बड़ी सुन्दरी कन्या थी। उस समय उस कन्या की उम्र पाँच साल की थी। मुराद की बहन करामतुन्निसा ने दुलारी को गोद ले लिया। मुराद की दूसरी बीवी से रुस्तम नामक एक लड़का था। उससे दुलारी से अनुचित सम्बन्ध हो गया। उसका सम्बन्ध एक लोहार तथा हाथी चलाने वाले फ़ीलवान से भी हो गया था। किसी से इसे एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई थी। फ़तेह मुराद के मरते ही ये घर से निकाल दिये गये और फिर राजभवन में जा पहुंचे। बादशाह की निगाह दुलारी पर पड़ी। बस, वह बेगम बन गयी और उसका नाम हो गया "मलका ज़मानी"। मलका ज़मानी ने बादशाह को इतना क़ब्ज़े में कर लिया था कि कभी-कभी क्रोध में उनके "कान भी पकड़ लेती थी।"[१]

१. Mrs. Park's Wanderings, Vol. I, page 87.—**श्रीमती पार्क की पुस्तक।**

बादशाह् बेगम अर्थात् बेगम अफ़ज़ल महल के बच्चे को दूध पिलाने दुलारी यानी मलका ज़मानी आयी थीं। अफ़ज़ल महल तो बादशाह् की निगाहों से इतनी उतर गयी थीं कि एक दूसरे महल, आलमबाग़ में बादशाह् से हटकर रहने लगी थीं। बादशाह् से उनको एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम प्यार में मुन्नाजान रखा गया था। पर, बेगम के नज़र से उतरने के कारण बादशाह् ने १८३२ में रेसि-डेन्ट को इत्तला भेज दी थी कि वे मुन्नाजान के पिता नहीं थे। मुन्नाजान के पैदा होने के २४ महीने पहले से वे अफ़ज़ल महल के पास नहीं गये थे।[१] पर इस बात को, यानी बादशाह् ने ऐसा कहा भी था, इसकी सत्यता में कम लोग विश्वास करते थे। इस बात के प्रचार से कम्पनी का लाभ था। इसलिए वह् यही राग अलाप रही थी।

अस्तु, विलासी नसीर ने अपनी सम्पत्ति अवश्य लुटायी पर विलासिता पर ही नहीं, दान-द्रव्य में ही नहीं, कम्पनी सरकार का पेट भरने में भी। उसे प्रसन्न करने के लिए भी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार का ४ प्रतिशत सूद वाला ३ लाख रुपये का ऋण खरीदा और उससे १२,००० रुपये साल सूद की आमदनी रेसिडेन्ट के ज़िम्मे कर दी गयी कि वे हर महीने अंधे, बहरे, लँगड़े अपाहिजों में ख़ैरात किया करें। इसके अलावा ३६,००० रुपया साल रेसिडेन्ट को इसलिए मिलता था कि लखनऊ कालेज के छात्रों को, ग़रीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दिया करें। इन सब बातों का ज़िक्र स्लीमन वग़ैरः ने कहीं नहीं किया है।

नसीर बादशाह् ने गंगा से नहर निकालने की योजना बनायी जिसे अंग्रेज़ों ने नहीं चलने दी। उन्होंने प्रजा के लिए कई अस्पताल बनाये। राज्य से ठगी तथा डकैती एकदम समाप्त कर दिया और ग़ुलाम ख़रीदने या रखने की प्रथा एकदम समाप्त कर दी। १००० रुपया माहवार ग़रीब बीमारों को मुफ़्त दवा बाँटने के लिए कम्पनी को मिला। कई सार्वजनिक बाग़ बनाये गये और उनका खर्च मुक़र्रर किया गया। रेसिडेन्सी की कोठी पर बादशाह् का २०,००० रुपये साल रख-रखाव का खर्च होता था। वह् रक़म बढ़ाकर ५०,००० रुपया सालाना कर दी गयी क्योंकि "रेसिडेन्ट हमारे मेहमान थे।"[२]

और ये मेहमान रेसिडेन्ट जब कभी मौक़ा मिलता था, बादशाह् को लूट लेते थे। बादशाह् के दीवान आग़ा मीर इतिहास-प्रसिद्ध कुशल शासकों में से थे।

१. अवध की डांकेजनी—मेजर बर्ड। २. वाजिदअली शाह् का उत्तर।

इनकी कुशलता से घबड़ाकर कम्पनी सरकार ने उन्हें पद से हटवा दिया और वे जेल भेजे गये। उनके ज़माने में गाजीउद्दीन हैदर के शासन के अंतिम दिन चमक उठे थे। पर नसीर ने ३१ दिसम्बर १८२७ को इनके स्थान पर गाज़ीउद्दीन हैदर की प्रधान रानी, बादशाह बेगम के भतीजे फ़ज़्लअली को दीवान मुक़र्रर किया। अपनी माता के कहने से नवम्वर, १८२८ को बादशाह ने वज़ीर को अपने स्वर्गीय चाचा शमसुद्दौला को मिलने वाली पेंशन की रक़म का एक मुश्त में हिसाब करके २१,८५,७२२ रुपया १ आना ११ पाई दे दिया। फ़ज़्लअली का काम ठीक नहीं था। अतएव उन्होंने बादशाह की झिड़कियों से घबड़ाकर फ़रवरी १८२९ में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। नसीर उन्हें गिरफ़्तार करना चाहते थे पर रेसिडेन्ट ने उनको केवल शरण ही नहीं दी बल्कि बादशाह के लाख कहने पर भी पेंशन वाला रुपया लौटाने न दिया। अपने एक साल के शासनकाल में राज्य का ३५ लाख रुपया फ़ज़्लअली ग़बन कर चुके थे। पर रेसिडेन्ट ने उनकी पूरी रक्षा की।

यह बयान स्वयं कर्नल स्लीमन का है।[1] तब तो इसमें संदेह की गुन्जायश नहीं है। इसी प्रकार कम्पनी के कर्मचारी अवध के बादशाहों को लूटने वालों को शरण दिया करते थे।

जिस समय नसीर के राज्य में इतना सुधार-कार्य हो रहा था तथा निकम्मे मंत्रियों को कम्पनी के रेसिडेन्ट शरण दे रहे थे—जबकि बादशाह ने अपनी पल्टन बढ़ाकर ६७,९५६ कर दिया था—कम्पनी की सरकार अव्यवस्था का रोना गाती जा रही थी। २० जनवरी, १८३१ को गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बेंटिक से बादशाह से उनके मंत्रियों की मौजूदगी में जो मुलाक़ात हुई, लार्ड ने उनसे साफ़ शब्दों में कह दिया कि हर मुहक्मे में अवध का कुशासन इतना बढ़ गया है कि "सुधार के लिए ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा।"[2] २५ अगस्त, १८३१ को लार्ड ने पुनः बादशाह को लिखा था कि "अगर हमारी सलाह के अनुसार शासन न होगा तो हम सैनिक सहायता बन्द कर देंगे।"[3] १५ अगस्त, १८३२ को गवर्नर जेनरल ने बादशाह को फिर लिखा कि "बिना प्रकट आवश्यकता के हम इतनी कठोर भाषा का उपयोग नहीं कर रहे हैं।" रेसिडेन्ट को लिखा गया कि बादशाह को

१. स्लीमन की डायरी, भाग १ पृष्ठ २७२,
२. स्लीमन की डायरी, भाग १, पृष्ठ १९४।
३. डायरी, पृष्ठ १९५,

जाकर समझाओ कि जिस प्रकार कुशासन के कारण मैसूर का राज्य हमने छीन लिया है, तुम्हारा राज्य भी हम छीन लेंगे।

स्पष्ट है कि नसीर ऐसे चतुर तथा कुशल शासक को बदनाम करके, उसको पंगु बनाकर, कम्पनी अवध को और तबाह करना चाहती थी। पर, अंग्रेज़ इतने से ही सन्तुष्ट न रहे। कई इतिहासकारों का ख्याल है कि रेसिडेन्ट ने ही कुशल शासक नवाब सआदतअली खां को ज़हर देकर समाप्त कराया था। वे स्वाभाविक मौत नहीं मरे थे। उसी प्रकार नसीरुद्दीन हैदर भी मर गये।

"शुक्रवार की रात को, ७ जुलाई, १८३७ में, इनकी तबीयत यकायक ख़राब हो गयी। चार घड़ी रात गये खुदा के यहाँ चले गये।"[१] जब बादशाह की हालत ज़्यादा ख़राब हुई तो रात में दरबार वकील ग़ुलाम यहिया ने रेसिडेन्ट को जगाकर कहा कि "बादशाह की हालत ज़्यादा ख़राब है।" रेसिडेन्ट कर्नल लो ने कैप्टन पेटन और शेक्सपियर को महल भेजा। उसी समय वज़ीर ने कप्तान मैगेनसी की पल्टन महल पर तैनात करवा दी थी। शेक्सपियर वग़ैर: के पहुंचने तक बादशाह मर चुके थे।[२] वे तीन सप्ताह से बीमार थे। पर यह बीमारी तीन हफ्ते की थी, ऐसा केवल स्लीमन ही कहते हैं।[३] स्लीमन स्वयं कहते हैं कि बादशाह को धुनिया व दुलवी कहारिनों की मदद से इसलिए ज़हर दिया गया था कि जनता चाहती थी कि जल्दी ब्रिटिश राज्य हो जाय!

मुन्नाजान और मुहम्मदअली शाह

बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के आंख मूंदते ही अवध की भी आज़ादी ने नेत्र बन्द कर लिये। हैदर योग्य शासक थे। बड़े सज्जन और स्वभाव के नर्म व्यक्ति थे। किसी का बुरा नहीं चाहते थे। पर, एक ओर अंग्रेज़ों ने इनको अपना शासन ठीक से चलाने नहीं दिया। दूसरी ओर वे स्वयं इतने विलासप्रिय तथा ऐशो-इशरत पसन्द थे कि उनसे राज्य की गहरी हानि हुई। निस्सन्देह उन्होंने अपने भोग-विलास में पानी की तरह रुपया बहाया। इनके पितामह नवाब सआदतअली ने अपने राज्य में विलासिता के विरुद्ध कठोर नियम बनाये थे; सआदतअली के

१. फ़सानये इब्रत। २. कर्नल स्लीमन की डायरी—भाग २, अध्याय ४। ३. तवारीखें नदीरूल-अस्र—ले० मुं० नवलकिशोर, पृष्ठ सं० ११७४- प्रकाशक —नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८६३

पिता के समय में ही शहर में मुहर्रम या होली ऐसे त्यौहारों के अवसर पर पांच कोस के इर्द-गिर्द शराब नहीं बिक सकती थी। सआदतअली के पास होली के दिनों में नगर के एक मुंशीजी ने यह शेर लिखकर भेजा :—

कुर्क़मय अय्यामे होली के कहो क्या कीजिए।
जी में आता है कि इस सूरत में कंठी लीजिए।
गर तमाशा कायथों का देखना मन्जूर हो।
शाह दो दिन के लिए हमको इजाज़त दीजिए॥

इस प्रार्थना पत्र पर नवाव ने हुक्म लिखा—"मुहतसिवरा दोरूने खाना चिकार-यानी कोतवाल का काम घरों के अन्दर जाना नहीं है।" अर्थात् घर में वैठकर पीने की इजाज़त थी। सरेआम नहीं। पर यह सव नियम भी नसीर के ज़माने में शिथिल हो गये थे।

एक राजा के मरने के वाद ही, दूसरे के गद्दी पर बैठने के समय अंग्रेज़ों को रुपया लूटने, ऐंठने तथा और अधिक अधिकार प्राप्त करने का अवसर मिलता था। नसीरुद्दीन ने मुन्नाजान को अपना जायज़ लड़का नहीं माना था, इसका ठोस प्रमाण नहीं मिलता। बहुत सम्भव है कि अपनी प्रथम स्त्री से अप्रसन्न हो जाने के कारण उन्होंने कुछ कह दिया हो? भरी जवानी थी ही। वे अपने उत्तरा-धिकारी के विषय में सोच भी नहीं पाये रहे होंगे। ३५ वर्ष की उम्र में ही उनका देहान्त हो गया। अतएव अंग्रेज़ों ने उससे फ़ायदा उठाया और वे कामयाब भी हुए। उधर वादशाह दम तोड़ रहे थे, इधर उनके बूढ़े चचा, नवाब नसीरुद्दौला के पास रेसिडेन्ट लो का दूत पहुंचा। जल्दी में उसने उनसे एक इक़रारनामा पर हस्ताक्षर कराया जिसमें लिखा था :—

"मैं यह घोषणा करता हूं कि यदि मैं गद्दी पर बिठा दिया गया तो गवर्नर जेनरल साहव जो भी मसविदा नयी संधि का भेजेंगे, उसको स्वीकार कर हस्ताक्षर कर दूंगा।"[१]

नवाब नसीरुद्दौला ने उस काग़ज़ पर लिखा "क़बूल वो मन्जूरस्त।" यह स्वीकृति प्राप्त करते ही अंग्रेजी पल्टन मुन्नाजान को खदेड़ने के लिए चल पड़ी। मुन्नाजान की माता बादशाह बेगम उर्फ अफ़ज़ल महल यदि अधिक लोकप्रिय होतीं तो शायद उन्हें हटाने में कठिनाई होती। पर, जनता ने भी मुन्नाजान को बचाने में तमाशाई के रूप में ही ज़्यादा दिलचस्पी ली।

१. मेजर बर्ड—अवध की डांकेजनी—पृष्ठ ८४।

"फ़सानये इब्रत" में मिर्ज़ा रजबअली बेग़ उस समय की कथा को बड़े दिलचस्प ढंग से लिखते हैं। संक्षेप में, उनके कथनानुसार :—

"बाद दफ़न नसीरुद्दीन हैदर आधी रात को नसीरुद्दौला गद्दी पाने के लिए फ़रहबख़्श कोठी में तशरीफ़ ले आये। रेसिडेन्ट कर्नल लो, छोटे साहब, रोशनुद्दौला व सुवहानअली ख़ां कमरे में सलाह कर रहे थे। उसी वक्त बादशाह बेगम, फ़र्संदूबख़्श मिर्ज़ा और मुन्नाजान हाथी पर सवार होकर एक जुलूस के साथ दरवाज़े पर आ पहुंचीं। छोटे साहब ने दरवाजे पर पहुंच कर मना किया पर वे न मानी और हाथी से उतर कर अन्दर आ गयीं। हंगामा हुआ और छोटे साहब घायल भी हो गये। बेगम ने मुन्नाजान को तख़्त पर बिठाया। जो लोग हाजिर थे, उनको नज़रें दी गयीं। बाक़ी दूसरे दिन के लिए मुल्तवी रखी गयीं। मिर्ज़ा इमामबख़्श सिपहसालार मुक़र्रर हुए। रेसिडेन्ट साहब ने उसी वक्त फ़ौज की तैयारी का हुक्म दिया। बादशाह बेगम और नवाब रोशनुद्दौला की गर्मागर्म बहस हो गयी। रेसिडेन्ट ने मिर्ज़ा अली खां से कहा कि बेगम ने यह अच्छा नहीं किया। राज्य की लालच में न पड़ें। घर वापस जावें। सुबह को देखा जायगा। पर, लोगों ने जमने न दिया। "फिर रेसिडेन्ट ने मुस्तफ़ा खां रिसालदार—अब्दुररहमान खां कंधारी के पोते को समझाया, कहा कि बखुशी राज्य छोड़ दें वरना अच्छा न होगा। छोटे बड़े की ख़ातिर में न आया। इसके बाद मेगनीज़ के रिसाले की तोपें लाल बारहदरी के सामने लगायी गयीं। कत्लेआम शुरू हुआ। पहली जर्ब में मुस्तफ़ा ख़ां ख़त्म हुए। बुरदे भाग निकले। सैकड़ों का पता न चला। पादशाह बेगम मुन्नाजान को लेकर ख़राब हालत में अलतास बाग़ वापस आयीं। वहां से गिरफ्तार होकर कई दिन तक मुन्नाजान के साथ कोठी रेसिडेन्सी में रहीं। ७ रबीउस्सानी, मंगल के दिन, १२५३ हिज्री अंग्रेज़ी फ़ौज़ कानपुर से आ गयी। वे एक टूटे बंगले में क़ैद की गयीं। वहाँ से चुनारगढ़ के क़िले में भेजी गयीं।"

स्लीमन यह स्वीकार करते हैं कि बादशाह को ज़हर दिया गया था—वे तीन सप्ताह से बीमार भी थे। पर, ज़हर देने के कारण, यदि उनके कथनानुसार यह था कि "जनता चाहती थी कि जल्दी ब्रिटिश हुकूमत आ जाय" तो फिर उन्हीं के कथनानुसार, लखनऊ का जनसमूह "मुन्नाजान के पक्ष में" क्यों था। स्लीमन के कथनानुसार उस समय की घटना, संक्षेप में, इस प्रकार है :—

"नसीरुद्दौला ३ बजे तड़के, बीमारी की हालत में, महल लाये गये। उनके साथ, उनके बेटे अमजदअली शाह, पोते वाजिदअली शाह वग़ैरः, हमीदुद्दौला, रफ़ीकुद्दौला वग़ैरः थे। उसी वक़्त पादशाह बेगम मुन्नाजान को लेकर सशस्त्र

हमले के लिए तैयार हुईं। नसीरुद्दीन हैदर के मन्त्री रोशनुद्दौला व दरबार वकील गुलाम यहिया भी वहां मौजूद थे। कोतवाल भी तैयार हो गया। बेगम आसुफ़ुद्दौला के इमामबाड़ा तक आ पहुंचीं। रेसिडेन्ट ने राजा बख़्तावरसिंह को १५० घुड़सवारों के साथ उन्हें रोकने के लिए भेजा पर वे महल में घुस ही आयीं। मारपीट शुरू हुई। जनता में बड़ा उत्साह था। महल में नाच होने लगा। तोपें दगने लगीं। बेगम को बधाइयां दी जाने लगीं। मुन्नाजान को गद्दी पर बिठा दिया गया। रेसिडेन्ट लो को धक्का मार कर हटा दिया गया। उनके वकील मिर्ज़ा अली ने उनको ढकेल कर बाहर न कर दिया होता तो वे मार डाले गये होते। बादशाह की पल्टन भी बाग़ी हो गयी और मुन्नाजान के पक्ष में हो गयी। बलवाइयों ने नसीरुद्दौला को तो कुछ न कहा पर अमजदअली शाह, वाजिदअली शाह, सभी पिट गये, दरबार वकील ग़ुलाम यहिया दीवार फांद कर भागा। राजा बख़्तावरसिंह ने अमजदअली वग़ैरः को बचाया। रोशनुद्दौला के हाथ-पैर बांध दिये गये। अब मेजर मार्शल ने दरबार भवन में ही गोलाबारी शुरू कर दी। ४०-५० बलवाई मारे गये। बेगम व मुन्नाजान गिरफ्तार कर लिये गये। बेगम का मुख्य सलाहकार इमामबख़्श भिश्ती भी गिरफ़्तार होकर, तीनों एक साथ रेसिडेंसी भेजे गये. . .कुल मिलाकर १२० मरे या घायल हुए। ९ बजे दिन तक शान्ति स्थापित हो सकी। और तब, नये बादशाह गद्दी पर बैठे. . .रोशनुद्दौला व दरबार वकील ने नये बादशाह का साथ दिया. . .शहर के रईस, शान्तिप्रिय तथा प्रतिष्ठित लोगों ने बलवे में कोई हिस्सा नहीं लिया पर यह सत्य है कि उनकी भी सहानुभूति मुन्नाजान के साथ थी।"[१]

मुन्नाजान और पादशाह बेगम का बुरा हाल हुआ। ७ जुलाई को नसीरुद्दीन हैदर मरे थे। ८ जुलाई को नसीरुद्दौला को गद्दी मिली। ११ जुलाई १८३७ को, बादशाह के हुक्म से, दो नौकरानियों के साथ आधी रात को, बेगम व मुन्नाजान कानपुर के लिए रवाना किये गये। इस तरह लुका-छिपाकर उनको भेजा गया था कि १२ जुलाई को, रात साढ़े ९ बजे वे कानपुर पहुँचीं। वहाँ से वे चुनार भेजे गये। जो दो बांदियाँ इनके साथ गयी थीं, उनसे मुन्नाजान को तीन लड़के पैदा हुए। मुन्नाजान पहले मरे। इनकी संतान का पालन पादशाह बेगम करती रहीं। वे भी चुनारगढ़ में ही मरीं। स्लीमन के समय में भी, इन तीनों लड़कों को, जो

१. स्लीमन की डायरी, भाग २, पृष्ठ १७१

चुनार में ही बस गये थे, अवध के बादशाह, प्रत्येक को ३०० रुपया महावार पेंशन देते थे।

स्लीमन को इस बात का अफ़सोस है कि उस समय लार्ड बेंटिक ऐसे दुर्बल या उदार व्यक्ति गवर्नर जेनरल थे। अन्यथा उसी समय ब्रिटिश हुकूमत आ गयी होती पर, इसमें बेंटिक की कोई उदारता नहीं, अवध की जनता का रुख़ ही ऐसा था कि वे कुछ कर नहीं सकते थे। बेंटिक उस समय अपना पदभार छोड़कर बिस्तरा भी बाँध रहे थे। लार्ड ऑकलैन्ड उनके स्थान पर आ रहे थे।

प्रश्न हो सकता है कि नसीरुद्दौला को बादशाह बनाने में कर्नल लो का क्या स्वार्थ था। बात स्पष्ट है। एक तो उनको तथा रेसिडेन्सी भर को काफ़ी रक़म घूस में मिल रही थी, दूसरे नसीरुद्दौला बूढ़े और बीमार आदमी थे। एक कमज़ोर दिल के आदमी को कठपुतली की तरह नचाना आसान था। तीसरे, ऐसा कौन मिलता जो आँखें बन्द कर एक काग़ज़ पर लिखकर दे देता कि "आप जो कहेंगे वह हमको स्वीकार होगा।"

स्लीमन ने कम्पनी की इस काली करतूत की इस प्रकार सफाई दी है:—

"मुसलिम शरीयत के अनुसार शादशाह के सामने बड़ा बेटा अगर मर जाय तो उसकी औलाद को गद्दी नहीं मिलती। ग़ाजीउद्दीन हैदर के बेटे नसीरुद्दीन हैदर के मरने पर चूँकि उनका कोई "स्वीकृत" उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए ग़ाजीउद्दीन के तीसरे भाई नसीरुद्दौला गद्दी पर बैठे, हालाँकि दूसरे भाई शमसुद्दौला के चार बेटे मौजूद थे। इसी तरह उनके बाद अमजदअली शाह गद्दी पर बैठे हालाँकि उनके बड़े भाई असग़रअली के बेटे मुमताजुद्दौला मौजूद थे।"

विद्वान् मुसलमानों का कहना है कि ऐसा कोई नियम नहीं था।

अस्तु, ८ जुलाई, १८३७ को नसीरुद्दौला गद्दी पर बैठे। पर जिस तख़्त पर उनको बिठाने के लिए इतना रक्तपात हुआ था, उस तख़्त को, उपद्रव के समय, कम्पनी के सिपाहियों ने इतना लूटा कि उसमें एक भी जवाहर—एक भी रत्न नहीं बचा।[१] रत्न-रहित तख़्त पर नसीरुद्दौला ने ताज पहना। उनका नाम बदलकर "मुहम्मद अलीशाह" हो गया और उन्हें ख़िताब मिला—"अबुल फ़तेह मुईनुद्दीन सुलतानीज़माँ नौशेरवाने आदिल।"

नसीरुद्दीन हैदर के वज़ीर रोशनुद्दौला ही प्रधान मंत्री यानी वज़ीर बने रहे।

१. देखिए Asiatic Journal, १ जुलाई, १८४७ का अंक।

नसीर के समय में वे पाँच साल बज़ारत कर चुके थे। उनको २५,००० रुपया माह-वार वेतन, लगान वसूली पर ५ प्रतिशत यानी ६ लाख रुपया साल, और घर-खर्च के लिए पाँच लाख रुपया सालाना मिलता था। उनके लड़के प्रधान सेनापति थे। उनको भी ५००० रुपया माहवार वेतन मिलता था। वज़ीर की पहली बीवी को ५००० रुपया और दूसरी बीवी को ३००० रुपया माहवार खर्च मिलता था। यानी कुल १५ लाख रुपया साल प्रधान मन्त्री के घर में आता था।

मुहम्मदअली शाह के पास वे केवल ३ माह ही वज़ीर रहे। उनको कम्पनी का साथ देने का पुरस्कार मिल चुका था। नसीर के बाद नये बादशाह के वज़ीर मुकर्रर हुए थे। पर उनकी लूट को नये बादशाह बर्दाश्त न कर सके। उनको पद से हटा कर उनके स्थान पर प्रसिद्ध सुयोग्य प्रधान मंत्री हकीम मेंहदी नियुक्त हुए।

रोशनुद्दौला के शासनकाल की गड़बड़ियाँ पकड़ी गयीं। उनपर २० लाख रुपया जुर्माना हुआ और वे जेल भेजे गये। तीन लाख रुपये क़ीमत का उनका मकान ज़ब्त हो गया। उन्होंने दुलवी कहारिन को रख लिया था। उनके नायब सोभनअली पर ७ लाख रुपया जुर्माना हुआ। दरबारियों को पाँच लाख रुपया घूस देकर वह जेल से बच गया। रोशनुद्दौला भी दो लाख रुपया दरबारियों को घूस पिलाकर जेल से छुटकारा पा सके। उनको कानपुर जाने की इजाज़त मिल गयी, वहाँ वे अंग्रेज़ों की शरण में रहने लगे। उनकी रखेली दुलवी को वसीह-अली उड़ा ले गया। यह व्यक्ति कर्नल स्लीमन के शब्दों में, "नम्बरी लुच्चा था।"[१] वसीहअली अंग्रेज़ों का कट्टर दुश्मन था। वे भी उससे बड़ी घृणा करते थे। इसका वर्णन आगे आयेगा। बादशाह के दरबार से जितने कर्मचारी दंडित होते थे उन सबको अंग्रेज़ी हुकूमत में शरण मिलती थी। वाजिदअली शाह ने "कम्पनी के अभियोगों के उत्तर" में इसका अच्छा वर्णन किया है।

मुहम्मदअली का शासन

२५ जुलाई, १८३७ को नये गवर्नर जेनरल लार्ड ऑकलैण्ड ने बादशाह मुह-म्मदअली शाह को बधाई का पत्र भेजा।

१. A consummate knave—**कर्नल स्लीमन की डायरी, भाग २, पृष्ठ १८३।**

मुहम्मदअली शाह गद्दी के हक़दार रहे हों या नहीं या अंग्रेज़ों से संधि करके या आँख मूंदकर संधि करने का वादा करके उनका गद्दी पर बैठना मुनासिब रहा हो या नहीं, यह दूसरी बात है पर शासक के रूप में अवध की गद्दी पर, नवाब वज़ीर सआदतअली खाँ के बाद वे सबसे योग्य शासक थे। जवानी के दिनों में उन्होंने अपने पिता सआदतअली का राजकाज देखा था। इसके बाद वे वर्षों तक एकान्त जीवन व्यतीत करते रहे। बुढ़ापे में, बीमारी की हालत में गद्दी नसीब हुई। पर वे दत्तचित्त होकर शासन के काम में जुट गये।

नवाब वज़ीर सआदतअली ने लगान वसूली के कुत्सित "इजारा" प्रथा को बहुत-कुछ तोड़ दिया था। इस प्रथा के अन्तर्गत मालगुज़ारी वसूल करने के ठीके-दार होते थे। वे सरकारी खज़ाने में ठीके का रुपया जमा कर देते थे पर स्वयं किसान से जितना चाहें, वसूल करते थे। नवाब वज़ीर ने "अमानी" यानी सरकारी वेतनभोगी कर्मचारियों से निश्चित मात्रा में लगान वसूल करने की प्रथा निकाली और वे धीरे-धीरे इस प्रथा को गाँवों में लागू करते जा रहे थे। बादशाह मुहम्मद-अली ने अपने शुरू के कामों में इसी अमानी प्रथा को संगठित करना शुरू किया। उनको अपने योग्य मन्त्री हकीम मेंहदी से बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

उस युग का एक बहुत ही महत्वपूर्ण इतिहास प्राप्त है—"सवानेह सलातीने अवध।" उसके लेखक कम्पनी के और फिर सन् १८५७ के बाद ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी थे। अतएव उन्होंने अपनी पुस्तक ऐसे ढंग से लिखी है कि अंग्रेज़ों के पक्ष की बात आ गयी है। अतएव यदि वे कुछ प्रशंसा करें तो महत्व की बात है। वे लिखते हैं कि "बादशाह मुहम्मदअली का शासन बहुत अच्छा था। प्रजा सम्पन्न और सुखी थी। खज़ाना रुपयों से भर गया।"[१] अपनी पुस्तक में इतिहासकार इलियट लिखते हैं कि "बादशाह मुहम्मदअली के गद्दी पर बैठने से राजकीय शासन-सुधार के युग का प्रारम्भ हुआ।"[२]

रज्जबअली सरुर "फ़सानये इब्रत" में लिखते हैं कि "बरवक्त तख़्तनशीनी हर आदमी अपनी-अपनी जगह पर खुश था....नवाब रोशनुद्दौला के मिज़ाज में दकील थे...मौलवी गुलाम यहिया खाँ, बादशाह के मुसाहिब खास ने उन्हें

१. सवानेह-सलातीने-अवध—ले० सय्यद कमालुद्दीन हैदर उर्फ सय्यद मुहम्मद मीर जायर, प्रकाशित १८९६।

२. इलियट लिखित—Garden of India.

विद्रोही सरदारों की...ख़बर दी...बादशाह ने बमंजूरी रेसिडेन्ट साहब नवाब मुंतजिमुद्दौला हकीम मेंहदी अली खाँ को बुलवाया...बाद कौलोक़रार वे लखनऊ तशरीफ लाये...बाग़ी लोगों की गिरफ़्तारी शुरू हुई....अहमद अली खाँ जेनरल नियुक्त हुए। और बाक़ायदा राज्य शुरू हुआ।"

रजबअली सरूर[1] के कथनानुसार २७ अक्टूबर को सुबहान अली खाँ, एहसान हुसेन खाँ, मुज़फ्फ़र हुसेन खाँ, खादिम हुसेन, बन्दा हुसेन और क़ुदरत हुसेन, गिरफ़्तार होकर क़ैदखाने भेजे गये। धनिया व दुलवी कहारिनें भी क़ैद हुईं। रौशनुद्दौला, भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री भी पकड़े गये।

गवर्नर-जेनरल ऑकलैण्ड के कानपुर आने की ख़बर आयी। बादशाह कानपुर गये। वहीं मुलाक़ात हुई। २७ रजब को नवाब गवर्नर-जेनरल बहादुर वली अहद अमजदअली से मुलाक़ात करने गंगा पार आये। गुलाम यहिया को भी वजारत मिली। उनका खिताब हुआ ज़हीरुद्दौला। उन्होंने काम शुरू किया। सब क़ैदियों का मुक़द्दमा पेश हुआ। कुदसिया महल के मकान में कचहरी लगी। वहीं सब क़ैद किये गये। दीनदयाल को उनकी निगरानी के लिए रखा गया। उसने अपना बदला खूब चुकाया।

"२५ जिलहिज़ १२३० को ज़हीरुद्दौला की भी मृत्यु हो गयी। अहमदअली खाँ को २७ जिलहिज्ज को वज़ारत की खिलवत मिली। ख़िताब हुआ नूरुद्दौला। मगर वे इस क़ाबिल न थे। सैरो-शिकार के अलावा उन्हें कोई काम न था। मिर्ज़ा बन्दा अली बेग खैर का रंग जमा। वे वज़ीर बने। उधर सुबहान अली खाँ ने लखनऊ में रहने की बहुत कोशिश की पर रेसिडेन्ट लो और बादशाह दोनों राज़ी न हुए। धनियाँ, दुलवी, सबको कानपुर रवाना किया गया। कम्बोह[2] भी भाग गये। जब सब हो चुका नवाब नूरुद्दौला वजारत करने लगे। पर दरबारियों में इखतलाफ शुरू हुआ। बादशाह ने अपनी दूरंदेशी से कोई झगड़ा पैदा न होने दिया। इस्तीफा तो मन्जूर हो गया पर बादशाह ने उनके खिलाफ़ की झूठी शिकायतों को दफ़ना दिया।"

आगे मिर्ज़ा साहब लिखते हैं कि महलात के सिलसिले में लियाक़त के मुताबिक पेंशनें बांध दी गयीं। शादी-शुदा बीवियों के वज़ीफे ब-दस्तूर रहे। जिन बेगमों व बाँदियों ने महल छोड़कर घर जाना चाहा उनको एक मुश्त रक़म देकर बिदा

१. फ़सानये इब्रत—रजब अली बेग सरूर २. एटा की एक लड़ाकू जाति

किया गया। महल में सिर्फ सौ बाँदियाँ बच रहीं। मलका ज़मानी को १४ हजार रुपया सालाना, ताजमहल व नहमदा बेगम को ६-६ हजार रुपया। पर ये दोनों बदचलन थीं। नहमदा की मृत्यु के बाद उनकी पेंशन उनके बाप को मिली। ताजमहल मीर कातिब हुसेन के भतीजे से फँसी। वह गिरफ्तार होकर क़ैद में रख गये। वहाँ से भाग कर कानपुर पहुंचे।

नवाब नूरुद्दौला के पद-त्याग के बाद नियुक्त प्रधान मन्त्री नवाब शरफ़ुद्दौला के इन्तज़ाम से महल की सब खराबियाँ दूर हुईं। मुल्की व माली हालत ठीक हुई। सबको राहत मिली और आराम मिला। बादशाह की तबीयत भी काम में लगने लगी। बादशाह ने शहर की आबादी पर ध्यान दिया और शहर का गश्त शुरू किया। उन्होंने बम्बई में, करबला और मक्का जाने वाले यात्रियों के लिए एक मुसाफिरखाना बनवाया। खास करबला के दरवाज़े की मरम्मत करवायी। अवध के जो लोग करबला में रह गये थे, उनका वज़ीफा मुक़र्रर हुआ। लखनऊ में दिलकुशा से इमामबाड़ा तक की सड़क बनायी और हुसेनाबाद का इमामबाड़ा बनवाया। मीना बाजार बनवाया जिसमें हर तरह की चीज़ें ख़रीदी व बेची जाती हैं। एक सराय भी बनवायी और उसके सामने एक नफ़ीस तालाब भी बनवाया। उसके चारो ओर निहायत ख़ूबसूरत बाग़ लगवाया...एक गेंदखाना और नौखंड की कुर्सी बनवायी.....एक शानदार मस्जिद भी बनवायी।"[१]

उस समय के एक विश्वसनीय इतिहास लेखक ने[२] लिखा है कि मुहम्मद अली शाह ने अपने पाँच वर्ष के शासनकाल में नीचे लिखी इमारतें बनवायीं :—

१. इमामबाड़ा हुसेनाबाद —	१२५३ हिजरी—सन् १८३७
२. दरवाज़ा इमामबाड़ा —	१२५४ „ —सन् १८३४
३. हुसेनाबाद का हम्माम व हौज —	१२५५ „ —सन् १८३५
४. सड़क हुसेनाबाद —	१२५४ हिजरी
५. ज़रीह (ताज़िया) जो इमामबाड़े में है—	१२५४ हिजरी

१. फ़सानये इब्रत—मिर्ज़ा रजबअली। २. अफ़ज़लुत-तवारीख—लेखक-मुंशी राम सहाय "तमन्ना"—प्रकाशक "मतबये-तमन्ना", लखनऊ, पृष्ठ संख्या ३४६, प्रकाशन सन् १८७९।

६. हुसेनाबाद का कुंआ— १२५४ हिजरी
७. रसदगाह, यानी वेधशाला १२५४ हिजरी
८. सराय हुसेनाबाद— १२५५ हिजरी
९. तालाब नौखण्डा— १२५५ हिजरी
१०. मस्जिद हुसेनाबाद— १२५५ हिजरी
११. गेंदखाना (पोलो)— १२५५ हिजरी

किन्तु इतना सब निर्माण करने वाले व्यक्ति में एक दोष था। अपने पूर्वाधिकारी बादशाह नसीरुद्दीन की बनवायी इमारतें तथा बाग़ों की उन्होंने देखरेख न की और वे वीरान हो गये। "अफजलुत् तवारीख" और "फ़सानयेइब्रत" दोनों के लेखक इस बात पर सहमत हैं कि :—

"शाही महलात की हालत देखने से पता चलता है कि हर बादशाह अपने मिज़ाज़ से बहुत नेक़, नफ़ीस और दानी गुज़रा। पर उनका दरबार हमेशा साज़िशों का अड्डा रहा। जिसका रसूख़ बादशाह के मिज़ाज़ में हुआ, थोड़े दिनों तक उसकी तूती बोलती रही और मुखालिफ़ों की बन आयी तो वह अपने पद से गिर गया . . ."

अस्तु, अवध के नवाबों को लफंगा व नालायक़ कहने वाले स्लीमन भी बादशाह मुहम्मदअली शाह की तारीफ में लिखते हैं—और लिखते हैं यह साबित करने के लिए बादशाह वाजिदअली शाह के दादा मुहम्मद अली और पिता अमजद अली कितने लायक़ थे तथा वे स्वयं कितने निकम्मे थे :—

"उनके (वाजिदअली शाह के) पिता और पितामह जब गद्दी पर थे तो दिन में कम से कम एक बार, या नहीं तो सप्ताह में तीन-चार बार दरबार में शाही घराने के लोगों से और शहर के रऊसा से भेंट कर लेते थे। वे हरेक दरख्वास्त को अपने सामने पढ़वाकर सुनते थे। वे उस पर हुक्म लिखा कर अपनी मुहर लगा देते थे—"मुलाहिजा शुद" यानी यह देख लिया गया है। मुहर फिर पेटी में बन्द हो जाती थी। इसकी ताली नरेश के विश्वासपात्र मुज़्दउद्दौला के पास रहती थी। ताली एक कर्मचारी के पास रहती और बक्स दूसरे के पास। सरकारी काग़ज़ों की निगरानी व कार्यवाही सुबह और शाम दोनों वक्त होती थी और ऐसे मौक़े पर सभी मुहक्मों के प्रधान उपस्थित रहते थे। मौजूदा बादशाह (वाजिदअली शाह) ने भी कुछ दिनों तक इस क़ायदे को जारी रखा पर वे इससे जल्दी ऊब गये और उन्होंने बक्स, ताली, काग़ज़, सब कुछ अपने प्रधान मन्त्री के ज़िम्मे कर दिया . . . अब वे दरबार में बिलकुल नहीं आते . . . प्रधान मन्त्री से भी मिलना धीरे-धीरे उतना ही

मुश्किल हो गया जितना बादशाह से . . .प्रधान मन्त्री से उनके कुछ विश्वासपात्र लोग ही मिल पाते थे. . . ।"[१]

वाजिदअली शाह के बारे में जो वाक्य लिखे हैं, उन पर आगे चलकर विचार किया जायगा. . .पर मुहम्मदअली तथा अमजदअली के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं प्रतीत होती। फिर यह कहना कि सब नवाब निकम्मे या दुश्चरित्र थे तथा उनसे राजकाज नहीं होता था, यह कहाँ तक उचित है ?

ऐसे नेक मुहम्मदअली शाह के साथ सलूक क्या हुआ ? लखनऊ में रेसिडेन्ट लो से बिना पूछे वे कोई काम नहीं करते थे। उनकी कार्यकुशलता, बुद्धिमत्ता तथा कम्पनी की सरकार के प्रति भक्ति से प्रभावित होकर सन् १८३७ के अंत तक ही रेसिडेन्ट ने उनसे कहला भेजा कि "बादशाह सलामत स्वयं इतने क़ाबिल, कामकाज में होशियार और वाक़िफ हैं कि बहुत अहम मसलों को छोड़कर शेष पर स्वयं निर्णय कर लिया करें। रेसिडेन्ट से हर मामले में पूछने की ज़रूरत नहीं है।"[२]

मौलवी मसीहुद्दीन के कथनानुसार बादशाह मुहम्मदअली शाह ने अपने बुढ़ापे का ख्याल न कर, बड़ी तत्परता से राजकाज शुरू किया था। पर, हकीम मेंहदी द्वारा राज्य में सुधार के प्रस्तावों को सन् १८३७ में रेसिडेन्ट ने ठुकरा दिया था, यद्यपि उसी प्रकार के शासन सुधार की सन् १८३१ में लार्ड बेंटिक ने माँग की थी। फिर भी अवध का शासन बेहतर होता ही गया। सन् १८३८ में बादशाह ने कम्पनी को ४ प्रतिशत सूद पर १७,००,००० रुपया कर्ज़ दिया। इससे कम्पनी की निगाहों में इनकी प्रतिष्ठा और बढ़ गयी। ८ जुलाई, १८३९ को गवर्नर-जेनरल लार्ड ऑकलैण्ड ने बादशाह मुहम्मद अली को पत्र लिखकर उन्हें शासनकुशलता पर बधाई दी तथा लिखा—"पिछले ज़माने के मुक़ाबले में आपकी हुकूमत ने राज्य में काफ़ी तरक्क़ी पैदा करदी है. . . . . .उम्मीद है कि जिस तरह अभी तक आप न्याय, समान भाव तथा अपने प्रजा के कल्याण का विचार कर शासन करते रहे हैं, उसी प्रकार शासन करते रहेंगे।"[३]

कम्पनी की नीयत तथा लार्ड ऑकलैण्ड गवर्नर-जेनरल की बदनीयती का पता इसी से चलता है कि लार्ड विलियम बेंटिक ने यह आदेश दे रखा था कि बादशाह के

१. स्लीमन की डायरी, भाग १, पृष्ठ १८०
२. मेजर बर्ड–अवध की डाँकाज़नी, पृष्ठ ९३
३. मेजर बर्ड—वही-पृष्ठ ९९

पास कम्पनी से जो भी आदेश या पत्र जावे उसमें फारसी के मजमून के साथ अंग्रेज़ी का तर्जुमा भी लगा रहे ताकि किसी प्रकार से "व्याख्या" की गड़बड़ी न रहे। ऑकलैण्ड ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया। चूँकि अंग्रेजी प्रति ही साधिकार समझी जाती थी अतएव कम्पनी को यह अवसर मिल गया कि फारसी में भेजे गये खरीतों की जैसी चाहे व्याख्या कर सकती थी।

सन् १८३७ की संधि

सन् १८३७ की संधि ने नवाबी अवध की कफ़न में कील ठोंक दी। बादशाह मुहम्मदअली शाह आँख मूंदकर "संधि के मस्विदे पर हस्ताक्षर" करने का वादा कर चुके थे। उनको कुछ बोलने का अधिकार था ही नहीं। अतः रेसिडेन्ट ने मनमाना दस्तावेज़ तैयार कर लिया। कर्नल स्लीमन के अनुसार ११ सितम्बर १८३७ को संधि हो गयी। सन् १८०१ की संधि के अनुसार नवाब यानी बादशाह को जितनी सेना रखने का अधिकार था उससे ज़्यादा मुहम्मदअली शाह के पास थी। बादशाह नसीरुद्दीन के समय में सेना की शक्ति ६७,९५६ थी। उसे रहने देने का अधिकार मिला पर शर्त्त यह कर दी गयी कि उस सेना के अधिकांश पर ब्रिटिश अफसर हों तथा उन्हीं का नियंत्रण हो। इसके अलावा कम्पनी की मातहती में एक सहायक सेना बनायी जाय, जिसका संगठन संधि के १८ महीने के भीतर हो जाय। इसमें दो टुकड़ी घुड़सवार सेना, ५ पैदल सेना तथा दो कम्पनी तोपखाना रहे। इन पल्टनों पर ब्रिटिश अफ़सर हों तथा इनका इस्तेमाल रेसिडेन्ट की अनुमति से ही हो सकेगा। इस सैनिक संगठन पर १६ लाख रुपया वार्षिक ख़र्च पड़ेगा और वह खर्च बादशाह को देना पड़ेगा।

पर स्लीमन ने इस संधि को जितनी निर्दोष तथा न्यायसंगत बताने या समझाने का प्रयत्न किया है, वैसा नहीं है। इस संधि की भूमिका में ही सबसे ज़बर्दस्त झूठ तथा अपमानजनक बात लिखी हुई है।[१] पाठकों को हम अभी तक के नवाब वज़ीर या बादशाहों के कार्यों के बारे में कम्पनी तथा गवर्नर जेनरल से लेकर लंदन की बोर्ड के संचालकों की राय संक्षेप में बतलाते आये हैं। इस संधिपत्र में लिखा था— इसे संधि का प्राक्कथन समझिए :—

१. मेजर बर्ड—पृष्ठ ८२।

"सन् १८०१ की संधि की छठी धारा[१] की अवज्ञा तथा अवध के विगत अनेक नरेशों द्वारा जनता के हितों की उपेक्षा बराबर की गयी है और इससे काफ़ी बदनामी हो गयी है। ब्रिटिश सरकार पर यह बड़ा भारी लांछन लग रहा है कि उसने अवध की जनता के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं निभाया।"

सात समुद्र पार से आने वाले लोग अवध की जनता के प्रति कब ज़िम्मेदार हो गये?

११ सितम्बर की यह संधि जुलाई, १८३७ में, बादशाह के गद्दी पर बैठने के दो-तीन दिन के भीतर ही तैयार हो गयी थी। नसीरुद्दौला यानी मुहम्मद अली को गद्दी पर बिठाने के समय रेसिडेन्ट लो ने जो कुछ कार्रवाई की थी, उसकी रिपोर्ट जब गवर्नर जेनरल के पास ज़रूरी डाक से भेजी गयी तो ११ जुलाई, १८३७ को लार्ड ऑकलैण्ड ने कम्पनी के नाम अपनी रिपोर्ट में लिखा :—

"कर्नल लो ने जो कुछ कार्रवाइयाँ की हैं उन पर ब्यौरे के साथ राय देने के लिए ब्यौरे से सब हाल जानने की ज़रूरत है पर मैं यह ज़रूर कहूँगा कि उनको ऐसे अवसर पर नये बादशाह से बिना किसी शर्त के हमारी बातें मान लेने का अहद-नामा नहीं लिखवाना चाहिए था। इस दस्तावेज़ से बड़ी ग़लतफ़हमी हो सकती है, और लो को दिये गये आदेशों के अंतर्गत उन्हें ऐसा करने का अधिकार भी नहीं था।"

पर, जब मामला सध ही गया तो लार्ड ऑकलैण्ड ने जो नैतिकता तथा ईमान-दारी शुरू से दिखायी थी, वह ठंढी पड़ गयी। १८३७ की संधि में यह भी लिख दिया गया कि अवध के राज्य के जिस भाग में कुप्रबंध हो, वहां पर रेसिडेन्ट अपने अहल्कार यानी प्रशासक रखकर शासन करायेगा और जब प्रबंध ठीक हो जायगा तो बादशाह को वह इलाक़ा वापस कर दिया जायगा। शायद यह बात गवर्नर जेनरल को बहुत पसंद आयी हो। १८ सितम्बर, १८३७ को लार्ड ऑक-लैण्ड ने संधि की शर्तों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने स्वीकृति दे दी पर कम्पनी के लन्दन के प्रधान कार्यालय में इतना बड़ा "न्याय" पच न सका। ब्रिटिश सरकार ने भी यह बहुत बड़ा अन्याय समझा कि नवाब से सेना रखने को कहा जाय और उसका ख़र्च भी उनसे लिया जाय। अतएव "सहायक सेना" का अतिरिक्त ख़र्च १६ लाख रुपया समाप्त कर दिया गया। ख़र्च की ज़िम्मेदारी कम्पनी ने अपने ऊपर ले ली।

१. धारा ६—"राजकाज के बारे में समय समय पर कम्पनी नवाब को 'आदेश' देती रहेगी।"

इस संशोधन के साथ ८ जुलाई, १८३९ को, बादशाह के गद्दी पर बैठने के ठीक दो वर्ष बाद, लन्दन से संधि की स्वीकृति प्राप्त हुई। संधि की शर्तें इस प्रकार हैं :—

धारा १. सन् १८०१ की संधि की तीसरी धारा समाप्त।[१] बादशाह अपनी सेना रख सकते हैं पर कम्पनी सरकार के कहने पर उसे कम करना पड़ेगा।

धारा २. बादशाह ब्रिटिश कर्मचारियों की मातहती में बढ़िया पल्टनें रखें।

धारा ३. "सहकारी" पल्टन तथा बादशाह की पल्टनों की रचना का स्वरूप बतलाया गया।

धारा ४. सहकारी सेना रखी जाय जिस पर १६ लाख रुपये साल से ज्यादा ख़र्च न हों।

धारा ५. यह सेना लगान वसूली के काम में नहीं आ सकती। सेना के ब्रिटिश अफ़सर हों।

धारा ६. बादशाह की सेना के विषय में भी ब्रिटिश अफ़सरों की सलाह ली जाया करे।

धारा ७. १८०१ की संधि की धारा ६ में कुछ परिवर्तन के साथ यह निश्चित किया जाता है कि यदि बादशाह ब्रिटिश सरकार की सलाहों पर न चलें, या ख़ुदा न करे, उनके राज्य में कुप्रबंध, लगातार अत्याचार, अराजकता आदि का बोलबाला हो जाय तो कम्पनी की सरकार राज्य के किसी बड़े या छोटे हिस्से पर अपने शासक नियुक्त कर शासन-प्रबंध करायेगी।

धारा ८. बादशाह और कम्पनी जहाँ तक हो सकेगा देशी संस्थाओं, देशी शासन के तरीक़े आदि को चालू रखेंगी।

धारा ९. इस संधि के द्वारा पुरानी संधियों की जिन धाराओं का खंडन नहीं होता है, उनको लागू और चालू समझा जावेगा।

९ धाराओं की इस संधि पर १०, जामादोस्सानी, १२५३ हिजरी यानी ११ सितम्बर, १८३७ को हस्ताक्षर हुआ था। अवध पर ब्रिटिश हुकूमत आने में अब कुछ बाक़ी नहीं रह गया था पर १६ लाख रुपये की जो पल्टनें लादी गयी थीं

१. सन् १८०१ की संधि के अनुसार राज्य की रक्षा की जिम्मेवारी कम्पनी की थी, नवाब की सेना बहुत कम करदी गयी थी।

वे ब्रिटिश पल्टन के अलावा और कुछ नहीं थीं।[१] इसीलिए लन्दन से १६ लाख रुपया देनेवाली धारा समाप्त हो गयी। इस संधि के अनुसार जो दो पल्टनें रखी गयीं उनमें से एक सीतापुर में तथा दूसरी सुलतानपुर में नियुक्त हुई। पंजाब में सिखों से युद्ध के समय अंग्रेज़ों का कोई साथी न था—केवल अवध के बादशाह थे। श्री मसीहुद्दीन के कथनानुसार मुहम्मदअली ने अंग्रेज़ों की बड़ी मदद की। इतिहास से पता चलता है कि पंजाब में अंग्रेज़ों की विजय का बहुत कुछ कारण बादशाह की धन-जन की सहायता थी।[२]

अस्तु, अहमद अली यानी नवाब नुरुद्दौला के बाद नवाब शर्फुद्दौला प्रधान मन्त्री बने थे। मिर्ज़ा रजब अली लिखते हैं कि उन्होंने लगान वसूली का बहुत अच्छा इन्तज़ाम किया। बड़े न्याय से राज्य-कार्य किया। कमज़ोरों की आवाज़ें सुनी जाने लगीं। कई वीरान बस्तियों को आबाद कराया। "बहरहाल, बहुत अच्छे वज़ीर थे।"[३] बादशाह के शासनकाल में प्रजा खुश, छोटे-बड़े सभी खुश थे। पर इतने लायक़ बादशाह ज़्यादा दिन तक राज न कर सके। पाँच वर्ष राज करने के बाद ही वे चल बसे। अचानक तबीयत ख़राब हो गयी। दवा इलाज से कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

४ रबी उस्सानी, सोमवार, १६ मई, १८४२ को उनका देहान्त हो गया। अमजदअली के गद्दी पर बैठने में कोई झगड़ा नहीं था। वे इतने साफ़ तथा नेक आदमी थे कि अंग्रेज़ भी उनके बीच में रोड़े नहीं अटका सकते थे। पिता के देहान्त के दिन ही—अथवा तारीख़ के विचार से १७ मई, १८४२ को वे गद्दी पर बैठे। पर अवध का दुर्भाग्य कि इतने साधु व्यक्ति पूरे पाँच वर्ष भी राज्य न कर सके। १३ फरवरी, १८४७ को उनका देहान्त हो गया। अमजदअली बड़े पुजारी, रोज़ा-नमाज़ के पाबन्द पर अय्याश व्यक्ति थे। शासन से अधिक दिलचस्पी अय्याशी तथा पूजापाठ में थी।[४]

अमजदअली शाह

अमजदअली शाह को लोग "हज़रत" कहते थे। उनकी अय्याशी के साथ रोज़ा-नमाज़ की पाबन्दी की काफी ख्याति थी। हज़रत अमजदअली जहाँ पर

१. मेजर बर्ड, पृष्ठ ८८ २. सय्यरुल-मुताखरीन
३. फ़सानये इब्रत। ४. सवानेह सलातीने अवध

दफ़नाये गये हैं, उसी की यादगार में लखनऊ में हज़रतगंज मुहल्ला और उसकी रौनक़दार सड़क है। पर हज़रत का शासन की ओर रुझान कम था। सलातीने-अवध में ज़ायर साहब लिखते हैं कि दोनों काम पूरी तरह से एक साथ नहीं चल सकते। उन्होंने शासन की योग्यता दिखलायी पर उसके लिए वे समय नहीं दे पाते थे। दरबारियों की बन आयी। कान के कच्चे थे ही इसलिए बहकावे में आसानी से आ जाते थे। उनके सुयोग्य पिता के ज़माने के योग्य कर्मचारी हटा दिये गये। पुराने चपरासी तक हटा दिये गये। नवीं रज्जब बृहस्पति के दिन नवाब शर्फुद्दौला काम से हटाये गये और उनकी जगह इमदाद हुसेन खाँ वज़ीर हुए। महाराज बालकृष्ण क़ैद से छोड़े गये। वज़ीर को नवाब "अमीनुद्दौला जुलफ़िकार जंग" का खिताब मिला। नवाब अमीरुद्दौला के पुत्र मिर्जा हैदर बेग उनके पेशकार मुक़र्रर हुए। चारों ओर कर्मचारी निकाले जाने लगे। फ़ौज में भी कमी की गयी। चारों तरफ से ख़र्च की कमी की गयी। ख़ैर-ख़ैरात भी बन्द सी हो गयी। मुहर्रम की रौनक़ जाती रही। शाही अस्तबल में हाथी-घोड़ों की व चिड़ियाघर में परिन्दों की हालत ख़राब हो गयी।

मुंशी ज्वाला प्रसाद को मुंशीख़ाना सुपुर्द हुआ और उनको मुदवरुद्दौला का खिताब मिला। हकीम मिर्जा मेंहदी को "हिकमतुद्दौला" का ख़िताब मिला। मौलवी सय्यद अहमद को सुलतानुल-उलमा का खिताब मिला। १६ महीने की हुकूमत के बाद प्रधान मन्त्री यानी वज़ीर अमीनुद्दौला यानी इमदाद हुसेन खां काम से हटा दिये गये। उनकी जगह अहमदअली खां "मुनवरुद्दौला" वज़ीर बने पर इनसे शासन कार्य न हो सका अतएव वे काम से हटा दिये गये और अमीनुद्दौला फिर वज़ीर मुक़र्रर हुए। उन्हीं दिनों रेसिडेन्ट लो का तबादला हो चुका था। लो के पहले कप्तान शेक्सपियर और उनके पहले श्री डेविडसन रेसिडेन्ट रह चुके थे। लो के बाद श्री रिचमौंड रेसिडेन्ट नियुक्त हुए। बादशाह स्वयं इनको दिलकुशा से हाथ पकड़ कर शहर ले आये।

अमजदअली शाह ने अपने ज्येष्ठ लड़के मुस्तफ़ाअली शाह को वली अहद यानी युवराज नहीं बनाया। उन्होंने एलान कर दिया कि जब मुस्तफ़ा की मां उनके रनिवास में आयी, मुस्तफा डेढ़ साल का बालक उनकी गोद में था यानी वह उनका पुत्र नहीं था। कुछ इतिहासकारों का ऐसा ख़्याल है कि मुस्तफ़ा का स्वभाव बड़ा उग्र था। बदमिज़ाज़ था। दूसरे लड़के वाजिदअली शाह का स्वभाव बड़ा कोमल था तथा वे लोकप्रिय थे। अतएव हज़रत अमजदअली ने मुस्तफ़ा अली को पदच्युत कर दिया था। इस बेचारे की बड़ी मुसीबत थी। बादशाह वाजिदअली शाह के

शासनकाल में वे बराबर क़ैद में रहे। यह अवश्य है कि हज़रत अमजदअली ने उत्तराधिकारी का मसला अपने सामने इतना पक्का कर दिया था कि मुन्नाजान वाली कहानी दुहरायी जाने का डर नहीं था।

हज़रत अय्याश थे ही। उनके ज़माने में आवारा औरतों का काफ़ी ज़ोर रहा। यद्यपि ज़ायर साहब हज़रत अमजदअली की तारीफ़ नहीं करते पर बुराई भी नहीं करते हैं। कर्नल स्लीमन ने भी अपनी डायरी में उनकी इतनी बुराई नहीं की है जितनी मिर्जा रज्जबअली "सरूर" ने। सरूर लिखते हैं :—

"शरीफों का जवाल और कमीनों का ज़ोर हुआ...तख़फ़ीफ़ का बाज़ार गर्म हुआ। अय्याशी का दौर शुरू हुआ...आवारा औरतों की बन आयी... बाज़ार का मामला भी देखा देखी खराब हुआ...हर चीज़ में मिलावट हुई। बादशाह की नज़र महज़ रुपया जमा करने पर थी...दिन दहाड़े बस्तियों में डाका पड़ने लगे..क़त्लेआम का बाज़ार गर्म था। चकलादारों का ज़ुल्म हद से ज़्यादा बढ़ा हुआ था...नाज़िम और आमिल सब नालायक़ थे..अदालतों में रिश्वत की बाजार गर्म थी...लखनऊ में अलबत्ता रज़ाअली कोतवाल की बदौलत अमन रहा।"[१]

हो सकता है कि अमजदअली के अवगुणों को स्लीमन ने और ज़ायर ने भी इसलिए छिपाया हो कि सब दोष वाजिदअली शाह के सर पर आ जाय कि उन्होंने राजकाज चौपट किया। 'सलातीने अवध' में मुहम्मद ज़ायर लिखते हैं कि बादशाह वाजिदअली शाह जब गद्दी पर बैठे, राज भर में इज़ारा यानी ठीका के बजाय अमानी से लगान वसूली चालू हो चुकी थी और सरकारी मुलाज़िम लगान वसूल करते थे। देश में शासन व्यवस्था ठिकाने से चल रही थी। पर मिर्ज़ा रज्जबअली इससे उलटी ही बात लिखते हैं।

जो हो, बादशाह अमजदअली ने अपने राज्य में कई मार्के के काम किये हैं। वाजिदअली शाह ने भी लिखा है कि लखनऊ-कानपुर की सड़क ५ लाख रुपया खर्च करके उन्होंने बनवाया तथा लन्दन से बना बनाया पुल मंगाकर गोमती पर लोहे का पुल बनवाया था। इसमें ३ लाख रुपये लगे। उनके शासनकाल में कम्पनी सरकार से तथा अफ़गानिस्तान से लड़ाई छिड़ गयी थी। उसमें

१. फ़सानये इब्रत।

अवध के बादशाह ने ७०० घुड़सवार तथा २० लाख रुपया कम्पनी को दिया था।[१]

अस्तु, ४८ वर्ष ५ महीना १२ दिन की उम्र में ही, १२ फरवरी, १८४७ यानी १७ सफ़र १२७३ में बादशाह अमजदअली इस दुनिया से कूच कर गये। उनको "सरतान" की बीमारी हो गयी थी।

१. बादशाह का कम्पनी को उत्तर।

अध्याय तीन

बादशाह वाजिदअली शाह

अभिषेक और आरम्भ के दिन

१२ फरवरी, सन् १८४७ को अवध के अन्तिम बादशाह गद्दी पर बैठे। वाजिद-अली शाह अपने पिता हज़रत अमजदअली के ज्येष्ठ पुत्र नहीं थे। उनके बड़े भाई मुस्तफ़ाअली का ज़िक्र हम ऊपर कर आये हैं। वाजिदअली का जन्म जून, १८२१ अर्थात् १० ज़ीकाद हिजरी १२३७ श्रावण शु० १२ सम्वत्, १८७८, इन्द्रयोग में, ५७ घड़ी ३९ पल पर-मंगलवार के दिन हुआ था। तख़्त पर बैठने के समय इनकी उम्र २६ वर्ष की थी। जनता में वे बहुत प्रिय थे। अपने स्वभाव तथा साहित्य-प्रेम के कारण उनकी ख्याति फैल चुकी थी। अतएव लोग चाहते भी थे कि उनको ही गद्दी मिले।

बादशाह अमजदअली की मृत्यु का समाचार रेसिडेन्ट रिचमौंड साहब को नवाब अमीनुद्दौला ने पहुंचाया। फ़ौरन रेसिडेंसी से कम्पनी का डाक्टर मृत नरेश को देखने के लिए भेजा गया। वाजिदअली शाह को पिता की मृत्यु पर बड़ा खेद हुआ। वे एक कमरे में बैठकर चुपचाप रोते रहे।

शहर में शोर मच गया। राजमहल के फाटक पर भीड़ इकट्ठी हो गयी। उस मौक़े पर सवानेह-सलातीने-अवध के लेखक कमालुद्दीन हैदर उर्फ़ सय्यद मुह-म्मद मीर जायर भी राजमहल पहुंचे। वे काफ़ी गोरे व्यक्ति थे तथा पश्चिमी ढंग की मिली-जुली पोशाक़ पहने हुए थे। अतः भीड़ में बहुत से लोगों ने उनको अंग्रेज समझ लिया और भीड़ में से चिल्ला पड़े :—

"हुज़ूर, हमारे नवाब, वाजिदअली शाह को जायज़ वारिस मान लीजिए। गद्दी पर वे ही बैठें।"[1]

अवध के नवाबों के समय से यह नियम चला आया था कि बादशाह का मुर्दा

१. सलातीने अवध

कभी मुख्य द्वार से बाहर नहीं निकलता था। महल के पिछले दरवाज़े से जनाज़ा निकलता था। गद्दी का उत्तराधिकारी कभी मरे हुए बादशाह का मुख नहीं देखता था। दफ़नाए जाने के बाद मय्यत के लिए वहां पर सवारी जाती थी। जिस महल में बादशाह की मौत होती थी, उसमें दूसरा बादशाह नहीं रहता था। इन्हीं सब प्रथाओं के कारण युवराज या वली अहद पहले से ही मकान बनाकर तैयार रखते थे। गद्दी पर बैठने के पहले वाजिदअली शाह ने जाड़े में रहने के लिए शहं-शाह मंज़िल, बरसात के लिए फ़लक सैर मंजिल, हुज़ूर बाग़ वगैरह बनवाये थे। गद्दी पर बैठने के बाद बनवायी इमारतों की फ़ेहरिस्त हम दे चुके हैं। क़ैसरबाग़ का प्रसिद्ध भवन व बाग़ सन् १८४८ में बनना शुरू हुआ और १८५० में ख़त्म हुआ। इसमें बादशाह के ८०,००,००० रुपये ख़र्च हुए। बादशाह की उपाधि "क़ैसर" थी। बादशाह को "क़ैसर ज़मा" कहते थे अतएव इस भवन का नाम भी क़ैसर बाग़ पड़ा। बादशाही सिक्कों पर भी **कैसर** लिखा रहता था। कैसर बाग़ बारादरी बाद में बनकर तैयार हुई। यहीं पर सामने मैदान में बादशाह वाजिदअली शाह के हुक्म से अगस्त यानी श्रावण-भाद्रपद के महीने में बड़ा मेला लगता था जिसमें बादशाह स्वयं जोगिया वस्त्र धारण करके आते थे। तीन दिन तक लगभग ७५-८० हज़ार व्यक्तियों को बराबर भोजन मिलता था।[१]

अस्तु, हम ज़रा आगे बढ़ गये। ज़ायर साहब ने राज्याभिषेक का आँखों देखा हाल लिखा है। महाराजा बालकृष्ण बादशाह की मृत्यु के बाद पहुंचे। तख़्त को घेरे हुए लोग खड़े थे। उसके एक तरफ एहतमादुद्दौला हैदर हुसेन खां तथा शर्फु-द्दौला व कोतवाल ग़ुलाम रज़ा ख़ां खड़े थे। दूसरी ओर मिर्ज़ा वसीह अली खां तथा हफ़ीजुद्दौला और मौलवी मीर बाकर अली शफीरशाही (बादशाह की ख़बरें ले जाने वाले) खड़े थे। रेसिडेन्ट वग़ैरह भी वहीं मौजूद थे। नवाब वाजिदअली वली अहद को पैग़ाम भेजा गया।

अपशकुन यह हुआ कि बादशाह की सवारी आने के बाद तख़्त पर पहुंचने के लिए जो ज़ीना था, वही टूट गया। ख़ैर, अमीरुद्दौला मीर मेंहदीअली खां और नवाब-अली नक़ी ख़ां तसबीह फेरते हुए कमरे में दाख़िल हुए। नवाब वाजिदअली शाह

१. देखिए दो पुस्तकें—१. कैसरुत-तवारीख—ले० सय्यद कमालुद्दीन हैदर मश्शदी (मशद, अरब का रहने वाला)—पृष्ठ सं० ४७८—प्रकाशक—नवल-किशोर प्रेस और २. तवारीखे नादिरुलअस्र

ने कमरे में दाख़िल होने के बाद पहले नमाज़ पढ़ी। फिर ताज लाया गया। रेसिडेन्ट ने एलान किया कि नवाब वलीअहद बादशाह हुए। तब बादशाह ने ताज पहना और तख़्त पर बैठे। तख़्त से ज़रा सा नीचे हटकर रेसिडेन्ट साहब कुर्सी पर बैठे। बाक़ी सब लोग खड़े रहे। उस वक़्त सुबह ९-३५ बजा था। गद्दी पर बैठने के बाद नज़रें पेश की गयीं। फिर नाच गाना हुआ।[1]

अभिषेक के बाद बादशाह की सवारी निकली थी। इस मौक़े पर कम्पनी की पांच पल्टनें आयी थीं। जेनरल विली के समय से ही यह तरीक़ा चला आया था। पल्टन के हरेक सिपाही को बादशाह की तरफ़ से इनाम मिलता था। इस प्रकार दोपहर गुज़रने के बाद बादशाह और वज़ीर अमीनुद्दौला हज़रत अमजद अली की क़ब्र पर गये। बादशाह वाजिदअली के छोटे भाई मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत बहुत रो रहे थे। बादशाह भी बहुत उदास थे। उनका दिल इतना मुलायम था कि जब मिर्ज़ा वारस्तूत ने उनके सामने अपनी नज़र पेश की, बादशाह उनकी यतीमी पर रो पड़े।[2]

बादशाह ने गद्दी पर बैठते ही राजकाज में तत्परता के साथ परिश्रम करना और दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। वे स्वयं छत्तरमंजिल में रहने लगे। उनका नियम था कि स्वर्गीय पिता की यादगार में हर इतवार को ९ बजे सुबह फरहबख़्श की कोठी में जाते थे। दफ़्तर रोज़ जाते थे। नियमित रूप से दोपहर तक दफ़्तर का काम देखते थे। हरेक मुहक्मे का प्रधान दोपहर तक बराबर अपने काम पर मौजूद रहता था। आम जनता की शिकायतें जानने के लिए बादशाह ने नियम बनाया कि नित्य सायंकाल जब उनकी सवारी निकलती थी, दो तुर्क सिपाही अपने सर पर चांदी का बक्स लेकर पीछे-पीछे चलते थे और हर ख़ास व आम को इजाज़त थी कि अपनी अर्जियां उन बक्सों में डालते जायँ। इस बक्स को "मशग़लये नौशेरवानी" कहते थे। रोज़ बक्स खोले जाते थे और उन पर कार्यवाही होती थी।

उनके ज़माने में राज्य में कितने दफ़्तर थे उनकी तालिका नीचे दी जाती है। बादशाह रोज़ हर मुहक्मे का काम देखते थे। इसीसे पता चलेगा

१. सलातीने-अवध।

२. कुछ लोगों का कहना है बादशाह के गद्दी पर बैठने के समय स्लीमन या लो ऐसे दुष्ट रेसिडेन्ट होते तो बड़ी अड़चनें आतीं।

कि राजकाज में उनको कितना परिश्रम करना पड़ता था तथा उन्हें कितनी दिलचस्पी थी।

सं०	मुहक्मा	काम
१.	दीवाने खास	बादशाह की लिखित या मौखिक आज्ञाएँ यहीं से जारी की जाती थीं। यह दफ़्तर "दरे दौलत सुलतानी" पर था—यानी बादशाह के महल में था।
२.	दफ़्तर बैतुलइंशा	गुप्त विभाग तथा राजनैतिक सचिवालय यानी मुंशीखानये-सुलतानी।
३.	दीवाने आम	दीवाने खास दफ़्तर का एक भाग। समाचार-पत्रों को यहीं से समाचार मिलते थे। इसे सूचना सचिवालय कहिए।
४.	दफ़्तर खज़ाना मसरिफ़	वित्त विभाग, आय-व्यय का दफ़्तर, वेतन यहीं से बंटता था या उसका आदेश-पत्र बनता था।
५.	दफ़्तर विज़ारत	यह प्रधान मन्त्री का दफ़्तर था। सरकारी कर्मचारियों की नियुक्तियां, काम से अलग करना, सरकारी खज़ानों को तथा सरकारी हिसाब देखना और मुहर-बन्द करना।
६.	सरिश्ते अखबार ड्योढ़ियात	इसके हरकारे यानी सम्वाददाता हर जगह पहुंच कर, शाही महलों में भी जाकर खबरें लाते थे जो यहीं पर खबरें इकट्ठी होकर बादशाह के पास पहुंचायी जाती थीं।
७.	सरिश्ते अखबार कोटगश्ती	खबरों का प्रचार
८.	सरिश्ते रविन्द	नगरों के गश्त का मुहक्मा।
९.	सरिश्ते अखबार मुल्की	
१०.	सरिश्ते अखबार दफ़्तराने बादशाही	
११.	दफ़्तर दीवानी	

१२. दफ़्तर बैतुल इजरा	
१३. दफ़्तर बख़्शीगरी	मुहक्मा बख़्शी-उल-मुल्क, सैनिक विभाग
१४. मुहक्मा सहरे अमानत	
१५. मुहक्मा अदालत आलिया	दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री का विभाग
१६. मुहक्मा कोतवाली	शहर-भर के थाने इस कोतवाली के अंतर्गत थे। यहीं पर मुक़द्दमा फ़ौज़दारी के फ़ैसले होते थे।
१७. मुहक्मे मुराफ़िया	यह राज्य की सबसे बड़ी अदालत थी जिसके प्रधान न्यायाधीश और न्याय विभाग के अध्यक्ष को "मुस्तहिदुल-अस्र" कहते थे। राज्य के दान विभाग आदि के भी यही प्रधान होते थे।
१८. मुहक्मा फ्रान्टियर पुलिस	
१९. मुहक्मा तनकीह मुस्तग़ीसाने मुलाज़िमाने सरकार कम्पनी सक-नाए अवध।	
२०. मुहक्मा सद्र थानेदार	
२१. मुहक्मा जदीद	कर्ज़े के मुक़द्दमों के लिए
२२. बैतुज़्ज़र	सिक्का ढालना
२३. सरिश्तये नजूल	
२४. सरिश्तये गंजियात व परमठ	ट्रांसपोर्ट विभाग
२५. सरिश्तये दवाब	तोपख़ाना वग़ैरह
२६. सरिश्तये आबकारी	शराब फरोशों से टैक्स (रईस अपने घर शराब बना सकते थे)

इस प्रकार कुल छब्बीस मुहक्मे थे। इन सब मुहक्मों में सबसे महत्वपूर्ण मुहक्मा दीवाने ख़ास व दफ़्तर खज़ाना मसारिफ़ तथा दफ़्तर वजारत था। पर, केवल एक ही विभाग ऐसा था जिसके प्रधान केवल अपनी योग्यता के बल पर अन्त तक अपने पद पर बने रहे। ब्रिटिश हुकूमत में भी वे नहीं हटाये गये और ग़दर के ज़माने में भी उसी पद पर रहे। ग़दर के बाद उनको ब्रिटिश सरकार से पेंशन मिली। उनका नाम था अलीरजा ख़ां बेग वल्द मसीता बेग, कोतवाल। उनका बादशाह से अहदनामा था कि अगर किसी का माल चोरी जाय और न दिला सकूं तो उसकी

क़ीमत अदा करूंगा। ये बड़े मुन्तज़िम व नेक नाम अफसर थे। बादशाह् ने उनके काम से खुश होकर उनको "मुन्तज़मिस्सुलतान" मुहम्मदअली रज़ा खां बहादुर "खिताब" दिया। अन्य सभी प्रधान बदलते गये — महराजा बालकृष्ण को छोड़कर।

बादशाह् ने बड़ी मुस्तैदी से काम शुरू किया। उस समय के इतिहास "सलातीने अवध"[1] में भी स्वीकार किया गया है कि बादशाह् सुबह तड़के उठकर नमाज पढ़ने के बाद दौलतखाना महल में अपनी माता मल्का किश्वर से मिलने जाते थे और शासन के अहम मसलों पर उस चतुर महिला से परामर्श करते थे। इसके बाद

१. सवानेह सलातीने अवध——लेखक सय्यद् कमालुउद्दीन हैदर उर्फ मुहम्मद मीर ज़ायर (तायर अपभ्रंश है)। ज़ायर ज़ियारत करनेवाले को कहते हैं। वे बाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी के लखनऊ के दफ्तर में नौकर हो गये थे। पढ़े लिखे क़ाबिल आदमी थे। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने गवर्नर जेनरल के सेक्रेटरी श्री इलियट के कहने से अवध का इतिहास लिखना शुरू किया। उसका संशोधन रेसिडेन्ट कर्नल विलक्रेप्स ने किया था। कर्नल स्लीमन ने भी उसे देखा था। चूंकि वाजिदअली शाह् के ही ज़माने में तवारीख़ लिखी जा रही थी अतएव नवाब कुतुबुद्दौला ने उसका ज़िक्र बादशाह् से किया। ज़ायर लिखते हैं कि बादशाह् ने उसे मंगाकर देखा और पढ़ा तो वे नाराज हो गये। ज़ायर का वज़ीफ़ा बन्द कर दिया गया। बादशाह् अपने पिता अमजदअली शाह् का हाल पढ़कर खुश हुए थे पर अपने बारे में पढ़कर रुष्ट हुए थे। "१८ साल तक मैं बेकार रहा। पर किसी अमीर के दरवाजे पर नहीं गया। वज़ीर अली नक़ी ख़ां चुपचाप कुछ रक़म सालाना दे दिया करते थे। काम चलता था। 'ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार ने भी नहीं सुना। बाद में असली वज़ीफ़े का एक-तिहाई यानी ५० रुपया माहवार मिलने लगा।"

अपनी किताब के बारे में लिखते हैं :—"बादशाह् के सामने जब किताब गयी तो १८ जुज़ (एक जुज़ १६ पन्ने का होता है) ही था। अब ७०-८० जुज़ हो गये हैं। एक जिल्द फारसी में, एक उर्दू में है। जेनरल चैम्बरलेन ने मि० पायर से इसका तर्जुमा अंग्रेजी में कराया था।"

यह पुस्तक अंग्रेजों के पक्ष में होगी, इसमें संदेह नहीं। इसमें से भी हमारे पक्ष की बातें निकल आयें तो उनका बड़ा महत्व होगा। लेखक ने वज़ीर सय्यदअली नक़ी ख़ां का काफ़ी पक्षपात किया है।

सीधे परेड भूमि जाते थे और अपनी पल्टनों की क़वायद कराते और देखते थे। कई इतिहासकारों ने कहा है कि बादशाह सूरज निकलने के पहले ही परेड भूमि में पहुंच जाते थे। दो घण्टे तक क़वायद कराने के बाद वे दरबार में आते थे और "मशगलये नौशेरवानी" यानी शिकायती पत्रों पर तुरत आदेश देते थे। जनता की शिकायतों पर तुरत कार्यवाही होती थी। दोपहर तक बादशाह अपने प्रधान कार्यालय अफजल मंजिल में काम करते थे।

इस तत्परता से उनका राजकाज तथा सैन्य संचालन अंग्रेज़ों से न देखा गया। वे भला कब चाहते थे कि अवध का शासन ठीक से चले। वे तो राज्य को किसी न किसी बहाने हड़प लेना चाहते थे। कुछ का कहना है कि और कोई उपाय न देखकर उन्होंने बादशाह के एक हकीम को घूस देकर मिला लिया। उस हकीम से बादशाह की माता के पास खबर भेजी गयी कि अगर वे इतनी मेहनत करेंगे तो उनको तपेदिक की बीमारी हो जायगी। मां का दिल मुलायम होता ही है। मल्का किश्वर हकीम साहब के चकमें में आ गयीं। उन्होंने वाजिदअली शाह का परेड पर जाना मना कर दिया।

बादशाह की बीमारी

लखनऊ के कुछ पुराने नवाबों से बातें करने से पता चला कि यह भी कहा जाता है कि हकीम साहब ने मलका को एक ख़ास सुर्मा बना कर दिया कि जिसे लगाने से नवाब के नेत्रों की ज्योति "बहुत अच्छी रहती"। मां ने बेटे को ज़रा सा सुरमा ही लगाया था कि उनके नेत्र में भयंकर जलन होने लगी। बादशाह अंधे होते-होते बचे।

यह कौन से हकीम थे, इनका क्या नाम था जो इस प्रकार की नीचता तथा राजद्रोह कर सकते थे? दरबार में कई हकीम रहते थे। इतना बड़ा शाही ख़ानदान था कि एक हकीम से काम भी नहीं चल सकता था। बादशाह के ख़ास हकीम मिर्जा अलीहसन खां को १२ मार्च, १८५० को नवाब शौकतुद्दौला के स्थान पर नियुक्त किया गया था। यदि वे दुष्ट पुरुष होते तो उनको तरक़्की न मिलती।

बादशाह के पुराने मुलाज़िम हकीम बन्देरज़ा खां थे। इनके पिता के समय से ही ये काम पर थे। इनका ख़ास काम यह था कि रोज़ सुबह बादशाह की नब्ज़ देखा करें। इनको महल में आने जाने की इजाज़त थी। पिछले बादशाह के जमाने में भी वे कई बार महल के भीतरी षड्यन्त्रों में क़ैद हो चुके थे पर माफ़ी पा

जाते थे। उनका काम था सबकी नब्ज़ देखते रहना और यदि कोई ख़राबी शरीर में हो तो रिपोर्ट देना। बादशाह के महलात के ऊपर भी रेसिडेन्ट की निगरानी रहती थी। स्लीमन ने अपने सहायक मेजर बर्ड को, जिनकी पुस्तक "अवध की डाकाजनी" का ज़िक्र हम बारबार कर चुके हैं, बादशाह के महलात का अपनी ओर से प्रधान नियुक्त किया था। मुहम्मद ज़ायर के कथनानुसार बर्ड ने अपना कन्ट्रोल या अपनी देखरेख ढीली कर दी थी अतएव हकीम बन्देरज़ा खां को बाहर भीतर षड्यन्त्र करने का काफ़ी अवसर मिला। इस हकीम को "तबीबुद्दौला" का ख़िताब था।

मुहम्मद ज़ायर लिखते हैं कि बादशाह की बेगम मुबारक महल तथा मरियम बेगम से इस हकीम का नाजायज़ ताल्लुक़ भी था।

जो हो, बादशाह ने शुरू में बहुत अच्छे ढंग से काम शुरू किया। यह कर्नल स्लीमन भी तस्लीम करते हैं—स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं:—"मौजूदा बादशाह ने इस प्रथा को (पूर्वजों के नियमित शासन को) शुरू में जारी रखा पर थोड़े समय में ही वे ऊब उठे और उन्होंने अपने दफ़्तर का सब काम और अपनी मुहर प्रधान मन्त्री (वज़ीर) के हवाले कर दी।"[1]

हकीमों का ज़िक्र मेढ़ीलाल ने भी अपनी पुस्तक में किया है। वे लिखते हैं कि शुरू में बादशाह बड़ी मिहनत से और बहुत अच्छा काम करते थे। "मगर हकीमों ने काम करने से रोका और उन्हें आगाह किया कि इससे उनके "दिल" पर बुरा असर पड़ेगा।"

और वाक़या यह है कि मल्का किश्वर से कहकर बादशाह का "दिल बहलाने" के लिए भोग-विलास की प्रचुरता करायी गयी। कहा गया था कि उनकी बीमारी का इलाज यही है कि वे ऐशो-इशरत में डूबे रहें। असल में कम्पनी का तथा रेसिडेन्ट कर्नल स्लीमन का यह षड्यंत्र था कि जैसे भी हो, बादशाह को काम से हटाकर ऐश में डुबा दिया जाय ताकि अवध को हड़प लेने का मौक़ा मिले।

बादशाह की असली बीमारी थी परेशानी, निराशा तथा अंग्रेज़ों द्वारा उत्पन्न उलझनें। वे देख रहे थे कि कम्पनी उनका मुल्क छीनना चाहती है। वे देख रहे थे कि उन्हें शासन नहीं करने दिया जा रहा है। वे देख रहे थे कि चारों ओर से अवध को घेरा जा रहा है और रोज उनके शासन में दस्तन्दाज़ी हो रही है—तब उनका मायूस होना, उदास रहना, दुःखी रहना उचित ही था। इलियट के कहने

१. कर्नल स्लीमन की डायरी, भाग १, पृष्ठ १८०

से सलातीने-अवध लिखने वाले जायर लिखते हैं कि पिता के मरने के बाद बादशाह फ़रहबख्श की हवेली छोड़कर क़ैसरबाग़ चले गये और वहां रहने लगे। पर पुराने महल में हर आठवें दिन दरबार करने आते थे। पर कुछ दिनों बाद यह भी बन्द हो गया। लेखक ने दरबार बन्द होने का कोई कारण नहीं बतलाया है पर वे लिखते हैं कि बादशाह का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। उनको "उदासी की बीमारी हो गयी थी। उनकी तबीयत में उलझन रहती और काम में मन न लगता।"[१] "आगे चलकर बादशाह को दिल की बीमारी हो गयी थी।"[२]

हकीमों ने या किसी एक हकीम ने सीधे और भोले बादशाह को तथा उनकी माता को बीमारी का इतना विकट रूप बतला दिया कि उनके दिमाग़ में बात बैठ गयी। बादशाह पहले तो अपने को एकदम स्वस्थ समझते थे पर चाटुकारों के कहने से वे भी अपने को रोगी समझने लगे। बादशाह स्वयं लिखते हैं :—

एक मरज़ जाता रहा तो दूसरा पैदा हुआ।
क़ल्ब के हिलने का मुझको आरज़ा पैदा हुआ॥

पैसे वालों को बीमार बनाने में हकीम डाक्टरों का लाभ सदैव से होता चला आया है। यदि पैसे वाला बीमार न पड़े तो हकीम डाक्टर बीमार हो सकते हैं। अतएव जब बादशाह ऐश व आराम की ओर झुकने लगे तो उनकी उदासी की बीमारी कम होने लगी। इसीलिए इस भय से कि वे कहीं काम पर न झुकें, उनको दिल का मरीज़ बना दिया गया। बादशाह के तख्त से उतारे जाने के बाद न जाने उन की यह बीमारी यानी दिल की बीमारी कहां लापता हो गयी।

कर्नल स्लीमन ने उस ज़माने में जो पत्र लिखे थे उसमें से बहुत से उपलब्ध हैं और प्रायः हरेक पत्र में, शुरू में, उन्होंने अपने सभी अफ़सरों, मित्रों तथा साथियों को यह भुलावा दिया है कि बादशाह बहुत बीमार हैं। काम के लायक़ नहीं हैं और उनकी ज़िन्दगी का कोई ठिकाना भी नहीं है।

वाजिदअली शाह के प्रति यही आक्षेप जेनरल आउट्रम ने लगाया था, जो स्लीमन के बाद रेसिडेन्ट बनाये गये थे और अपने साथ बादशाह को गद्दी से उतारने का आदेश ले आये थे कि—"वे शुरू में काम करते थे और बाद में छोड़

१. सलातीने अवध। २. महारबये गदर—लेखक मुं० मेढ़ीलाल सुपुत्र मुं० शिवप्रसाद, प्रकाशित गुलशने अवध प्रेस, १८७१।

दिया।" इसपर बादशाह ने लन्दन को जो उत्तर भेजा था, उसमें लिखा था :—[1]

"हमने हमेशा अमूरे सलतनत में तवज्जह रखी। लगान का बन्दोबस्त हर साल होने से रियाया को बड़ी परेशानी होती है। हर सातवें साल होना चाहिए। हमने इसीलिए आमदनी बढ़ाने के लिए जल्दी जल्दी लगान नहीं बढ़ाया. . . ."

और, इसके बाद बादशाह ने बहुत से उदाहरण देकर यह साबित किया है कि उनका शासन कहीं अच्छा था; कम्पनी के शासन में बड़ी ख़राबियां थीं। हम इनका ज़िक्र बाद में करेंगे।

अमीनुद्दौला का त्यागपत्र

बादशाह वाजिदअली ऐसे योग्य शासक के साथ अमीनुद्दौला ऐसे योग्य वज़ीर का साथ अंग्रेज़ों को पसन्द नहीं था। वे अपने मन का, अपने हाथ का, प्रधान मन्त्री तलाश करने लगे। उनकी निगाह सय्यदअली नक़ी खां की ओर गयी। वह आला ख़ान्दान, दिल्ली के मुग़ल परिवार के वंशज थे और अपनी वज़ारत के लिए लाखों रुपया खर्च कर रहे थे। रेसिडेन्सी में, अंग्रेज़ अहल्कारों को और बादशाह के दरबारियों को घूस दे रहे थे। चूंकि नक़ी खां नवाब मदारुद्दौला के पोते थे और मदारुद्दौला की अवध के दरबार में काफ़ी इज़्ज़त थी अतएव उनके समर्थक बढ़ते गये। नवाब ख़ासमहल भी इनके पक्ष में हो गयी थीं और उनकी वजह से जनाबे आलिया मल्का किश्वर की भी रुझान नक़ी खां की ओर थी।

पर, अमीनुद्दौला बड़े योग्य वज़ीर थे और उनके सुप्रबंध का लोहा लोग मानते थे। पर अपनी सख़्ती व काम में कड़ाई की वजह से सेना तथा सरकारी कर्मचारियों में, दोनों में वे काफ़ी बदनाम या अश्रद्धा के पात्र हो गये थे। अवध का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो जितनी ही ईमानदारी तथा सच्चाई से काम करता है वह उतना ही अप्रिय बन जाता है। अयोध्या नरेश रामचन्द्र जी को धोबी का उलाहना सुनना पड़ा था।

अस्तु, अमीनुद्दौला ने अपने काम के सिलसिले में अंग्रेज़ों को मिलाकर चलने की नीति बर्तनी शुरू की और इसीलिए बादशाह वाजिदअली शाह को यह संदेह हो गया कि वे अंग्रेजों से मिले हुए हैं। इस संदेह को नवाब अमीनुद्दौला भी कुछ समझ

१. मल्का विक्टोरिया के नाम बादशाह का पत्र या "उत्तर"

गये और उन्होंने स्वयं बादशाह से प्रार्थना की कि उनको काम से मुक्त कर दिया जावे। नवाब का कहना था कि "बाप का नौकर बेटे का उतना वफ़ादार नहीं हो सकता।" बादशाह ने उनकी प्रार्थना टाल दी। नवाब ने अंग्रेज़ों से कहा कि "मुझे छुट्टी दिला दीजिए।" वे भी राज़ी नहीं हुए।

इसी बीच एक दुःखद घटना हो गयी। जिस घटना का हम ज़िक्र करेंगे उसके काफ़ी पहले की बात है यानी सन् १८२४ की। उस समय आग़ामीर वज़ीर थे। उनके लड़के ने तत्कालीन ब्रिटिश रेसिडेन्ट के दुलारे ईसा मियां की तवायफ़ बीवी जान को रख लिया था। ईसा मियां को बड़ा क्रोध आया और उन्हें बड़ा अपमान प्रतीत हुआ। उन्होंने बीच सड़क पर वज़ीर के लड़कों पर घातक हमला करवा दिया था। उसी तरह से, ८ अप्रैल, १८४७ को सुबह तड़के ५ बजे बादशाह से मिलने के लिए जब नवाब अमीनुद्दौला जा रहे थे, उनकी बग्घी पर बीच सड़क पर कुछ लोग टूट पड़े। नवाब घायल हो गये। उनसे ५०,००० रुपया लेकर, उसी स्थान पर वसूल कर, तब जान बख़्श दी गयी। घायल नवाब वहीं पड़े थे जब रेसिडेन्ट की सवारी भी आ पहुंची और वे वज़ीर को रेसिडेन्सी ले गये। हमला करने वाले भी पकड़े गये। वे भी रेसिडेन्सी में लाये गये। बादशाह को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने तुरन्त उन क़ैदियों को अपनी कोतवाली में दाख़िल करने के लिए मंगवाया पर रेसिडेन्ट को न जाने क्या पड़ी थी कि क़ैदियों की प्राणरक्षा का वादा कराकर तब बादशाह के हवाले किये। वज़ीर ने भी यह कहलाया कि क़ैदियों को बादशाह ख़ुद सज़ा न दें। न्यायालय में उनका फ़ैसला हो।[१]

वज़ीर पर हमले की घटना का स्लीमन ने जिस रूप में वर्णन किया है, हमने ऊपर लिख दिया है। "फसानये इब्रत" में मिर्जा रज्जबअली बेग इसी घटना को इस प्रकार लिखते हैं:—

"नवाब इमदाद हुसेन खां (अमीनुद्दौला) वज़ीर थे मगर बादशाह को पसंद नहीं थे....२१ रबीअल अव्वल, शुक्रवार के दिन जब नवाब साहब अपने मकान से बग्घी पर सवार चले तो दाहिने बायें हिलास और मीर दो ख़ासबरदार थे। फ़ज़्लअली, मीर तफ़ज़्ज़ुल हैदर खां और हाफ़िज अफ़गान ने उनको रोका। तफ़ज़्ज़ुल ने कराबें चलायीं, जिससे हिलास मर गया। फ़ज़्लअली की तलवार से शाह मीर की कलाई कटी, वह भी भागा....तफ़ज़्ज़ुल नवाब पर टूट पड़े।

१. स्लीमन की डायरी, भाग १।

तफ़ज़्ज़ुल ने कमर में हाथ डाला जिससे वह और नवाब नीचे गिरे. . . .नवाब को तलवार से घायल कर दिया. . . . बर्ड साहब क़ायम मुकाम रेसिडेन्ट ने नवाब को छुड़ाया और इन चारों को क़ैद किया। नवाब इमदाद हुसेन इलाज़ से अच्छे हुए लेकिन कमज़ोर हो गये. . . . ."[१]

अमीनुद्दौला पर आक्रमण के सम्बन्ध में दो बातें और भी ध्यान देने योग्य हैं। हमने अपनी इस पुस्तक में मेजर बर्ड लिखित "अवध में डांकाज़नी" पुस्तक का बार-बार जिक्र किया है। मेजर बर्ड सहायक रेसिडेन्ट थे। अतएव उनसे अच्छा गवाह मिलना भी कठिन था। वज़ीर को घायल दशा में उठा लाने वाले स्वयं मेजर बर्ड थे और बादशाह को क़ैदियों को दे देना भी बर्ड ने ही अस्वीकार किया था। अपनी पुस्तक में बर्ड ने इस घटना का ज़िक्र तक नहीं किया है। इसलिए ऐसी आशंका हो सकती है कि बर्ड भी वज़ीर पर आक्रमण के षड्यंत्र में शामिल रहे हों और इसीलिए क़ैदियों की जीवन रक्षा उनको करनी ही रही हो।

बादशाह पर इस घटना का उलटा असर हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि वज़ीर ने जानबूझ कर यह सब नाटक रचा था जिससे अंग्रेज़ों को उनके शासन के कार्य में हस्तक्षेप करने का अवसर मिले। क़ैदियों को छोड़ने में जो आनाकानी तथा विलम्ब रेसिडेंसी से हुआ था, उससे बादशाह को काफ़ी ग्लानि हुई थी। अतएव इस घटना के बाद नवाब अमीनुद्दौला की वज़ारत चल ही नहीं सकती थी। बादशाह ने उन्हें काम से अलग कर दिया और उनकी जगह मीर मेंहदी वज़ीर नियुक्त हुए। वित्त विभाग के दीवान महाराजा बालकृष्ण अपने पद पर बने रहे।

मीर मेंहदी ने अपनी वज़ारत के तीसरे दिन ही अपना मकान बड़ा करने के लिए एक हिन्दू का चबूतरा खुदवा डाला। इससे हिन्दुओं में बड़ा असन्तोष पैदा हुआ।[२] उन्होंने हड़ताल कर दी और बादशाह के पास फ़रियाद लेकर आये। बादशाह साम्प्रदायिक एकता के कट्टर समर्थक थे। अवध के नवाबों की परम्परा ही ऐसी थी कि वे हिन्दू-मुसलिम भेद करना जानते ही नहीं थे तथा ऐसा भेद करने वालों से उन्हें सच्ची चिढ़ थी। इस काण्ड ने नक़ी खां के समर्थकों को अवसर दिया और मीर मेंहदी तुरत काम से पृथक् कर दिये गये और सय्यदअली नक़ी खां प्रधान मन्त्री अर्थात् वज़ीर मुकर्रर हुए। श्री ज़ायर लिखते हैं कि "मीर मेंहदी को बर्ख़ास्त करने के बाद एक बार फिर अमीनुद्दौला को वापस बुलाया गया पर

१. फ़सानये-इब्रत २. सवानेह सलातीने अवध

उन्होंने अस्वीकार कर दिया। ९ जुलाई, १८४७ को अमीनुद्दौला मौकूफ़ हुए थे।" राजा कुन्दनलाल, मीर मुन्शी को बुलाया गया। नक़ी ख़ां की नियुक्ति के बारे में अमीनुद्दौला को पता चल गया था। वे यह भी जानते थे कि यह सब चाल अंग्रेज़ों की है और धोखा होगा। नक़ी ख़ां ने लाखों रुपया ख़र्च करके वज़ारत हासिल की।[१]

मीर मेंहदी के अल्प शासन काल में लखनऊ में काफ़ी साम्प्रदायिक गड़बड़ी पैदा हो गयी थी। मुसलमानों ने कई शिवालय खोद डाले।[२] एक शिवालय के बारे में सरावगियों (जौहरी का काम करने वाले हिन्दू) से मुसलमानों से झगड़ा चल रहा था। वह शिवालय भी खोद डाला गया। सरावगी लोग बादशाह और रेसिडेन्ट दोनों के यहां शिकायत लेकर गये थे।

अस्तु, ५ अगस्त, १८४७ को सय्यद नक़ी ख़ां वज़ीर मुक़र्रर हुए और इनकी उपाधि, इनके पितामह के नाम पर "नवाब मदारुद्दौला" हुई।[३] वज़ारत की ख़िलअत मिलने के समय इनको जो उपाधियां मिली थीं वे इस प्रकार हैं :—

"रुक्नरकीन, ख़िलाफ़तों जहांदारी, ऐतज़ाद सलतनत व शहरयारी, अमीरुल उमरा, मदारुह मुहाम, वज़ीररुल मुमालिक, मुअतदमदुल ख़ाक़ान, तलमीज़ुस्सुलतान, सैफ़े मसलूल, बाजूए शहंशाही, रम्ह मस्कल मारक्ये दुश्मनगाही, सआदत मंसाअद इक नगीं व सफ़ा न हिज मनाइज सदाक़त व वफ़ा मुरीद। मुर्शिदपरस्त, अख़लासे गुजीं, ख़ानाज़ाद अकीदत, सरिश्त सफूवते आईने मुख्तार जी इख्तदार यारो वफ़ादार, सिपह सालार, रुस्तमे हिन्द, मदारुद्दौला, मुन्तज़िमुलमुल्क अली नक़ी ख़ां बहादुर, सुहराबे जंग, फ़िदवीख़ास जांनिसार अबुल मंसूर नासिरुद्दीन सिकन्दरजाह बादशाह आदिल क़ैसरजमां सुलतान आलम वाजिदअली शाह, ख़ल्क अल्लाह मल्कहू व सलतनहू।"[४]

नक़ी ख़ां की नियुक्ति दरबारी साज़िश तथा पैसे के प्रताप से हुई थी। पर अवध के लिए यह बड़े दुर्भाग्य की बात हुई कि इतना निकम्मा आदमी वज़ीर की गद्दी पर बैठा। मुं० मेढ़ीलाल ने लिखा है कि उनकी नियुक्ति इसलिए हुई थी कि बादशाह का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, अतएव आत्मीय होने के नाते नक़ी ख़ां रखे गये जिससे राजकाज ठिकाने से चले। पर इस कथन में हमको थोड़ा

१. सवानेह सलातीने अवध, भाग २ अध्याय ४
२. वही ३. वही ४. सलातीने अवध—भाग २, अध्याय ४

दोष दिखायी पड़ता है। उस समय तक नक़ी खां की बादशाह के साथ कोई नज़दीक़ी रिश्तेदारी नहीं थी। ६ जून, १८५१ को उनकी कन्या अशफ़ाक़ुस्सुलतान से बादशाह की शादी हो गयी। उसको ख़िताब मिला—नवाब अख़्तर महल। बादशाह ने शायरी में अपना तख़ल्लुस "अख़्तर" रखा था। विवाह के अवसर पर बादशाह की सभी बेगमें उपस्थित थीं, केवल आदम बहू यानी नवाब ख़ासमहल मौजूद नहीं थीं।[1]

मुं० मेढ़ीलाल आगे चलकर लिखते हैं कि—"इस खानदानशाही में जिसने चकमा खाया है, अपने श्वशुर से। मदारुह मुहामी के अख़्तयार मिलते ही नक़ी खां सभी राजा, रईसों को, अपनी ओर मिलाने लगे. . . .ऊपर से बादशाह के ख़ैरख़्वाह बनते थे और भीतर से साज़िश कर रहे थे कि खुद बादशाह बन जावें. . . वसीहअली ख़ां जो सुपरिन्टेन्डेन्ट एहतराम तथा मेहमानदार ओहदा रखते थे, इस साज़िश में शामिल थे. . . .आखीर में बादशाह को नक़ी खां की चाल मालूम हो गयी मगर वे खुद उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई नहीं करना चाहते थे। मौक़ा तलाश कर रहे थे. . . .नक़ी खां ने रेसिडेन्ट आउट्रम से मिलकर बादशाह की "माज़ली" की साज़िश में हाथ बंटाया।"[2]

वज़ीर से बादशाह की पटरी ज़्यादा दिन न बैठ सकी। बादशाह भरी जवानी में थे। वे जमकर काम करना चाहते थे और अपना राज संभालना चाहते थे। नक़ी खां ने काम संभालने का स्वांग मात्र किया था। उनका समय दरबारी साज़िशों में बीतता था।

अवध की माली हालत ख़राब होती जा रही थी। लंकाशायर तथा मैंचेस्टर के कपड़ों से बाज़ार भरा पड़ा था। बुनकर, जुलाहे भूखों मरने लगे। बेकारी बढ़ती गयी, थोड़ा बहुत चिकन का काम बाक़ी रह गया था। बादशाह देशी कपड़ा ही पहनते व ख़रीदते थे इसलिए बुनकरों को थोड़ा बहुत सहारा रईसों का रह गया। शहर के रहने वाले के लिए नौकरी के अलावा कोई ज़रिया नहीं रह गया था। उस समय अवध की आबादी ३० लाख थी।[3] रेसिडेन्ट जेनरल लो के ज़माने में, उनके ही कथनानुसार लखनऊ ख़ास की आबादी दस लाख थी मगर इस वक़्त

१. महारबये ग़दर—ले० मुं० मेढ़ीलाल वल्द मुं० शिवप्रसाद, प्रकाशक-गुलशने अवध प्रेस, सन् १८७१।

२. महारबये ग़दर ३. सलातीने अवध—भाग २, अध्याय ५।

३ लाख ही रह गयी थी। हज़ारों मर गये। हज़ारों नान शबीना (रोटी) के मुहताज हैं। हजारों बेकारी के कारण चण्डू अफ़ीम वग़ैरह की इल्लत पाल बैठे हैं। खाली बैठे-बैठे क़िस्साखानी होती रहती है। इसलिए इस ज़माने में क़िस्सा कहने का हुनर बहुत बढ़ा। किस्सा सुनने-कहने के क्लब खुल गये। गप्पें उड़ा करती थीं।"[१]

नौकरियां नहीं थीं। मुसलमानों में बेकारी और भी ज़्यादा थी क्योंकि कपड़े का बुनने-कातने का व्यापार ज़्यादातर उन्हीं के हाथों था। नौकरी न मिलने के कारण मुसलिम लड़के मक़तब या स्कूलों में भी जाने से झिझकते थे। पर उनकी इस झिझक का मज़ाक उड़ाते हुए कर्नल स्लीमन ने बम्बई के प्रधान न्यायाधीश सर अर्स्काइन पेरी को २२ अगस्त, १८४८ को लिखा था—

"मुसलमान इसलिए तालीम नहीं हासिल करना चाहता कि इससे उसे रोटी या नौकरी की प्राप्ति नहीं होती थी।"

बादशाह अपने देश में नये-नये काम चालू करना चाहते थे ताकि लोगों को राहत मिले। पर, अवध की आमदनी इतनी नहीं हो पा रही थी कि कुछ विशेष काम हो सके। कर्नल स्लीमन ने गवर्नर जेनरल को ८ मई, १८४९ को एक पत्र में लिखा था :—

"सरकार का खर्च १०० लाख रुपया साल है और लगान वसूली ६० लाख रुपया साल से ज़्यादा नहीं है...इधर सूबे में बीमारी काफ़ी फैली थी और फिर खरीफ़ की फस्ल नहीं हुई....वज़ीर बड़ा कमज़ोर आदमी है..."

इसके पहले ही, यानी ३० जनवरी, १८४९ को बादशाह की बुराई करते हुए वज़ीर के सम्बन्ध में कर्नल स्लीमन ने गवर्नर जेनरल को लिखा था :—

...वज़ीर तीसरे दर्जे का आदमी है....कहते हैं कि बादशाह ने खुल कर कह दिया है कि जितना काम करने का उसने वचन दिया था, उसमें से कुछ भी पूरा नहीं हुआ और न वह पूरा करने की योग्यता रखता है। ख़ासकर अत्यधिक बक़ाया मालगुज़ारी तो वह वसूल कर ही नहीं सकेगा।"

बादशाह ने अपने जवाब में यह साबित कर दिया है कि "बक़ाया" के बारे में स्लीमन का अभियोग ग़लत था। पर वज़ीर के बारे में दोनों की राय मिलती है। फ़र्क़ इतना ही है कि बादशाह उस वज़ीर से छुटकारा पाना चाहते थे पर

१. सलातीने अवध, अध्याय ५, भाग २।

इसलिए नहीं पा सके कि कम्पनी यही चाहती थी कि निकम्मा वज़ीर बना रहे तो अवध की बादशाहत समाप्त करने में उनको सुविधा होगी। बादशाह के सलाहकार चतुर वसीहअली से स्लीमन को बड़ी घृणा थी। बड़ा विरोध था। उसके बारे में उनकी जैसी धारणा थी, वैसी ही धारणा वसीहअली की उनके बारे में थी। पर बादशाह, वज़ीर, वसीहअली तीनों के बारे में तत्कालीन रेसिडेन्ट के जो विचार थे, उनसे ही स्पष्ट हो जाता है कि बादशाह को तथा अवध की हुकूमत को कितनी भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता रहा होगा। स्लीमन ने अपने शासनकाल में जो निजी पत्र लन्दन के मित्रों को लिखा था उन्हें लन्दन के दैनिक "टाइम्स" ने नवम्बर, १८५८ के अंकों में प्रकाशित किया था। उसमें एक पत्र में स्लीमन लिखते हैं:—

"...मेरी यहां की स्थिति बड़ी अरुचिकर तथा असन्तोषजनक है। यहां पर एक बेवकूफ़ बादशाह है। एक लुच्चा वज़ीर है और दोनों ही हिन्दोस्तान के सबसे मक्कार, षड्यन्त्रकारी तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति के प्रभाव में हैं...."

वज़ीर नक़ी खां के बारे में उनके अंग्रेज़ मित्रों की भी धारणा जान लेना ज़रूरी है। ऐसे व्यक्ति के कार्य की बादशाह ने जांच करनी शुरू की। एक दिन वे अवध की आमदनी का क़ाग़ज़ पत्र देखने लगे तो माली हालत देखकर उनको इतना सदमा पहुंचा कि बिना वज़ीर को डांटे-डपटे वे दिलकुशा की कोठी में कुछ दिन एकान्तवास करने लगे। सिर्फ बन्देअली खां कोचवान को उनके पास जाने का हुक्म था। नक़ी खां को खटका हो गया कि बादशाह नाराज हैं। उन्होंने दारोग़ा मुहम्मद खां से पूछा कि क्या जाने आलम खफ़ा हैं। दारोग़ा ने बन्देअली खां से पूछा। कोचवान ने कहा कि मैं गाड़ी पर बादशाह को घुमाने ले आऊंगा तो राह में खड़े रहें। मुलाक़ात करा दूंगा। यही किया भी। जहां वे खड़े थे गाड़ी पटरी पर चढ़ा दी। गाड़ी रुक गयी। नकी खां ने बादशाह को सलाम कर लिया।

इससे बादशाह कोचवान पर ही नाराज़ हो गये और उन्होंने नक़ी खां से मुंह मोड़ना चाहा पर नक़ी खां ने बादशाह को गाड़ी से उतार लिया। आखिर सरल हृदय बादशाह प्रसन्न हो गये और उन्होंने नवाब को खिलअत दी।[1] बादशाह का गुस्सा थोड़े दिन तक और चल जाता तो नक़ी खां का पत्ता ही कट जाता। पर, यह अवसर हाथ से निकल गया।

१. सलातीने अवध।

एक दूसरा अवसर आया जब स्लीमन तथा नक़ी खां में सलातीने-अवध के अनुसार, फ़सली १२५९ में, इतना मनमुटाव हो गया कि उन्होंने वज़ीर का अपने यहां आना बन्द करा दिया। नक़ी ख़ां काफ़ी परेशान हो गये तो अंग्रेज़ों के दोस्त और बादशाह के भी विश्वासपात्र, अवध के मातहत महाराजा बलरामपुर ऑन० सर महाराज दिग्विजयसिंह के० सी० एस० आई० को बुला भेजा। इस महाराजा के ख़िताबों से ही ज़ाहिर है कि वे अंग्रेज़ों के पूरे भक्त थे। वज़ीर की तरफ से महाराजा स्लीमन के पास गये। उन्होंने जवाब दिया कि :—

"यह आदमी साफ़ दिल नहीं है। सरकार का प्रबंध भी बहुत ख़राब है।"

स्लीमन ने कहा कि रीयासत के लिए बेहतर तथा फ़ायदेमन्द होगा कि वसीहअली खां, दीवान चण्डीसहाय, अंग्रेज़ कर्मचारी ब्रैडन वग़ैर: को काम से अलग कर दिया जाय। अली नक़ी खां तो बचपन से ही लाड़ प्यार में पले हैं। उनको इन्तज़ाम-मुल्क में दख़ल नहीं है। इसलिए उनका पेशकार सर्फुद्दौला इब्राहीम अली खां को बना दें। तब हम समझेंगे कि ठीक से काम हो रहा है।

महाराज ने नवाब से जब सब प्रस्ताव कहा तो उनका चेहरा उतर गया। पर मजबूर थे। रेसिडेन्ट को नाराज़ नहीं कर सकते थे। अवध का असली हाकिम रेसिडेन्ट बन गया था। वजीर ने खुद अपने बादशाह को कमज़ोर बनाया था। उन्होंने चार दिन के भीतर ही दीवान चन्दीसहाय, वसीहअली तथा ब्रैडन को काम से हटा दिया पर स्लीमन के ख़ास आदमी सर्फुद्दौला को पेशकार बनाने पर राज़ी न हुए। महाराजा दिग्विजयसिंह ने स्लीमन से सब हाल कहकर वज़ीर से भेंट का प्रबंध किया। दोपहर को तीन बजे भेंट हुई। स्लीमन शिष्टाचार के साथ मिले। महाराज वहां से हट गये। तीन घंटे तक दोनों में बातें होती रहीं। काफ़ी प्रेम से बातें हुईं। नक़ी खां खुश लौटे पर मालूम होता है कि नक़ी खां स्लीमन से तथा स्लीमन नक़ी खां से जितना जो कुछ चाहते थे, वह सौदा पटा नहीं क्योंकि आगे चलकर पटरी ठीक से बैठी नहीं।

महाराजा बलरामपुर का काम समाप्त हो चुका था। दोनों में मेल करा चुके थे। उन्होंने स्लीमन से बिदा मांगी। स्लीमन ने कहा :—

"यह पेड़ गिरने ही वाला है। तुम घर जाओ।"[१] महाराजा ने मालगुज़ारी के सिलसिले में बादशाह के यहां राय सघनलाल की ज़मानत लिखवा दी। उन्होंने

१. सलातीने अवध—अ० ५, भाग २

इधर जो परिश्रम किया था, उसके उपलक्ष्य में उनको एक नक्कारा व एक तोप इनाम में मिली। इस प्रकार दोनों को खुश करके वे अपने घर वापस आ गये।

दरबारी साज़िशें

अवध के नवाब या बादशाह अपनी शराफ़त तथा सौजन्य के कारण, सिधाई तथा भोलेपन के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी की चालबाज़ियों के शिकार होते जा रहे थे। दूसरे उनके दरबारी, उनकी बेगमात भी उनको काफ़ी तबाह करती जा रही थीं। रेसिडेन्ट तथा बादशाह की दो हुकूमतें होने के कारण भी शासन एकदम शिथिल होता जा रहा था। सरकारी अहल्कारों के लिए काफ़ी आराम था। एक मालिक अगर नाखुश होता—यानी बादशाह यदि अप्रसन्न होते तो रेसिडेन्ट के यहां तुरत शरण मिल जाती थी। बादशाह के शासन को निकम्मा करने के लिए ही रेसिडेन्ट ऐसा करते थे। वाजिदअली शाह के शासन काल में, उनकी नेकनीयती तथा अंग्रेज़ों से दबने की तबीयत से फ़ायदा उठाकर, रेसिडेन्ट इतना जोरदार हो गया था कि बादशाह के प्रधान न्यायाधीश[1] के फ़ैसले भी उनके पास अन्तिम स्वीकृति के लिए जाते थे। लगान वसूली की ज़िम्मेदारी बादशाह की थी पर तहसीलदारों की नियुक्ति तथा उन्हें काम से पृथक् करना रेसिडेन्ट के हाथ में था।[2] बादशाह जब अपने कर्मचारियों को दंड देते थे तो रेसिडेन्ट दंड भी नहीं देने देते थे। वाजिदअली शाह ने लन्दन को जो पत्र लिखा था, उसमें वे लिखते हैं कि तीन मुहक्मों को रसद पहुंचाने के लिए एक-एक अफ़सर व सिपाही तैनात थे। २० से लेकर २५ वर्ष के नौजवान। उनकी चोरियां पकड़ी गयीं, वे काम से हटाये गये। रेसिडेन्सी में इनमें से दो को नौकरी मिल गयी। बादशाह को मजबूर किया गया कि काम पर से हटाये गये सभी कर्मचारियों को पेंशन दो। जिनको नौकरियां मिल गयीं, उनको भी काम पर से हटने के एवज़ में पेंशनें बराबर देनी पड़ीं।

काम को और बिगाड़ने के लिए रेसिडेन्ट स्लीमन ने स्वयं अपना दरबार लगाना शुरू किया और जनता से दरख्वास्तें लेने लगे। यह कार्य सभी संधियों के विरुद्ध था, पर उनको कौन रोक सकता था। जो फ़ैसले बादशाह के यहां हो चुके थे वही मुक़द्दमे या वही मामले फिर से स्लीमन के दरबार में पेश होने लगे। इस

१. मुजतहिदुल-अस्र। २. कम्पनी का बादशाह को उत्तर, मई, १८५७

तरह गड़े मुर्दे उखड़ने लगे। खराब काम करने वाले, वसूली खराब करने वाले या घूसखोर अहल्कारों को स्लीमन "असनाए नेकनामी" देकर बादशाह को परेशानी में डाल देते थे। सुलतानपुर के तहसीलदार आगा अली जान, बहराइच के तहसीलदार मुहम्मद हसन और बिसवां के तहसीलदार फतेचन्द को इसी प्रकार रेसिडेन्सी से "सर्टिफ़िकेट" दे दिये गये। नवाब अली खां, ताल्लुक़ेदार महमूदाबाद और अमेठी के ताल्लुक़ेदार राजा माधोसिंह से बादशाह अप्रसन्न हो गये थे। अतएव स्लीमन साहब ने इनके यहां दावतें क़बूल करके उनका हौसला और बादशाह के प्रति उपेक्षा की भावना को बढ़ावा दिया। यही बात राजा बख़्तावरसिंह और बिसावड़ के राजा मानसिंह के साथ की गयी। यानी, बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर के साथ इस मामले में जो संधि की गयी थी, उसको तोड़कर बग़ावत को प्रोत्साहन दिया जा रहा था।

जो तहसीलदार अच्छा काम करते थे, रेसिडेन्ट उनके पीछे पड़ जाते थे। बादशाह सलोन के तहसीलदार जानअली के काम से बहुत खुश थे। पर रेसिडेन्ट को खुश करने के लिए उनको काम से हटाना पड़ा। बादशाह लिखते हैं कि "हमने सीने पर पत्थर रख कर मान लिया। दो साल का रुपया बर्बाद हुआ।" इसके विपरीत बादशाह ने कालाकांकर के राजा हनुमतसिंह की विचित्र कथा लिखी है। उनके ऊपर सरकार का काफ़ी रुपया बकाया था। वे क़र्ज़ से लदे थे। बादशाह उनको गिरफ़्तार करना चाहते थे तो रेसिडेन्ट ने उनको मंडियाहू की छावनी में रहने का स्थान दिया। जब बादशाह के सिपाही उन्हें पकड़ने गये तो उन्होंने एक सिपाही की नाक काट ली, एक का हाथ काट लिया। स्लीमन के यहां फ़रियाद पेश की गयी तो उन्होंने राजा का ही पक्ष लिया।

बादशाह लिखते हैं[१] कि—"हमारे नौकरों की बेइज़्ज़ती होती थी और जब वे बग़ावत करते थे तो उनकी तारीफ़ होती थी। ग़ुलामरज़ा की रेसिडेन्ट ने बड़ी बुराई की। जब हमने उसको हटा दिया तो उसकी बड़ी तारीफ़ की गयी और उसे बड़ा ओहदा दिया गया। मुहम्मदअली रज़ा कोतवाल बड़ा फ़ासिख़ और फ़ाजिर (पाज़ी) था। वह अपने ओहदे के नाक़ाबिल था। काफ़ी क़र्ज़दार था। अंग्रेज़ सरकार ने उसे हटाने के बजाय दरियाबाद का डिप्टी कमिश्नर बना दिया और उसकी तनख़्वाह ४०० रुपये माहवार से बढ़ाकर ६०० रुपया कर दी.....शर्फ़ुद्दौला

१. बादशाह का कम्पनी को उत्तर।

ग़ुलामरज़ा का भी यही हाल रहा। स्लीमन ने उसकी बड़ी शिकायतें बादशाह को लिखीं। बनारस के कमिश्नर टक्कर को भी उसके बारे में शिकायती पत्र लिखे। पर जब बादशाह ने उसे अपने यहां से हटा दिया तो रेसिडेन्सी में अच्छी खासी जगह मिल गयी।"

इस सम्वन्ध में वहुत सी महत्वपूर्ण बातें हम आगे चलकर लिखेंगे। यहां हमको इतना बतलाना जरूरी है कि बादशाह का दरबार षड्यन्त्र तथा कुचक्रों का किस प्रकार अड्डा बनता गया। बादशाह बेचारे को अपने निजी विश्वासपात्र कर्मचारी रखना भी कठिन हो गया।

गद्दी पर बैठने के बाद वादशाह ने आलिम फ़ाज़िल कुतुबुद्दौला को अपना पेश-कार नियुक्त किया था। पेशकार का प्रभाव इतना बढ़ा कि "वज़ीर आज़म से ज़्यादा बढ़ गये और दिमाग़ बढ़ गया।"[१] बादशाह के ख़ास कर्मचारियों में उनके भतीजे नवाब मुख़द्दरेउज़मा तथा ख़्वाजासराओं में साबितुद्दौला और मुसाहबुद्दौला थे। मिर्ज़ा ज़ायर के कथनानुसार मुसाहबुद्दौला सबसे शरीफ़ और सुलझे हुए कर्म-चारी थे। ये सभी अहल्कार बादशाह के काम करने के ढंग, मिहनत तथा सख़्ती से काफ़ी डरे हुए थे। लेकिन बादशाह बहुत ही नेक और दरियादिल व्यक्ति थे।[२]

पर, बादशाह अपने अहल्कारों को भी न रख सके। २४ मई, १८५० को रेसिडेन्ट स्लीमन बादशाह से मिलने आये। उनके साथ मेजर बर्ड भी थे। उनके जाने के बाद बादशाह को अपने इन सभी नौकरों को सिकचावाला अस्तबल[३] में क़ैद कर देना पड़ा। ४ जून १८५० को इनको शहर निकाला हुआ और कानपुर रवाना कर दिये गये। दो दिन पहले एलान कर दिया गया था कि जिसका क़र्ज़ उन पर बाक़ी हो आकर ख़बर करे तो वसूल करा दिया जाय।[४]

ऐसी बातों से दरबार की नैतिकता ही समाप्त हो गयी। चारों ओर षड्-यन्त्र ही षड्यन्त्र होने लगा। जो जब मौका पाता, अपने को आगे बढ़ाने या मालामाल करने की फ़िराक़ में था। बेगमें भी दरबारी साज़िशों में काफ़ी हिस्सा लेती थीं। बहुत सी बेगमों को रेसिडेन्सी से पेंशनें मिलती थीं। पिछले नवाबों या बादशाहों ने कम्पनी को कर्ज़ दिये थे। उसके सूद को पेंशनों के रूप में तय कर दिया था।

१. सलातीने अवध २. वही। ३. यह स्थान वर्त्तमान ज़िला जज की अदा-लत के पास है। सन् १८६२ से १८९५ के लगभग इसमें मुंसिफी कचहरी थी। ४. सलातीने अवध, अध्याय ३५ ।

ये बेगमें कम्पनी की हिमायती बन गयी थीं और बादशाह का विरोध करती रहती थीं।[१]

पुराने पेशकार जब हटाये गये तो बादशाह बिठूर के रहने वाले इफ्तखारुद्दौला महाराजा मेवाराम को यह स्थान देना चाहते थे। पर रेसिडेन्ट ने उन्हें ऐसा योग्य पेशकार नहीं रखने दिया। तब बादशाह ने राजा कुन्दनलाल मीर मुंशी के नाम की तजवीज़ की। वह भी स्वीकार न हुआ। आखिर रेसिडेन्ट ने कप्तान हाली की सिफ़ारिश पर मुहम्मद खां का नाम मंजूर कराया। मुहम्मद ख़ां नवाब मुनीरुद्दौला के पेशकार थे और हाली का समर्थन ख़रीदने में समर्थ हुए थे। इस तरह १८ नवम्बर, १८४७ को उन्हें दीवान बनाना पड़ा। बादशाह जब अपने मन का कर्मचारी भी नहीं रख सकते थे तो हुकूमत कैसे करते।

रेसिडेन्ट के तरफ से मीर सय्यदअली के बेटे मीर कतवे हुसेन को हुक्म दिया गया कि वे महलों में जहां चाहें जाया करें और वहां की ख़बरें रेसिडेन्ट को दिया करें। इसी काम के लिए एक दारोग़ा भी तैनात हुआ। बस, महलात में तहलका मच गया। बड़ी बेचैनी छा गयी। लोग बहुत डर गये। अंग्रेज़ों का दिमाग़ इतना बढ़ा हुआ था कि बाद में बादशाह का बहुत पक्ष लेने वाले सहायक रेसिडेन्ट मेजर बर्ड भी अपना हमला करने से न चूके। स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण कुछ दिनों के लिए वे मंडियाहू की छावनी में रहने लगे थे। वहीं पास में राजा जियालाल का बाग़ था। उसमें सैर करने के लिए एक दिन बेगम इज़्ज़त महल आयीं। बशीरुद्दौला नाज़िम सिपाही सड़क का इन्तजाम कर रहे थे। उसी वक़्त रेसिडेन्सी के अख़बार-नवीस लालजी हाथी पर सवार होकर मेजर बर्ड को ख़बरें सुनाने जा रहे थे। उनका रोज़ का यह काम था। सिपाही ने हाथी रोक दिया। लालजी को पैदल जाना पड़ा। बर्ड ने यह इतना बड़ा अपमान समझा कि लालजी की बेइज़्ज़ती करने के अपराध में बशीरुद्दौला सिपाही को १००० रुपया जुर्माना लालजी को देना पड़ा।

इन छोटी-छोटी बातों का काफ़ी असर पड़ता था और दरबार में हर प्रकार की साजिशें चलने लगी थीं। मिर्ज़ा अहमद ख़ां उर्फ मिर्ज़ा हादी—नासिख़ अली के बेटे—बादशाह के सामने हमेशा हाज़िर रहते थे। इन्होंने अपनी दरबारदारी से

१. इन बिधवा बेगमों को रेसिडेन्सी ख़ज़ाने से, बादशाह की तरफ से ही रुपया आता था। इनका नाम था—मुबारक महल, विलायती महल, मुमताज महल, सरफराज महल, ताज महल, नवाब मल्का जहां, इत्यादि।

फ़ायदा उठाकर सुलतानपुर, बैसवाड़ा व सलोन की नज़ामत अपने बड़े बेटे व भाइयों के लिए प्राप्त की। नज़ामत में इनके रिश्तेदारों ने कर्ज़ दिया जिसे मिर्ज़ा को अपने पास से चुकाना पड़ा। इनकी वज़ीर नक़ी खां से पटरी नहीं बैठती थी। इन्हीं दिनों शेख मुहम्मद नासिख़ शायर भी बादशाह के दरबार में हाज़िर रहते थे। उनसे भी मिर्ज़ा से पटरी नहीं बैठती थी। नासिख़ को बादशाह इतना मानते थे कि उनको इज़ाज़त थी कि वे चाहें तो दरबारी पोशाक में न भी आया करें।

मिर्ज़ा ने वज़ीर का क़त्ल कराने के लिए एक सिपाही तैयार किया। नंगी तलवार लेकर वह सिपाही बारादरी में खड़ा था कि वज़ीर के आते ही उनका गला काट दे। पर, वज़ीर पर तलवार चलाने के पहले ही अन्य दरबारियों ने उसे मार डाला। मरने के पहले वह चिल्ला उठा—"मुझे दग़ा दिया गया" और मर गया। सुबह हाथी के पैर से बांध कर उसकी लाश शहर में घुमायी गयी। वज़ीर की ओर से एक नक़ली दस्तावेज़ बनाया गया कि मिर्ज़ा मीर हादी ने मारने की साज़िश की थी। मिर्जा के यहां मीर ग़ुलाम अली रहा करते थे। वे बेचारे पकड़े गये और अहाता राजा दर्शनसिंह में क़ैद किये गये और क़ैद में ही मर गये। पर मिर्ज़ा के ख़िलाफ़ बादशाह ने कोई कार्रवाई न की। आख़िर वज़ीर ने इनको घर से जबर्दस्ती निकलवाकर राजा बख़्तावरसिंह की सहायता से लखनऊ के बाहर करा दिया। मिर्ज़ा कानपुर चले आये और परेड पर एक बंगला लेकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद बादशाह ने उनको लखनऊ बुलवा लिया और उनकी २०० रुपये माहवार पेंशन कर दी थी। लखनऊ की हालत देखकर मिर्ज़ा को बड़ा अफसोस होता था। इस पर उनके बड़े भाई उनसे कहते थे कि "तुमको क्या, बिगड़ता है तो बिगड़ने दो।" मिर्ज़ा कहते कि "नहीं, जिस घर की बदौलत हमारा घर बना, उसे कैसे बिगड़ने दें।"[१]

रोशनुद्दौला जब नवाब हुए तो मिर्जा बड़े खुश हुए। समझा कि एक क़ाबिल आदमी आया। वे नवाब से मिलने गये तो नवाब ने रुख़ नहीं मिलाया। इससे मिर्जा को बड़ा सदमा पहुंचा और कानपुर, रामपुर वगैरह का चक्कर लगाने के बाद मरे लखनऊ में ही। उधर शायर नासिख़ का भी ज़माना बिगड़ चुका था। एक दिन उन्हें बुलाने सिपाही गया तो भाग कर आग़ा तवक्कुल के यहां छिप गये। आग़ा असद ने उनको वज़ीर से मिलाकर माफ़ करा दिया। दरबार का जाना

१. सलातीने अवध।

बन्द हुआ। वज़ीर से १०० रुपया माहवार पेंशन मिलने लगी। दरबारी साज़िशें इसी प्रकार चलती रहीं। एक लौंडी की शिकायत पर बेचारे शौक़तुद्दौला १५ मार्च,१८५० को काम से हटा दिये गये।

बादशाहों के सिधापे का फ़ायदा कैसे उठाया जाता था, इसकी एक अच्छी कहानी कर्नल स्लीमन ने अपनी डायरी में दी है। २ फरवरी, १८५० को मोहम्मदी ज़िले का ज़िक्र करते हुए वे लिखते हैं :—

"३० साल में इस ज़िले में १७ हाकिम रह चुके जिनमें से १५ "इजारा" यानी ठीके पर वसूली करते थे। नवाब सआदतअली खां को, जो १८१४ में मरे, यह जगह बहुत पसन्द थी। उन्होंने यहां एक अच्छा बाग़ लगाया और बंगला बनवाया। यहां के प्रबंधक को बाग़ वग़ैर: के प्रबंध तथा मवेशियों के खर्च के लिए ६०,००० रुपया सालाना मिलता था हालांकि इस वक़्त सिर्फ़ दो माली और दो बैल यहां हैं। ३० साल से प्रबंधक को ६०,००० रुपया सालाना मिलता जा रहा था। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल से वाजिदअली शाह ने इस रुपये को बन्द कर दिया है।

मुहम्मदअली शाह जब गद्दी पर बैठे तो उनको हिमालय का एक कुत्ता मिला। उसे एक दरबारी के पास रखवा दिया। उसका खर्च एक रुपया रोज़ बांध दिया। एक दिन बादशाह ने शिकायत की कि कुत्ते के भूंकने से उनकी नींद खुल जाती है। तुरत एक दरबारी बोल उठा कि यदि सेर भर गुलक़न्द और एक बोतल गुलाबजल उसे रोज़ दिया जाय तो न भूंके। हुक्म हो गया। कुत्ता शायद हटा दिया गया होगा। सन् १८१६ में कुत्ता मर गया पर सन् १८३७ में, नासिरुद्दीन हैदर के समय तक उसके नाम पर सेर भर गुलक़न्द और एक बोतल गुलाबजल मिलता रहा।"[1]

स्लीमन ने एक और दिलचस्प बात लिखी है।[2] वे लिखते हैं कि बादशाह वाजिदअली शाह सितम्बर, १८५० में अपनी माता मल्का किश्वर की एक बांदी पर रीझ गये और उससे विवाह करना चाहते थे। यह बांदी मल्का के साथ सोती थी। वे उसे देना नहीं चाहती थीं। उन्होंने एक बहाना ढूंढ़ निकाला। बादशाह से कहा कि वह औरत "सांपू" है। यानी उसके केश के पीछे, गले की तरफ़ सांप ऐसा गोलाकार केश है। प्रायः सभी केश-माला को ऐसा कहा जा सकता है।

१. स्लीमन की डायरी, भाग २, पृष्ठ ८०-८१

२. वही भाग, १, पृष्ठ १०८-१०९

पर मल्का ने इस ढंग से कहा कि वह अजीब चीज़ मालूम हुई। उन्होंने कहा कि सांपू स्त्री के साथ संसर्ग करने से परिवार नष्ट हो जाता है। बादशाह डर गये। उनको ख़्याल आया कि मुमकिन है कि इसी कारण, सांपू बेगमों के साथ संसर्ग करने से, उनका स्वास्थ्य खराब हो गया हो। मल्का किश्वर ने ऐसे संदेह की ताईद की। बेगम ख़ास महल को छोड़कर हर बेगम की जांच हुई। ऐसी सर्पाकार निशानी निशात महल, खुर्शीद महल, सुलेमान महल, हज़रत महल, दारा बेगम, बड़ी बेगम, छोटी बैगम और हज़रत बेगम में मिली। बादशाह ने इन सब बेगमों को तलाक़ देने की इच्छा प्रकट की और हुक्म दिया कि वे अपना सामान लेकर चली जायं। कुछ लोगों ने बादशाह को सलाह दी कि हिन्दू पंडितों से भी तो पूछिए। पंडितों ने फ़तवा दिया कि सर्पाकार स्थान को गर्म लोहे से दाग देने से दोष जाता रहेगा। छः बेगमें इस यातना के लिए राज़ी न हुईं। बड़ी और छोटी बेगम राज़ी हो गयीं। गर्म लोहा से दागने वाले को कुछ दे दिला दिया, तमाशा हो गया। जब यह बात समझ में आयी तो और बेगमों ने भी नाटक कर लिया। बहरहाल, मलका किश्वर की बांदी बच गयी।

स्लीमन ने "आर्यल जिन्नात" का ज़िक्र किया है। सादिक़ अली यह स्वांग करता था और जब दिल की बीमारी से बादशाह मुफ़्तीगंज में रहते थे, उन्होंने इसका भेद स्वयं पकड़ा था। २ दिसम्बर, १८५० को बादशाह वाजिदअली ने सादिक़ को गिरफ़्तार किया। बादशाह को यह राज़ उमरा बेगम ने बतलाया था। बादशाह को यह धूर्तता ऐसी पसंद आयी कि जब उन्हें पता चला कि उनकी एक बेगम सरफ़राज़ महल उनके मुख्य गवैया रज़ीउद्दौला से अनुचित सम्बंध रखती है तो उन्होंने सआदत अली खां के मक़बरे में, जहां सब गवैये रहते थे, यही स्वांग रचकर रज़ीउद्दौला को क़ैद किया था। रज़ीउद्दौला की बहन उम्मन का एक शेख निसार अली से सम्बन्ध था। सरफ़राज महल तलाक़ देकर मक्का भेज दी गयी। वहां से वापस आकर वह गुलामरज़ा के पास रहने लगी थीं। फिर पकड़ी गयीं। रज़ीउद्दौला और क़ुतुब को लखनऊ में रहने दिया गया पर बादशाह के सामने आने की मनाही कर दी गयी।

सादिक अली "जिन" की करामात के बारे में फ़सानये इबरत में लिखा है :—

"बादशाह अमजदअली शाह के वक़्त में एक औरत उस्तानी मशहूर थी। उसकी उम्र काफ़ी थी पर महल में उसकी बड़ी चलती थी। उससे मिलकर एक साहब मीर आबिद अली ने, जो मरसिया कहा करते थे, सादिक़ अली कश्मीरी को गांठा और उसे शाहेजिन बनाया। उस्तानी के ज़रिए बादशाह तक शाहेजिन

की ख़बर पहुंचायी गयी। उस्तानी ने जो कहा, बादशाह ने मान लिया। सादिक-अली ख्वाजासराओं से महलात के हाल रोज़ पूछ लिया करते थे और रात में शाहे-जिन बनकर बादशाह से कहते थे। बादशाह का विश्वास उस शाहेजिन पर बढ़ता ही गया। अमजदअली शाह की मृत्यु तक लोगों ने शाहेजिन के द्वारा खूब सुख भोगे। लेकिन वाजिदअली शाह के ज़माने में यह खेल बिगड़ गया। रज़ी-उद्दौला की बहन सरवर सुलतान का शेख निसार अली से सम्बंध था। बादशाह की तबियत खराब हुई। पंडित भोलानाथ कश्मीरी शेख निसार अली के पास आते-जाते थे। शेख ने पंडितजी को बादशाह तक पहुँचा दिया। बातचीत से बादशाह बहुत खुश हुए। उन्हें खिलअत वगैरः देना चाहते थे पर पंडितजी न स्वीकार नहीं किया। इससे बादशाह और भी प्रभावित हुए। बादशाह ने उन्हें एक सन्दूकचा इत्र का दिया। वज़ीर नक़ी ख़ां घबड़ाये कि यह नया आदमी कहां से आ गया। उन्होंने हकीम वन्दा रज़ा ख़ां से इस घटना को बतलाया। हकीम साहब आबिद-अली, मरतबा ख़ां और सादिक़ अली को जानते थे। उन्होंने वज़ीर से उनकी मुलाकात करा दी। मीर आबिद ने बादशाह के पेशकार कुतुबुद्दौला को विश्वास दिलाया कि पंडित भोलानाथ मक्कार व्यक्ति हैं। शाहेजिन ने भी इस बात की ताईद की। बादशाह की बीमारी में भी कोई अन्तर नहीं आया। वे पंडितजी से मिलना चाहते थे पर दरबारियों ने पंडितजी को उनके सामने आने ही नहीं दिया। बीमार बादशाह को एक मकान में अकेले रखा गया। उनकी शाहेजिन से मुलाकात करायी गयी। खूब रंग बंधा।

बस, यारों के हुक्म चालू होने लगे और हकीम बंदारजा ख़ां को १४ पारचा इनाम मिला। पर एक औरत अशफाकुल सुलतान ने शाहेजिन का पता लगा लिया और बादशाह से राज़ खोल दिया। बादशाह बहुत नाराज़ हुए। कुतुबुद्दौला से बुलाकर कहा कि इस साज़िश में जो लोग हैं, सबका नाम बतलाओ। पर, पेश-कार कुछ बोले नहीं।

२४ मई, १८५० को रज़ीउद्दौला क़ैद हो गये। उनके पास तथा दयानतुद्दौला और क़ैसुद्दौला के पास जो सिपाही थे, वे भी आठ दिन तक क़ैद में रहे। आठ दिन बाद सबको देश निकाला हो गया। शेख निसार अली भी गिरफ़्तार होकर फ़ैज़ाबाद भेजे गये।"

इस प्रकार, स्लीमन तथा मिर्ज़ा रज़बअली बेग के बयान में थोड़ा फ़र्क़ है। पर बात एक ही है। इस घटना से उस समय के शाही दरबार की वस्तुस्थिति का पता चलता है। बेगमातों के हथकण्डों की लम्बी कहानी देने का यहां स्थान नहीं

है; वरना अवध को तबाह करने में उनका कम हाथ नहीं रहा है। बेगमों के पास कितनी दौलत इकट्ठी हो जाती थी, इसका एक छोटा सा प्रमाण सलातीने अवध से लीजिए।

२० अगस्त, १८५१ को बादशाह अमजदअली की रखेल नवाब खास महल मर गयीं। नवाब शेरगंज के बाग़ में अपनी बेटी की क़ब्र के बगल में दफन हुईं। इनको २००० रुपया माहवार वसीका मिलता था। पर ८० लाख रुपये की सम्पत्ति छोड़कर मरी थीं।[१] इस जायदाद को कई साल में, अय्याशी में उनके भांजे ने उड़ा डाला। एक दूसरी बेगम नवाब खुर्द महल करबला जाकर मर गयीं। एक लाख रुपया वहां दान दे गयीं।

वाजिदअली शाह का निजी जीवन

बादशाह ने गद्दी पर बैठते ही बहुत जी लगाकर राजकाज संभाला था। अमीनुद्दौला के काम से हटते ही एकदम नयी नियुक्तियां की गयीं। प्रधान मन्त्री यानी वजीर सय्यदअली नक़ी खां नियुक्त हुए। उनको २९ पारचा खिलअत मिली। महाराजा बालकृष्ण को दीवान-दीवानी यानी न्याय का मुहक्मा मिला। राजा बिहारीलाल को खिदमत वासिलबाकी यानी माल का मुहक्मा दिया गया। नवाब हैदर हुसेन एहतमाम दीवाने आम यानी दरबार विभाग के प्रधान हुए। मीर युसुफअली को बिरादर निस्वती तथा खिदमत एहतमाम यानी घरेलू विभाग का दीवान बनाया गया। एहतमादुद्दौला, हुसेन खां वग़ैरह "खानानशीन" हुए यानी घर बैठे गये और इनकी पेंशनें हो गयीं। बादशाह के पास ख्वाजासरा बशीरुद्दौला, गुलबदनुद्दौला और दियानुतुद्दौला नियुक्त हुए। अस्सनुद्दौला और फ़ीरोज़ुद्दौला महलों की निगरानी पर तैनात हुए।[२] हाजी शरीफ़ को रिसाला तुर्क सवारान खास (बादशाह के अंगरक्षक) और कई बटालियन तिलंगा का सेनापति बनाया गया। नवाब सरफ़राज़ुद्दौला, मिर्ज़ा हसन रज़ा खां के भतीजे मुसलहिस्सुलतान की वेतन-वृद्धि की गयी। यह पद बादशाह के निजी सचिव का था। ये खूब जमकर काम करते थे। बादशाह के बड़े वफ़ादार कर्मचारी थे। उनकी "ख्वाहिशें पूरी करते थे।"[३] इसीसे रेसिडेन्ट उनसे नाराज़ रहने लगे। रेसिडेन्ट

१. सवानेह सलातीने अवध, भाग २—अध्याय ४२। २. वही, अध्याय ४
३. सलातीने अवध—अध्याय ५।

ने बादशाह को कई पत्र भेजे जिससे बादशाह के मन पर काफ़ी बोझ पड़ता। मुसलहिस्सुलतान ने उन पत्रों को बादशाह के सामने पेश नहीं किया। ये बादशाह का अपमान बचाना चाहते थे। १३ नवम्बर १८४७ को रेसिडेन्ट मेजर बर्ड के साथ बादशाह के यहां मिलने आये। जब उन्होंने पत्रों का उत्तर मांगा तब यह राज़ खुला। बादशाह अपने सचिव से बहुत अप्रसन्न हुए और उन्हें अपने सामने आने से मना कर दिया। रेसिडेन्ट ने भी उनके द्वारा खत भेजना बन्द कर दिया। फिर भी मुसलहिस्सुलतान काम पर आते रहे। यह पद बड़े महत्व का था।

बादशाह के सामने अपना पत्र पेश न होने की शिकायत कर्नल स्लीमन ने भी अपनी डायरी में की है। वे लिखते हैं:—(२२ दिसम्बर, १८४९ को आठ महीने आगे की यह घटना कैसे लिखी गयी; इसका अर्थ तो यही है कि डायरी के पन्ने बाद में भरे गये हैं) १७ अक्टूबर, १८५० को अपने खवास हुसेन खां से नाराज़ होकर बादशाह ने उसके मकान की तलाशी करायी तो बहुत से पत्र मिले जो रेसिडेन्ट ने बादशाह को लिखे थे पर उन्हें दिये नहीं गये थे।[१]

इतना सब लिखने के बाद हम वाजिदअली शाह के तत्कालीन जीवन का थोड़ा अनुमान लगा सकते हैं। खुशामदी, निकम्मे तथा चाटुकार लोगों से घिरे रहने पर भी कुछ अच्छे, नेक तथा वफ़ादार प्रशासकों के द्वारा वे अपना राजकाज ठीक से संभाले चल रहे थे। पर राज्य की चिन्ता, अंग्रेज़ी सलतनत के हस्तक्षेप तथा दरबार की साज़िशों ने उनको तबाह कर डाला। अंग्रेज़ों ने युवक बादशाह की तत्परता देखकर उनके प्रमुख हकीम को घूस देकर राजमाता मल्का किश्वर के मन में शंका उत्पन्न करा दी कि परिश्रम करने से बादशाह का स्वास्थ्य खराब हो जावेगा। मां को अपना बेटा बड़ा प्यारा होता है। वे हकीम के चकमे में आ गयीं और उन्होंने बादशाह का रोज़ तड़के सुबह दो घंटे पल्टन को क़वायद कराना या दफ़्तर में बैठकर कई घंटे काम करना बन्द करवा दिया। यही नहीं, हकीम की सलाह से बादशाह का जी बहलाने के लिए नाच गाना यह सब भी बहुत बढ़ा दिया गया। चेष्टा की गयी कि शराब भी पीने लगें पर अपने चरित्र की प्रारम्भिक दृढ़ता के कारण बादशाह का उतना पतन न हो सका, जितनी की आशा करनी चाहिए।

१. स्लीमन की डायरी, भाग १।

राजकाज उन्होंने जारी रखा। पर, पहले जितना समय वे न दे पाते थे। नाच-गाने का शौक़ उनको अवश्य था। स्वयं दो घंटे रोज़ इल्मेमसीकी (संगीत-कला) का अभ्यास करते थे। उनके समय में अवध में संगीत कला ने काफ़ी उन्नति की थी। बादशाह के गवैये रज़ीउद्दौला वग़ैरह बड़े उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। प्रसिद्ध मृदंगाचार्य कोदईसिंह दरबार में प्रश्रय पाते थे। मुन्नाबाई ऐसी प्रसिद्ध संगीतज्ञ वेश्या इनसे काफ़ी पुरस्कार पाती थीं।[1] उस ज़माने में मुहम्मद खां क़व्वाल का बड़ा नाम था। वे उतने ही मशहूर थे जितना उन दिनों महमूद नामक नानबाई, जिसकी दूकान से रोटी मंगाना नवाबों के लिए फ़ैशन था।

अपने नाच गाने के शौक में बादशाह ने रासलीला, नाटक इत्यादि भी पुनः जागृत किया। "रहस" की बड़ी धूम थी। बादशाह "इन्द्रसभा" नाटक के रचयिता भी थे और स्वयं इन्द्र का अभिनय करते थे। रास खेलने में माहरुफ़ परी कन्हैया बनती थीं और सुलतान परी राधा। इशरत परी, दिलरुबापरी, पासमन परी वग़ैरह १५० औरतें रासलीला या इन्द्रसभा में भाग लेती थीं। नाटक या रासलीला में भाग लेने वाली वेतनभोगी स्त्रियों को "परी" की उपाधि मिली थी। नौ परियों को "नवाब" की उपाधि मिली थी। हर परी की खिदमत में चार खवासें थीं। बादशाह कलाकारों का बड़ा आदर करते थे। और हाथ खोलकर उनको दान देते थे। उनकी सहायता करते थे। यदि वे बड़ी तपस्या के साथ मुहर्रम मनाते थे तो होली तथा दिवाली या दशहरा का त्यौहार उतने ही धूम से मनाते थे जितना कि हिन्दू। यही नहीं, बादशाह के स्वयं त्यौहार मनाने के कारण होली-दशहरा हिन्दू-मुसलिम दोनों का बराबर त्यौहार हो गया था। इससे साम्प्रदायिक भावना भी दूर हो गयी थी और हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा एका हो गया था। यह चीज अंग्रेजों को बहुत खटकती थी। स्लीमन ने इसकी बड़े भद्दे ढंग से शिकायत की है[2]।

२८ अक्टूबर, १८५२ को सर जेम्स वेयर हॉग के नाम स्लीमन ने अपने पत्र में लिखा था—"वह (बादशाह) अपने को सबसे अच्छा बादशाह और सबसे अच्छा शायर समझता है।" २ जनवरी, १८५६ को उसी सर जेम्स को उन्होंने लिखा कि—"मुहर्रम के अवसर पर, कई बार अपने गले में ढोल बांध कर घूमता

१. मि० ब्रैंडन के कथनानुसार इस वेश्या का स्लीमन से अनुचित सम्बंध था और उनको राज्य के भेद दिया करती थी।

२. स्लीमन की डायरी—भाग २।

फिरता था. . .वह लखनऊ का सबसे बड़ा ढोलकिया बनना चाहता है।" अपने कई पत्रों में उन्होंने बादशाह के गाने-बजाने के शौक की बराबर निन्दा की है और लिखा है "उसे हींजड़े (ख्वाजासरा) और गवैये घेरे रहते हैं।"

यदि उस समय के कई ग्रन्थों[1] को पढ़ा जाय तो पता चलेगा कि गाने-बजाने नाचने की ओर बादशाह की रुचि अधिक होने की ज़िम्मेदारी उनकी नहीं थी। उन दिनों के नरेशों में संगीत तथा कला के प्रति प्रेम था। अतएव वह कोई दूषण नहीं था। वास्तव में उनके कारण कला जीवित थी। वाजिदअली शाह उच्च श्रेणी के कलाकार थे। उनकी बनायी ठुमरियां लय तथा ताल की दृष्टि से बेजोड़ हैं। पर, इन व्यसनों में उनका अधिक समय इसलिए जाता था कि राजकाज करने नहीं पाते थे। हकीमों ने उनको बीमार तथा दिल का बीमार घोषित कर दिया। उनके मन पर बीमारी की इतनी छाप पड़ गयी, ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुआ कि बादशाह स्वयं अपने को बीमार समझने लगे थे। उन्होंने लिखा है :—

एक मरज़ जाता रहा तो दूसरा पैदा हुआ।
क़ल्ब के हिलने का मुझको आरज़ा पैदा हुआ॥

इसलिए जी बहलाने की आवश्यकता हुई। दरबारियों ने साज़िश करके उनमें अधिकता की और फिर जब अंग्रेज़ों ने राजकाज में अत्यधिक हस्तक्षेप शुरू किया तो परेशानी को भुलाने के लिए यानी "ग़म ग़लत" करने के लिए बादशाह जी बहलाने की ओर बहुत झुके। पर उनकी धार्मिक भावना ने उन्हें कभी लम्पट नहीं बनने दिया। वे शराब छूते भी नहीं थे। शराब से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। यह एकदम ग़लत ख़्याल है कि बादशाह शराबी थे। किसी भी पुस्तक में इसका प्रमाण नहीं मिलता कि बादशाह शराबी थे। उमंग से जीवन बिताते थे। पर वह उमंग जवानी की थी। शराब या यौवन लाने वाली गोलियों के द्वारा नहीं। वह युग अय्याशी तथा "क़ूवत" की औषधियों के लिए भी प्रसिद्ध है। राजा, रईसों को इनका सेवन करने का बड़ा चस्का पड़ गया था। ऐसी औषधियों के सेवन से लोग मर भी जाते थे। रेसिडेन्सी के एक मीर मुंशी थे जिनका नाम मुंशी अली नक़ी ख़ां था। दो सौ रुपया वेतन पाते थे। पर ९ लाख रुपया छोड़ कर मरे थे। पर पाप का धन जैसे आया था, वैसे गया। बड़ा बेटा अय्याशी में मरा। दूसरा तपेदिक में, तीसरा बेटा समूची सम्पत्ति अय्याशी में लुटाकर भिखारी बन गया।

१. अफ़ज़लुत्तवारीख़ और तवारीख़े अवध।

रेसिडेन्सी के कर्मचारी कितना रुपया लूटते थे और उससे कैसी अय्याशी करते थे, इसकी मिसाल मुं० इलतफ़ात हुसेन खां हैं। वे रिकेट साहब के मुंशी मुकर्रर हुए। तनख्वाह २०० रुपया माहवार थी। बड़े चलते पुर्जे थे इसलिए रेसिडेंसी में बड़ी इज्ज़त थी। थोड़े दिनों में ही १६ लाख रुपया कमा लिया। बुढ़ापा आ गया था। एक कस्बी पर लट्टू हो गये। अय्याशी शुरू हुई। ताक़त की दवा खाना जरूरी था। कुश्ता खाया और उसी की गर्मी से मर गये।[1]

अतएव बादशाह के बारे में भी ऐसी धारणा रखना कि वे इन औषधियों का सेवन करते रहे होंगे, भूल होगी। बादशाह जी बहलाने के लिए तरह-तरह के उपाय करते थे। क़ैसरबाग़ में उन्होंने सालाना मेला लगाना शुरू किया। खूब क़व्वाली होती थी। आखरी मेला जुलाई, १८५५ में हुआ। क़व्वालियां सुन-सुन कर लोग खूब झूमते थे और फिर खूब "हाल" आता था। बादशाह अपने शौक़ की चीज़ों में दूसरों का हस्तक्षेप कितना नापसंद करते थे इसका उदाहरण इसीसे मिलता है कि सन् १८५५ में ग्वालियर नरेश महराजा जियाजीराव सिंधिया अयोध्या आये। रेसिडेन्ट स्लीमन उनकी हाज़िरी में थे। स्नान और दर्शन करके महाराजा लखनऊ आये और रेसिडेन्ट की कोठी में ठहरे। बादशाह से मिलने भी गये। रेसिडेन्ट उनको क़ैसरबाग दिखलाने ले गये—यह बात बादशाह को बहुत बुरी लगी। अपने साथियों से बोले कि "मेरा मकान तमाशागाह नहीं है।" पर रेसिडेन्ट से कुछ नहीं कहा। महाराजा सिंधिया कई दिन तक लखनऊ में ठहरे रहे पर बादशाह का वास्तविक सत्कार उनको न प्राप्त हो सका।

इस बात की अभी तक चर्चा है कि बादशाह की बहुत सी बेगमें थीं। कुछ लोग उनके बेगमों की संख्या ५०० से कम नहीं बतलाते। पर यह सब भी भ्रम है। 'सलातीने अवध' में बेगमों की तादाद साफ़ नहीं की गयी है। पर यह लिखा है कि बिना शिया ढंग से शादी किये (मुता किये) किसी स्त्री से बादशाह का सम्बंध नहीं हुआ था। उन्होंने एक भी स्त्री "ग़ैर ममतूआ" (बिना विवाह के) अपनी पत्नी नहीं बनाया। किसी हिन्दू स्त्री की ओर उन्होंने आंख उठाकर देखा तक नहीं। एक ईसाई सुन्दरी को मुसलमान बनाकर ही ग्रहण किया। इसकी मिसाल सुलतान मरियम हैं।

मरियम डा० बालवेज़ की लड़की थीं—एक आर्मीनियन महिला थीं। साल

१. सलातीने अवध, अध्याय ५८।

भर तक मरियम की माता अपनी सुन्दरी कन्या को लेकर बादशाह की सवारी निकलने के रास्ते में सड़क पर खड़ी रहती थीं और जब बादशाह उधर से निकलते, उनको सलाम करती थीं। आख़िर, एक दिन बादशाह की निगाह उधर उठी और उनको महल में आने की इजाज़त मिली। हुक्म हुआ कि तीन लाख रुपये के ज़ेवर पहनाकर सामने हाज़िर की जायँ। ५००० रुपया हाथ ख़र्च के लिए उसी वक़्त दिया गया। कई दिन बाद मरियम को बुलाकर २००० रुपया हाथ ख़र्च और दिया गया। कुछ दिन बाद वे मुसलमान धर्म में दाख़िल की गयीं और विवाह हो गया। नाम पड़ा सुलतान मरियम और माहवारी हाथ ख़र्च ५००० रुपया निश्चित हुआ। सवारी के लिए सुखपाल यानी मियाना मिला और रहने के लिए बारहदरी में स्थान मिला। नवाब मुबारक़ महल के पास ही। मरियम को तपेदिक़ की बीमारी हो गयी। दो वर्ष बीमार रहीं। इस कृतघ्न स्त्री ने रेसिडेन्ट स्लीमन को पत्र लिखा कि मैं पेट के लिए मुसलमान बनी थी । मैं ईसाई हूं, मरने के बाद मुझे ईसाई ढंग से दफ़नाया जाय। ७ अप्रैल १८४९ को मर गयीं। मरने के पहले आगा बाक़र खां के इमाम-बाड़ा में जाकर रहने लगी थीं। वसीयत में अपनी समूची सम्पत्ति जोजेफ़ शार्ट नामक व्यक्ति को लिख गयी थीं। इनके मरने पर रेसिडेन्ट ने इन्हें रोमन कैथोलिक ढंग से दफ़नाया । इनका मकान अपने सिपाहियों से घिरवा कर सब सम्पत्ति शार्ट को दिलवा दी। बादशाह कुछ न बोले।

ईसाई महिलाएं, जो मुसलिम धर्म अपना कर हरम में आ जाती थीं, उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता था। जब मरियम सुलताना की मृत्यु हुई और कृतघ्नता का समाचार बादशाह को मिल गया तब भी उनके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं हुआ। नवाब इमामुद्दीन खां की बेटी हज़रत मरियम मकानी उर्फ़ खत्तो बेगम २० अक्टूबर, १८५० को हैज़े से मर गयीं। मरने पर १३ लाख रुपया अपने नवासे को छोड़ गयी थीं। ६००० रुपया माहवार मुनाफ़ा (सूद) होता था। उदार बादशाह ने उनकी एक पाई नहीं ली। इसी प्रकार एक हिन्दू स्त्री तथा यूरोपियन पिता कर्नल ऐश से उत्पन्न लड़की बादशाह की पत्नी "मुबारक महल" भी मुसलमान बनकर हरम में आयी थीं। कुछ दिनों तक इनकी खूब चलती थी। पर इनकी चालचलन ख़राब थी। दरबार हकीम से इनका सम्बंध था। इसलिए प्रायः बीमारी का बहाना करती थीं और उसी हकीम की दवा से अच्छी होती थीं। ३० जून, १८४९ की रात में उन्होंने आम खाये, हैज़ा हुआ, मर गयीं। उनकी वसीयत भी रेसिडेन्सी के ख़जान्ची महेन्द्रनारायण के पास जमा थी । १०-१२ लाख रुपया छोड़कर मरी थीं। पर, बादशाह ने फिर भी कुछ नहीं कहा।

अस्तु, राजकाज में बहुत परेशानियां होने के कारण अपना जी बहलाने के लिए बादशाह ने कई दर्जन पत्नियां रख ली थीं। रोज़ शाम को क़ैसरबाग में सभी बेगमें साज-सिंगार कर एकत्र होती थीं। बातचीत करते, जी बहलाते, जिस किसी पत्नी पर तबीयत आ जाती, बादशाह उसका हाथ पकड़ कर बुर्ज के ऊपर चले जाते; पर, वे कभी रातभर किसी के पास नहीं रहते थे। रोज़ा नमाज़ के कट्टर पाबंद थे। दिन में कई बार नमाज़ पढ़ते थे। सुबह तड़के की नमाज में भी कभी नहीं चूकते थे।

जो बेगमात शाही ख़ानदान की होती थीं वे "साहेब महल" कहलाती थीं। अफ़जलुत्तवारीख के अनुसार "४७ साहेबाते महल थीं जिनमें ३२ बेगमें साहबे ख़िताब थीं और ४ ममतूअ थीं।" बेगम हज़रत महल का नाम सन सत्तावन की क्रान्ति में बहुत प्रसिद्ध हो गया है। पर बादशाह के पास आने के पहले इनका जीवन कैसा था, इस विषय में बहुत सी बातें कही जाती हैं। बादशाह इनसे विशेष प्रेम भी नहीं करते थे तथा इनकी गणना उन बेगमों में से थी, जिनके पास वे बहुत कम जाते थे। "तारीख़ मुमताज" में विद्वान लेखक ने लिखा है कि बेगमात की सही तादाद नहीं मालूम। बादशाह ने स्वयं ६०–७० की संख्या दी है[१]। 'हुज़्न अख़्तर' में पृष्ठ पांच पर बादशाह की लिखी ये पंक्तियां हैं[२]—

करूं साठ—सत्तर महल गर शुमार
तो हो जाय फिर यह क़लम आशकार।।

बादशाह को अपनी बेगमें इतनी पसन्द थीं कि उन्होंने अपनी शायरी में लिखा है—

ख़ुश अन्दाज़ नाज़ुक अदा ख़ुशनुमा
लबे सुर्ख़ बर्गे गुले गुलसितां।।
सदफ़ गौहरे साफ़ का है यहां।
जो दंदा तबस्सुम में दुर्रे अदन।।
वो रुये गुलेतर हैं रश्के चमन।

१. सलातीने अवध, अध्याय ५८।
२. हुज्ने अख़्तर—सम्पादक अब्दुल हलीम शरर, प्रकाशित १९२२ (हुज़्न = रंग, अख़्तर = बादशाह का कविता का उपनाम था)।

शिगूफ़ा खिला है लबे लाल का।
कहूं गेसू मुश्के खुतन है खता॥

\+ + +

न दुनियां से कर दिल में रंजो मेहन।
सुना क़िस्सये वेवफ़ाईये जन॥
सुना कुछ जनों की रुखाई का हाल।
खुद आराईयों[1] खुद नुमाई का हाल॥
वो माशूक़, वो दिलदार अख्तर महल।
वो जाफ़र वो क़ैसर सुने खुश अमल॥
ये सब मेरी हैं जौज़हाये हंसी।
नहीं शक़, नहीं शक़, नहीं शक़ नहीं॥
हैं इन सबमें दिलदारो जाफ़र का प्यार।
फ़िराक़ हुक्म मुझ पर निहायत है वार॥

\+ + +

हुए क़ुर्ब दिलदार को सोलह साल
वरस सात जाफ़र को ऐ जी कमाल॥
हुए रफ़्त क़ैसर को तेरह बरस।
न बाक़ी रही दिल की कोई हवस॥
कर अब क़ुर्बे अख्तर महल को शुमार
कि नौ साल से है मेरे पास यार॥
जो हैं मल्कये मुल्क की खुश विसाल
हुए उनकी उल्फ़त को अट्ठारह साल॥

हमने जानबूझ कर इन पंक्तियों को इस स्थान पर दिया है। पहली बात तो यह कि बादशाह ने साफ़ लिखा है कि चलो संसार की चिन्ता छोड़कर औरतों की बातें करें। दूसरे, उन्होंने अपनी सभी प्रिय बेगमों के नाम दे दिये हैं। इनमें बेगम हज़रत महल का नाम भी नहीं है। पहली बीवी, नवाब ख़ास महल को छोड़कर, वे अपने लिए सबसे ज्यादा वफ़ादार बीवी नवाब माशूक महल को समझते थे। दिलदार

१. अपने आपको संवारना

महल परीज़ाद इनकी ख़ास महबूब थीं। उनसे बड़ी मुहब्बत करते थे। तीसरा नम्बर, प्यार की दृष्टि से आशिकनुमा का था। चौथी जाने जां बेगम प्रायः बीमार रहा करती थीं। पांचवीं प्रेयसी मुमताज आलम थीं। छठीं क़ैसर बेगम थीं। कलकत्ता में कुछ दिनों तक बादशाह के पास रहने के बाद जब बादशाह जेल में थे, उनके ११,००० रुपये लेकर वे भाग निकलीं। नवाब माशूक़ महल को बादशाह इतना प्यार करते थे कि जब वे पदच्युत होकर कलकत्ता के लिए रवाना हुए तो उनकी गाड़ी के पीछे नवाब माशूक़ महल की गाड़ी थी। असली महरानी यानी बेगम ताहिरु अस्मत मआब (नवाब ख़ास महल) बाद में लखनऊ से रवाना हुई थीं।

बादशाह जब कलकत्ता के लिए रवाना हुए तो उन्होंने इजाज़त दे दी कि जो बेगमें चाहें वापस जा सकती हैं। उनको तलाक़ दे दिया जायगा। कुछ थोड़ी सी तलाक़ पाकर अलग हो गयीं और शेष लखनऊ में ही रह गयीं। इनमें से अधिकांश को बादशाह से प्रेम भी था या केवल उनसे रुपया लूटने की फ़िक्र, यह कहना बहुत कठिन है। इन बेगमों से बादशाह से जो ख़तोकिताबत हुई है, उससे पता यही चलता है कि उनको रुपया ऐंठने की धुन थी। मुमताज महल लखनऊ में रह गयी थीं। उनके साथ बादशाह का पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो गया है। ज़्यादातर पत्रों से बेगम ने "प्रेम का आंसू बहाकर" रुपये की मांग की है। बादशाह बिचारे भी किसी तरह इन बेगमों की फ़रमाइशें पूरी करते चलते थे पर स्वयं अपनी ग़रीबी के कारण कभी-कभी खीझ भी उठते थे।

कलकत्ता से १ फरवरी, १८५९ को मुमताज महल को बादशाह ने लिखा था :—

"पांच सौ रुपये की रसीद पायी। पांच सौ रुपये और भिजवाये हैं उसकी रसीद जल्दी भेजो; और तुम्हारी वालदा (माता) के लिए पांच सौ रुपये और इनायत हुए हैं। पचास रुपया माहवारी के हिसाब से तुम्हारी मां के लिए तीन सौ रुपये और भेज रहे हैं। ग़र्रा (दूज का चांद) रजब से जिलहिज्ज बकरीद तक मैं तुम्हारी वालदा को छः महीने की तनख़्वाह पचास रुपया माहवार के हिसाब से भेज चुका हूं। अब सात महीने तक कुछ न दूंगा। या तुम महीना महीना उन्हें देना या इकट्ठा हवाले करना....रसीदें जल्द भिजवा दो और ख़र्च इस ज़माने के मुवाफ़िक बहुत संभल-संभल कर उठाना। खबरदार इसराफ़ (फ़िज़ूलख़र्ची) न होवे।"

इस पत्र के काफ़ी पहले यानी २१ नवम्बर, १८५६ को उन्होंने कलकत्ता से लिखा था—बेगम मुमताज को :—

"मगर अब बिलफ़ेल लाट साहब बहादुर ख़लद अल्लाह मुल्कहू ने दो लाख रुपया इनायत फ़रमाया है। ५०० रुपया तुम्हारी पानखोरी के लिए कर्नल कोनिया मेजर साहब बहादुर दाम अल्लालहू (उनकी बुज़ुर्गी हमेशा बनी रहे) की मारफ़त पहुंचते हैं। तुम्हें लाज़िम है कि रसीद हमें जल्द भिजवाना।"

१० फरवरी, १८५९ को बादशाह लिखते हैं:—

"यह सब मिलाकर अगले पिछले २९५० रुपया तुमको भिजवा चुका हूं. . . बिलफ़ेल, अब एक अजीब सानिहा (घटना) गुज़रा कि दिल रोता है। नवाब दिलदार महल साहिबा ने इस महीने की तीसरी तारीख़ को दुनियां से रहलत की (स्वर्गवास), हमें छोड़ा। गिल्लाने बिहिश्ती से उल्फ़त की।"

१० मार्च, १८५९ को लिखते हैं:—

"कल की तारीख़ यह सुना कि वह जो दो लाख लाट साहब बहादुर से. . . . वह सबको दे दिलाकर उठ चुके। अब दुबारा रिपोर्ट इत्तलाई रवाना हुआ है। देखिए क्या जवाब आता है. . .तब तक दिहानीद (देना) लखनऊ की मुल्तवी हैं।"

२४ अप्रैल को ग़रीब बादशाह ने फिर प्रेयसी मुमताज को लिखा:—

"सुनो साहब, मुझसे फ़क़त तुम्हारी वालदा की इन दिनों खबर ली जावेगी और किसी अज़ीज़ की खबर नहीं ली जावेगी। और न आइन्दा तुम किसी के नाम से लिखना। जवाब साफ़ है। सिर्फ़ १००० रुपया ईदुलफ़ित्र (ईद) के जोड़े के वास्ते और भेजता हूं। सेहतुद्दौला बहादुर और मीर वाजिलअली के द्वारा हेंचिसन साहब की कचहरी से वसूल करो और रसीद भेजो।"

२१ मई, १९५९ को लिखते हैं—"५० कम ३००० रुपया आगे मैंने तुमको भेजे थे. . . .मसाएब जिन्दा बदस्तूर है और अब ख़र्च भी हो चुका है, इससे और भी फ़िक्र है।"

बेगम मुमताज के नाम इन थोड़े से पत्रों से[1] यह स्पष्ट है कि कलकत्ता में बादशाह को रुपए की बड़ी तकलीफ़ थी पर उनकी उदारता ज्यों की त्यों थी और बेगमें उसका

१. तारीख मुमताज—बेगम मुमताज के नाम बादशाह के इन पत्रों को "मुहब्बतनामा" कहा गया है। इसमें १ जुलाई, १८५६ से ५ सितम्बर, १८५९ तक के पत्र हैं। २१ नवम्बर १८५८ से १८५९ की ५ सितम्बर तक, ग्यारह महीने में बीस पत्र लिखे गये हैं। पत्रों की भाषा क़ाफ़ी क्लिष्ट उर्दू में है।

फायदा उठातीं थीं। हमने ऊपर पत्रों को सरल भाषा में दिया है और सरल करने पर भी जहां पत्र के मौलिक कठिन शब्द आ गये हैं, उनका अनुवाद कोष्टक में दे दिया है।

ऊपर की पंक्तियों से बादशाह का चरित्र बहुत कुछ स्पष्ट हो गया होगा। हुज़्ने अख़्तर[1] में—ग्रन्थ में जो मसनवियां हैं, उनसे भी बादशाह के चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस पुस्तक के सम्पादक मौलाना अब्दुल हलीम शरर अपने बचपन से ही बादशाह के पास कलकत्ता में मटियाबुर्ज़ में रहते थे। अतएव उनको निकट से देखने या जानने का इनके लिए अच्छा मौक़ा था। शरर के नाना मौलाना कमरुद्दीन बहैसियत सर-दफ्तर के बादशाह की रफ़ाक़त में लखनऊ से कलकत्ता गये थे। वहां से इंगलिस्तान गये। हज वग़ैरह करके वापस आये और बादशाह के पास मटियाबुर्ज़ में रहने लगे। इन्हीं के कारण ८ वर्ष की उम्र से ही मौलाना शरर मटियाबुर्ज़ में रहते थे। बादशाह के विषय में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसका सारांश निम्नलिखित है:—

"वे इत्तका व परेहज़गारी, ख़ुदातरसी और ख़ुदापरस्ती की मुजस्समा तसवीर थे....बेगमात....अक़्दे मुता के ज़रिए से हलाल कर ली गयी थीं....इससे ममतूआत की तादाद बढ़ती गयी...नौकरानियों से कोई ताल्लुक़ नहीं था... नौकरानियों की भी काफ़ी इज़्ज़त होती थी...भिश्तन तक को "नव्वाब आबरसा बेगम" का ख़िताब था। मेहतरानी को नवाब मुस्तफ़ा बेगम कहते थे... अच्छा गाना तौबा तुड़वा दिया करता था। ज्यादातर मर्द गवैये थे। बादशाह को दो ही शौक़ थे, शायरी और मूसीक़ी (संगीत विद्या)...अरबी बहुत कम जानते थे। मेज पर बैठ कर लिखने की आदत नहीं थी। पालथी मार कर भी नहीं लिख सकते थे। लेट जाते तो दम भर में दो चार बन्द की नसरें लिख डालते। बहुत ख़ुश ख़त (सुन्दर अक्षर) लिखते थे....जब सवारी पर चलते तो दो क़ातिब (लिखने

१. सन सत्तावन की क्रान्ति के दिनों में बादशाह कैद होकर फोर्ट विलियम में रहने लगे। वहीं पर उन्होंने अपनी जीवनी कविता में—मसनवियों में लिखी थी और उसका नाम 'हुज्न अख़्तर' रखा था। आज से ६६ वर्ष पूर्व १२६६ हिजरी में बादशाह ने इसे स्वयं छपाया भी था। इसी पुस्तक का सम्पादन मुहम्मद अब्दुलहलीम शरर ने किया है। शरर की जवानी ही नहीं, बचपन भी बादशाह के पास कलकत्ते में बीता था।

वाला) साथ दोनों तरफ़ चलते। दोनों को अलग-अलग चीज़ें लिखाते चलते थे। उन्होंने बहुत सी किताबें लिखी हैं। तुरत सोचते, तुरत लिखते।

"शायरी में कभी-कभी लग्ज़िश भी हो जाती थी पर उनमें लचक, एक खास अन्दाज़ होता था। कभी किसी से सलाह-मशविरा (इसलाह) नहीं लेते थे। सब शायर इनको ख़ुश करने के लिये उनको ही अपना "उस्ताद" बना लेते थे। जितने शायर दरबार में दाखिल किये जाते थे उनको बादशाह एक मुहर देते थे जिस पर लिखा रहता था "तलमीजुस्सुलतान" यानी "बादशाह के शागिर्द"। मीर अनीस मरहूम स्वर्गीय के साहबज़ादे को अपनी आंख से देखा कि मटियाबुर्ज[1] के एक मुअ-ज़्ज़िज़ रईस की मजलिस में अपनी शायरी पढ़ रहे थे। वहीं बादशाह आ गये। फ़रमाया कि "मैं ज़ाकिरों (मर्सिया पढ़ने वाले) की हैसियत से आया हूं।" अनीस के साहब ज़ादे ने अपना मर्सिया खत्म करते ही शागिर्द बनने की आरज़ू की। शागिर्दों में शामिल कर लिये गये . . .बादशाह जब कुछ पढ़ते तो दरबारी खूब दाद देते . . . तारीफ़ है कि बादशाह की शायरी में कोई भी मिसरा बहर से अलग नहीं है। अतु-कान्त नहीं है। बादशाह ने जो कुछ लिखा है सब उनका अपना है।"

आगे चलकर शरर साहब लिखते हैं कि :—

"बातचीत में भी बादशाह ख़िलाफ़ मुहावरा लफ़्ज़ नहीं निकालते थे। बादशाह और उनकी महलात के बीच जो खतोकिताबत होती उसे "तवद्दुरनामा" कहते थे। ऐसे खत रंगीन व पुरफ़्शां काग़ज़ पर होते . . .वह ज़खीरा अब खत्म हो चुका है।"

बादशाह की शायरी का ज़िक्र हम आगे चलकर करेंगे। यहां हम उनकी बेगमात का परिचय समाप्त करदें। शरर के बयान से बादशाह की उदारता, प्रतिभा तथा सच्चरित्रता—तीनों का परिचय मिलता है। चूंकि उनके समय में भिश्तन व मेहतरानी भी "नवाब-महल" थी इसलिए लोगों को भ्रम होता है कि वे दुश्चरित्र थे तथा सैकड़ों स्त्रियां रखे हुए थे। बादशाह को नाच गाने का शौकीन या स्लीमन के शब्दों "सबसे अच्छा कवि बनने का दावा" की शिकायत तो इतिहासकारों ने की है पर "बदचलन" या "बदचलन अय्याशी में डूबा हुआ" कहने का साहस किसी को नहीं हुआ। हां, "फ़सानए इब्रत" में रज़्ज़बअली बेग ने अवश्य लिखा है :—

१. मटियाबुर्ज उपनाम मोचीखोला कलकत्ता का प्रसिद्ध मुहल्ला था। वाइस-राय लार्ड डफ़रिन ने उसे गिरवाकर नये सिरे से आबाद कराया।

"बादशाह सलामत ऐशोइशरत में पड़ गये...राज का काम सय्यद अली नकी ख़ां ने सम्भाला...जो चालाक अफ़सर थे उन्होंने अवसर अच्छा देखकर अपना घर दौलत से भर लिया....शहर वीरान हो गये....प्रजा परीशान हो गयी ..बेखबरी और गफ़लत के कारण अंग्रेज़ों को अच्छा मौक़ा मिला।"[1]

बादशाह रातदिन विलासिता में डूबे रहते तो १७०० अहले क़लम (क्लर्क)[2] ५०० तबीब-हकीम (चिकित्सक) १५०० चोबदार आदि निजी कर्मचारियों की आवश्यकता उन्हें अपने कार्यों के लिए न होती। बादशाह की निजी सेवा में इतने कर्मचारी नहीं लगे रहते थे। उनके "महलों" की संख्या (पत्नियों) मौलाना शरर के अनुसार ७० थी।

उनकी विलासिता का प्रधान कारण था उनकी राजनैतिक परेशानियां और निराशाएं। वे स्वयं लिखते हैं:—

अजब हूं मैं एक शायरे खस्ता हाल।
सिवाए मुहब्बत के नहीं कुछ ख़याल॥
इधर की हो दुनिया उधर ग़म नहीं।
क़यामत जभी है कि जब हम नहीं॥

बादशाह की वास्तविक विलासिता कलकत्ता में प्रारम्भ हुई। उनके साथ जो बेगमें कलकत्ता गयी थीं, उनके नाम निम्नलिखित हैं:—

ख़ास महल, माशूक महल, दिलदार महल, आशिक़ सुलतान महल, मुमताज महल, अख्तर महल, क़ैसर बेगम, खुजिस्ता महल और जाफ़री बेगम। मुमताज तो वापस आ गयीं। बादशाह जब क़ैद में थे खुजिस्ता और क़ैसर बेगम भाग गयी थीं। इसका बादशाह को बड़ा सदमा था। पर जो बेगमें वहाँ थीं, बादशाह उनके प्रेम में दीवाने रहते थे। मौलाना शरर लिखते हैं कि:—"बादशाह औरतों के इश्क में दीवाने रहते थे। क़ैदखाने से "यादगार मुहब्बत" मंगाते थे। जो बेगमें फ़र्माईशें पूरी करती थीं, उनसे खुश हो जाते थे। कुछ बेगमें शोख़ अदायी से मंगायी गयी यादगार नहीं भेजती थीं तो बादशाह शिकायत लिख भेजते थे। दिलदार महल से मिस्सी मंगायी। उन्होंने भेज दी। अख्तर महल से उनकी ज़ुल्फ़ों से

१. फ़सानये-इब्रत।
२. अब्दुल हलीम शरर के कथनानुसार।

कुछ केश मंगाये। उन्होंने दिया। उसे सरहाने डिबिया में रख कर सोते थे और सूंघते थे। जाफ़री बेगम बड़ी शोख़ थीं। उसकी दुलाई, डुपट्टा और कई चीज़ें मंगायीं। दुलाई और डुपट्टा तो भेज दिया। बाक़ी चीज़ें नहीं भेजीं। बादशाह का नौकर बाकरअली दुलाई और डुपट्टा उड़ा कर भाग गया। बादशाह बहुत परेशान हो गये।"

कलकत्ता जाकर, घोर निराशा तथा पीड़ा के कारण वे विलासिता में बहुत नीचे उतर आये थे। स्वयं उनकी मसनवी से मालूम होता है कि जाफ़री बेगम से उसके मुंह का कचला हुआ पान अपने लिए मंगाया था। देखिए—

तबीयत बहुत मेरी घबड़ायी जब।
किया पाय क़ैसर का छल्ला तलब॥
करे नाख़ुने दस्त माशूक़ से।
तलब ये किया दिल के सन्दूक से॥
कहा जाफ़री से कि ऐ ख़ुश जमाल।
मुझे चाहिए तेरे मुंह का उगाल॥
आगे भी भेजा था तूने उगाल।
और मंगाकर मेरा ख़ुश हुई थी कमाल॥
इस अख्तर का तू खा चुकी है उगाल।
न कर भेजने में तू अब कीलोकाल॥

अस्तु, बादशाह का घोर विलासी हो जाना जितनी ही खेद की बात है उतनी ही ज़िम्मेदारी इसकी अंग्रेजों पर है। बादशाह शौकीन आदमी थे और उन्होंने साफ़-सुथरी तबीयत पायी थी। उनके स्वभाव के विषय में एक लेखक ने लिखा है:—[1]

"बादशाह इतने सज्जन थे कि कभी नौकरों के लिए भी उनके मुख से अपशब्द नहीं निकला। उनमें बादशाहत का घमंड छू तक नहीं गया था। नमाज़ के समय तथा कुरान शरीफ़ पाठ के समय वे सदैव ठीक समय पर उपस्थित रहते थे। प्रजा का उनको इतना ध्यान रहता था कि "मशग़लए नौशेरवानी" (शिकायती पत्रों का बक्स) स्वयं अपने से खोलते थे। खुद हुक्म लिखते थे। रोज़ पल्टन को क़वायद

१. गुलदस्तये-अवध—ले० मुं० बुलाकीदास वल्द मुं० जुगनलाल, म्योर प्रेस, दिल्ली से प्रकाशित।

स्वयं कराते थे। सेना के अच्छे कर्मचारियों को काफ़ी इनाम दिया करते थे। उनकी दो खास भूलें थीं—एक तो वजीर अमीनुद्दौला को काम से हटा देना और दूसरा, अय्याशी में पड़ जाना।"

लेखक ने एक भूल और बतलायी है—

"अमीरअली को शहीद बनाना।" इसके सम्बन्ध में हम आगे चलकर लिखेंगे। उनकी बोलचाल में शराफ़त के बारे में मौलाना शरर लिखते हैं कि "उनकी बातचीत में खिलाफ़ मुहाबरा लफ़्ज़ नहीं निकल सकता था।"

बादशाह के सौजन्य के विषय में उनके कट्टर शत्रु स्लीमन भी अपनी क़लम न रोक सके।[1] १२ जनवरी, १८५० को सर जेम्स वेयर हॉग[2] को उन्होंने लिखा था—"बादशाह न तो अत्याचारी है और न बेरहम।" १ जनवरी, १८५४ को कर्नल लो[3] को स्लीमन ने लिखा था—"अवध की गद्दी पर दिल का इतना अच्छा और कटुता-रहित और कोई नहीं बैठा।"

इसी बादशाह—ऐसे बादशाह—इतने उदार व्यक्ति को गद्दी से उतार कर अवध का राज्य छीनने के लिए बहाना ढूंढ़ते-ढूंढ़ते स्लीमन ने उनके विरुद्ध कई गंदे आक्षेप किये हैं। सर जेम्स वेयर हॉग को ४ अप्रैल, १८५८ को उन्होंने लिखा :—

"अपने कर्त्तव्यों से इतना पराङमुख नरेश...जैसा कि यह बादशाह है, मैंने कभी नहीं देखा। न तो मैंने देखा है ऐसे निकम्मे मन्त्री तथा कर्मचारी जैसा इसने नियुक्त किया है।"

५ मार्च, १८५४ को कर्नल लो को स्लीमन ने लिखा था—"अपनी अत्यधिक अय्याशी के कारण बादशाह की बुद्धि पांच वर्ष के बच्चे से भी ज़्यादा खराब हो गयी है। जिसका मस्तिष्क इतना विकृत हो गया हो, उससे बात करने में भी कष्ट होता है।"

आगे चलकर हम यह सिद्ध करेंगे कि ये अभियोग कितने निस्सार थे। जब बादशाह की बीमारी का नाटक ज़्यादा दिन न चल सका तो कुछ और बातें सोचनी ही थीं। स्लीमन ने अपना पदभार सम्हालने के बाद ही बादशाह की बीमारी का प्रचार शुरू किया। उनकी तबीयत बीच में खराब हो जाती थी, यह तत्कालीन

१. स्लीमन की डायरी, भाग २।

२. ये ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड ऑव डायरेक्टर्स के उपाध्यक्ष थे।

३. राजस्थान में कम्पनी के राजदूत।

कई लेखक भी लिखते हैं। पर, जिस रूप में उनकी बीमारी लन्दन के सामने रखी जा रही थी, उसमें कितना झूठ था, इसका ज़िक्र बादशाह ने स्वयं किया है। वे लिखते हैं[1] कि २१ नवम्बर १८५४ को लार्ड लूसी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड ऑव डायरेक्टर्स को रिपोर्ट दी कि बादशाह के स्वास्थ्य के बारे में अस्थायी रेसिडेन्ट कप्तान हेज़ ने जो रिपोर्ट दी थी, "वह बहुत ग़लत है।" बादशाह लिखते हैं कि स्लीमन चाहते थे कि "धोखे में जितने दिन यह बात चले, चलाये चलें।" बादशाह चाहते थे कि ऐसे ही झूठों का प्रतिवाद करने के लिए उनका एक वकील कलकत्ता में रहे पर "उसे गवर्नमेन्ट हिन्द में मुक़ीम नहीं होने दिया गया।"

बादशाह में विलासिता का जो अवगुण आ गया था उसे छिपाया नहीं जा सकता। पर उसका कारण भी उतना ही स्पष्ट है। वे अच्छे स्वभाव के तथा हर तरह से सफ़ाई-पसन्द थे। इसकी मिसाल उनके उस आदेश से मिलती है जो उन्होंने अपनी बेगमात के नाम जारी किये थे। बेगमों को २१ हिदायतें थीं:—

१. खुशबू रखना।
२. उजले कपड़े पहनना।
३. पोशाक व मुंह से बदबू न आवे।
४. पांव व तलवे हमेशा आइने की तरह "साफ़ शफ़्फ़ाफ़" रहें।
५. केश में सुगन्ध, आंखों में काजल, हाथों में मेंहदी पहुंची तक रहे।
६. कुमारी कन्याएं मिस्सी न लगायें।
७. तम्बाकू खाना या हुक्का पीना मना है।
८. नाक में बुलाक पहनना मना है।
९. पैर व हाथ में मेंहदी पूरी तरह से रहे। ऐसा न हो कि पोरों में (ख़न्दक में) न रहे।
१०. जब बादशाह बुलायें फौरन हाज़िर हों।
११. बादशाह के सामने बेबाक व वेहिजाब हाज़िरी।
१२. मिज़ाज़पुर्सी में एक जवाब सब बेगमों के लिए पर्य्याप्त समझा जायगा।
१३. बादशाह के सामने मुंह बन्द करके बैठना मना है। हां, उनके सामने लेट सकती हैं। बैठ सकती हैं।

१. वाजिदअली शाह का कम्पनी को उत्तर।

१४. शोर-गुल नहीं होना चाहिए।
१५. सप्ताह में एक बार नाख़ून बनाना चाहिए।
१६. हंसी की बात पर ही हंसना चाहिए।
१७. बादशाह के साथ शयन की (ख़्वाहिश नफ़्शी) इच्छा हो तो निस्सं-कोच (बेहिजाब) कहना।
१८. कुछ इल्म सीखने की इच्छा होनी चाहिए।
१९. पैर की जूती दो अंगुल ज़मीन से ऊंची हो।
२०. बादशाह के सामने से एक बार जाकर फिर दुबारा आना चाहिए।
२१. बादशाह के साथ ही पान खाना चाहिए।

इन आदेशों से बादशाह की तबीयत का अन्दाज़ तो लगता ही है साथ ही उस समय की रहन-सहन का भी कुछ अनुमान हो जाता है। पत्र-व्यवहार में भी ऐसी नफ़ासत बर्ती जाती थी जो आज भी मन में एक स्वच्छता सी उत्पन्न करती है। बेगमात को अपने पत्रों में बादशाह बड़ी साहित्यिक भाषा में सम्बोधन करते थे जैसे—"मेवए बाग़े जवानी" "मेहरे सिपहेरे ख़ूबी" "माहे बुर्जे महबूबी" इत्यादि।

शाह बहुत कठिन उर्दू के साथ बहुत सरल तथा महाबरेदार आम बोलचाल की भाषा भी लिखते थे। एक खत में (बेगम मुमताज को) लिखते हैं:—

"तुम्हारे खत को सीने पर रखा। छाती से लगाया, आंखों पर रखा, बहुत चूमा चाटा, यहां तक कि उसके हुरुफ़ भी मिट गये। इस पर भी बे जवाब लिखे तस्कीन न हुई।"

उनको आम बोलचाल की भाषा बड़ी प्यारी है। जैसे—

१. ख़ुदा ख़ुदा करके कलकत्ते में पहुंचे। मुद्दई सायये दीवार सा साथ है।
२. काट फांस से एक लमहा भी नहीं चूकते।
३. गज़ब पेट से पांव निकाले हैं।
४. घने घने जंगल। काले काले पहाड़।
   न कहीं साया। न कहीं आड़।।
५. क्या फ़लक की यही चालढाल होती।
   कि बिना मरे ज़िन्दगी बबाल होती।।
६. चेहरा अर्ग़वानी जाफ़रानी है।
   फरामोश सारी लन्तरानी है।

बादशाह का साहित्यिक प्रेम अगाध था। असीर, बर्क़, ख्वाजा असद, क़लक़, जकी, दरख्शां, क़बूल, शफ़क़, बेखुद, हुनर वग़ैरह प्रसिद्ध शायर उनके दरबार में प्रश्रय पाते थे। बादशाह ने स्वयं **४० ग्रन्थ** लिखे हैं[1]। लाखों शेर लिख डाले जिनके ६ दीवान अभी उपलब्ध हैं। बहुत सी मसनवियां व ठुमरियां लिखीं। उर्दू तथा फारसी में बहुत से कसीदे लिखे। इनकी लिखी किताबों से यह प्रकट है कि बादशाह गद्य तथा पद्य, दोनों बहुत अच्छा लिखते थे। इनकी गद्य रचनाओं में[2] (१) नसायहे अख़्तरी (२) मुबाहिसा बैतुल नफ़्स वल अक़्ल (हृदय तथा मनमें बहस) (३) रिसाला दर बयान अहले बैत और (४) जौहरे-अरुज (काव्य-कला) बहुत अच्छी समझी जाती हैं। गाने-बजाने के शौक़ के बारे में हम ऊपर लिख चुके हैं। बादशाह स्वयं लिखते हैं:—

सुरों की उपज हो तरन्नुम के साथ
हिलें होठ मुतरिब के कुमकुम के साथ।
खरज का वकार और सुरों की लकीर
व तानें कि जिनसे पड़े दिल पै तीर॥

बादशाह की कुछ रचनाओं का नमूना हम इस पुस्तक के अन्त में दे रहे हैं। बेगमात के साथ ख़तोकिताबत यानी तवद्दरनामह में से कुछ उद्धरण हम देते रहेंगे। उन पत्रों में भी भाषा तथा भावना का संगीत भरा मिलेगा। हर चीज़ को सजा संवार कर रखने, बोलने, लिखने की उनकी आदत की सभी ने तारीफ की है। मेहतरानी तक को 'नवाब' का ख़िताब था। बादशाह को क़िस्सा कहानी सुनाने वाले अब्दुल रज़ाक़ "आराम गोश" कहलाते थे। कहार को क़ादिर बख़्श कहकर पुकारते थे। खाना खिलाने वाली स्त्री यानी ख़ासा बरदार को दारोगा राहतुस्सलतान की उपाधि थी।

ऐसे बादशाह की तबीयत जब काम से उचटी, मन में निराशा ने विलास तथा अंधकार का विकार उत्पन्न कर दिया तो उनका कितना मानसिक पतन हो गया इसका अनुमान उनकी कविताओं से लगता है। सन् सत्तावन के इतने बड़े ग़दर के बारे में वे किस उपेक्षा से लिखते हैं:—

कि बलवाई कुछ जम आ होने लगे
वो लिक्खा मुक़द्दर का धोने लगे।

१. तारीखे-अवध। २. तारीखे-अवध।

सबब हमने इसका तो था ये सुना
कि कुछ कारतूसों पर क़िस्सा हुआ।
वो थे गाव के चिर्म के कारतूस
उसी पर हुई थी ये बांगे ख़रुस।।[1]

निराशा तथा अंधकार का पता नीचे लिखी पंक्तियों से चलेगा।

पिला साक़िया वो मये बा मज़ा
भुला दे जो तल्ख़ीये जामे बला।
लबालब पियाला हो खुश रंग हो
रकीबों को भी नश्शये बंग[2] हो।
उलट कर न दू मुग़बच्चे का जवाव
बुढ़ापे में फिर आये मेरा शबाव।
उचट जाय ख़ाब और आरामे दिल
निकल आये ज़िन्दा में भी कामे दिल।।

इन पंक्तियों से बादशाह की निराशा भी प्रतीत होती है साथ ही कुछ लोगों को यह शंका होती है कि कलकत्ता जाकर बादशाह ने शराब पीना शुरू कर दिया था। पर, इसका ठोस प्रमाण नहीं मिलता है। उनकी भावनाएँ कितनी दब गयी थीं इसका अनुमान कलकत्ते में जेल में लिखी उनकी मसनवियों की अन्तिम पंक्तियों से मिलता है :—

दुआ के लिए हाथ उठाता हूं मैं
दुरे अश्क रोकर बहाता हूं मैं।
मेरी आबरू रख ख़ुदाए करीम
बहुत अपने बन्दों पे है तू रहीम।
बस अख़्तर कर अब तर्क तर्ज़े बयां
हुई ख़त्म ये मसनवी गुलसितां।।

बादशाह का परिवार

बादशाह का कुल परिवार कितना बड़ा था, यह लिखना ज़रा कठिन है। हरेक नवाब और बादशाह की काफ़ी पत्नियां होती थीं। पत्नी के साथ उसकी

१. मुर्ग़ की बांग २. भंग

सन्तान, फिर उसके रिश्तेदार होते थे जिनकी परवरिश करनी पड़ती थी। इस प्रकार लाखों रुपया हर साल केवल पेंशनों में जाता था। बेगमात काफ़ी रुपया इकट्ठा कर लिया करती थीं। इस विषय में हम ऊपर कई बार ज़िक्र कर आये हैं। बादशाह इतने मुफ्तखोरों का पालना बन्द करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि राज्य के ऊपर इतना भार बढ़े। मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं कि बादशाह के पिता यानी बादशाह अमजदअली शाह के औलाद की पेंशनें काफ़ी थीं। वज़ीर नक़ी ख़ां ने इन पेंशनों के बन्द करने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने रेसिडेन्ट के द्वारा गवर्नर जेनरल लार्ड मायरा यानी लार्ड हेस्टिंग्स को लिखा कि ये पेंशनें बन्द की जायं पर उन्होंने उत्तर भेजा कि केवल आधी रक़म की जाय। बन्द न हो। वजीर ने लिखवाया कि नवाब आसफ़ुद्दौला की औलाद और उनकी बीवियों की पेंशनें बन्द की जायं। नवाब मुअतमुद्दौला इसकी हक़दार भी नहीं थीं। पंचमहल में रहती थीं। वज़ीर ने इनकी पेंशन बन्द कर दी। जब कई महीने रुपया नहीं मिलता था तो वे तथा अन्य बेगमें कोठे पर निकल कर मुहर्रम का बाजा बजवाती थीं और वज़ीर को कोसती थीं। लार्ड हेस्टिंग्स ने उत्तर भेजा कि बादशाह के भाइयों की पेंशनें कम कर दो पर आसफ़ुद्दौला की औलाद को कुछ देते रहो। बादशाह ने "हुक्म" मान लिया पर उनको महल से निकलवा दिया।

भाइयों की पेंशन आधी कर दी गयी। एक भाई हुसेनअली ख़ां बड़े ख़र्चीले थे। बरसों तक जब इन लोगों की पेंशनें रुकी रहीं तो एक दिन सब भाई मंडियाहू की छावनी में रेसिडेन्ट के पास गये और अपना हाल कहा। रेसिडेन्ट ने कोरा जवाब दिया। इनमें सब से बड़े नसीरुद्दौला थे। शाही फ़ौज ने उनका मकान घेर लिया और उनको मकान में ही क़ैद रखा। अज़ीमुल्ला ख़ां ने, जिन्होंने लखनऊ में गर्मी के दिनों में मिट्टी का हुक्का चालू किया था, बादशाह से मेल कराया और फिर दरबार में आने लगे।

नवाब जलालुद्दौला एक रात को मुन्नासिंह के घोड़े पर बैठकर कानपुर भाग गये। वहां से कलकत्ता चले गये। वहां से बसरा चले गये। वहां पर एक "तुर्कमन" ने इन्हें पकड़ कर गुलाम बना लिया। वे छः आदमियों के हिस्से में ग़ुलाम रहे। चक्की पीसनी पड़ती थी। बड़े कष्ट से जीवन बीतता था। पैर में मनों वजन की जंजीरें पड़ी थीं। एक महाजन ने उनके लिए पांच हजार रुपया देकर वहां से छुड़ाया और कानपुर ले आया। बादशाह को जब सब हाल मिला तो उन्होंने लखनऊ बुला भेजा। महाजन का रुपया चुकता कर उनकी डेढ़ सौ रुपया माहवार पेंशन कर दी। नवाब जलालुद्दौला का असली नाम मेंहदी अली ख़ां था। बादशाह

के पितामह महमदअली शाह की एक रखेल के बेटे थे। इन्होंने बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र किया था पर बादशाह ने अपनी उदारता में उनको क्षमा कर दिया था। नवाब तीरन्दाज़ी व बन्दूक़ के निशाने में बड़े तेज़ थे। पढ़ने लिखने का बड़ा शौक़ था। ९० साल की उम्र थी। खाना एक वक्त खाते थे। खाने के दो घंटे के बाद मुंह में उंगली डालकर क़ै कर देते थे। १९४९ में मरे और ख़ुल्द मंज़िल में दफ़न हुए।[1]

बादशाह के सर पर मुफ़्तखोर परिवार का बड़ा बोझ था। वे इस बोझ को हल्का करना चाहते थे पर कर नहीं पाते थे। इसमें बाधक अंग्रेज़ ही थे। सितम्बर १८५२ में गवर्नर जेनरल लार्ड डलहौज़ी को कर्नल स्लीमन ने पत्र लिखा था[2] कि "बादशाह और उसके लुच्चे सलाहकारों ने शाही ख़ानदान के सभी लोगों की पेंशनें बन्द कर दी हैं और सिवाय अपने पिता के परिवार के वह और किसी को पेंशन नहीं दे रहे हैं।" इस प्रकार बादशाह को अपने परिवार को सुधारने का अवसर भी नहीं दिया जाता था।

अस्तु, बादशाह के परिवार का पूरा अनुमान तो नहीं लग सकता। वे उदार थे अतएव उनको चारों ओर से रिश्तेदार, नातेदार घेरे रहते थे। जब उनका ज़माना उजड़ चुका था उस समय यानी कलकत्ता में उनके पास महलात, औलाद, मुलाज़मीन व मुसाहब मिलाकर लगभग ५०० व्यक्ति थे। उनकी एक मसनवी से यही पता चलता है। अब्दुलहलीम शरर के कथनानुसार बादशाह की मृत्यु के समय मटियाबुर्ज़ की आबादी ४०,००० थी और ये प्रायः सभी बादशाह के मुलाज़मीन या उनके परिवार या उनसे किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने वाले थे।

बादशाह की बीवियाँ तथा औलाद दोनों की ठीक संख्या नहीं मालूम है। बीवी या महलात के बारे में हम ऊपर लिख चुके हैं—यही ६० या ७० होंगी। तारीखे अवध[3] के अनुसार बादशाह के ४५ शहज़ादे तथा ३४ शहज़ादियां थीं। पर, सलातीने अवध के कथनानुसार बादशाह को ४० बेटे तथा ३३ लड़कियां थीं। इनकी फ़ेहरिस्त बादशाह ने ख़ुद तैयार की थी। मिर्ज़ा ज़ायर का कथन है कि "इस

१. सलातीने अवध।
२. स्लीमन की डायरी, भाग २।
३. ले० नज़मुल गनी खां रामपुरी।

फ़ेहरिस्त के अलावा भी औलाद हो सकती हैं। लेकिन सब लड़के लड़कियां बादशाह से पैदा नहीं थे। बहुतों को गोद ले लिया था।"[1]

इन राजकुमारों तथा राजकुमारियों में कौन बड़ा तथा कौन छोटा था यह भी कहना कठिन है। मौलाना अब्दुल हलीम शरर का कथन है कि अवध के बादशाहों में मायूल था कि बादशाह के बड़े बेटे को वली अहद तथा दूसरे बेटे को अफ़सर फ़ौज यानी जेनरल कहते थे। इसी हिसाब से वाजिदअली शाह के बड़े भाई मुस्तफ़ा अलीशाह को वली अहद तथा गद्दी का हक़दार होना चाहिए था पर मुस्तफ़ा अली बहुत उग्र स्वभाव के थे। अतएव प्रजा उन्हें पसन्द नहीं करती थी। बादशाह अमजदअली ऐलान कर चुके थे कि वह उनके द्वारा पैदा सन्तान नहीं है। अतएव अंग्रेज़ अमजदअली के मरने पर मुन्नाजान वाला क़िस्सा करना चाहते थे। सवानेह सलातीने अवध के पहले ही अध्याय में मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं कि "जब मैं महल के फाटक पर पहुंचा (बादशाह अमजदअली की मृत्यु की सूचना मिलने पर) तो काफ़ी लोग रो रहे थे। फाटक पर बड़ी भीड़ थी। कुछ लोगों ने मुझे अंग्रेज़ समझा और भीड़ में से आवाज़ें आने लगीं—'हमारे नवाब (वाजिदअली शाह) को ही गद्दी का वारिस मानियेगा।' मालूम होता है कि लोगों के मन में शुबहा होगा।"

जनता का उत्साह देखकर ही अंग्रेज़ों की हिम्मत नहीं पड़ी कि कोई शरारत करें। लेकिन मुस्तफ़ाअली को उभाड़ कर वाजिदअली शाह को परेशान करने की शरारत में अंग्रेज़ बाज़ न आये। १ जून, १८५४ को कर्नल लो के नाम स्लीमन ने अपने पत्र में लिखा था—"शहर के रईस लोग ब्रिटिश सरकार को बारबार लिखते रहे हैं तथा उससे आग्रह कर रहे हैं कि मौजूदा बादशाह को गद्दी से हटाकर उनके स्थान पर उनके विख्यात भाई को बिठायें...."[2]

मुस्तफ़ाअली को अधिकार से हटाने पर वाजिदअली शाह को "वलीअहद" यानी युवराज बनाया गया था। बादशाह अमजदअली ने वाजिदअली शाह से छोटे लड़के मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत को प्रधान सेनापति यानी जेनरल बनाया था। बादशाह वाजिदअली शाह के शासनकाल में मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत बड़ी योग्यता के साथ अपने पद को संभाल रहे थे।

१. सलातीने अवध—पृष्ठ ३५।

२. स्लीमन की डायरी, पृष्ठ ४२१, भाग २।

बादशाह की औलादों की जो सूची सलातीने अवध में दी गयी है वह "हुज़्ने अख्तर" की फ़ेहरिस्त से कुछ भिन्न है। सलातीने अवध में औलादों में सब से पहले मिर्ज़ा मुहम्मदअली हैदर फिर मिर्ज़ा मुहम्मद जावेदअली और तीसरा नाम मिर्ज़ा मुहम्मद हामिद अली, वली अहद का है।[1] पर इसी किताब में लिखा है कि बादशाह के सब से बड़े बेटे नौशेरवाँ क़द्र थे जो बचपन से ही नपुंसक तथा पागल थे। ग़दर के ज़माने में मारे गये। उसके बाद की औलाद की फ़ेहरिस्त हुज़्ने-अख्तर में इस प्रकार दी गयी है:—

२. साहेब आलम कैमा क़द्र बहादुर मिर्ज़ा हामिद अली-वलीअहद
३. मिर्ज़ा मुहम्मद हिजबअली जेनरल
४. मिर्ज़ा बिरजीस कदर
५. मिर्ज़ा क़मर क़द्र मुहम्मद आबिदअली
६. मिर्ज़ा आस्ना जाह
७. मिर्ज़ा करा हुसेन
८. छोटे मिर्ज़ा।

इनमें चौथे शाहज़ादे मिर्ज़ा बिरजीसक़दर सन् १८५७ की क्रान्ति में बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। ग़दर के ज़माने में बलवाइयों ने और कोई राजकुमार न उपलब्ध होने पर, उन्हीं को अवध की गद्दी पर बिठाया था। ग़दर में पराजय के बाद वे अपनी माता के साथ नैपाल भाग गये थे और वहीं उनका विवाह भी हो गया था। जब ब्रिटिश हुकूमत ने उनको माफ़ी दे दी तो वे नैपाल से कलकत्ता आये और इंगलैण्ड जाने वाले थे कि कहते हैं कि किसी ने उनको ज़हर दे दिया। बड़े शहज़ादे पागल थे ही। बादशाह ने अपने बाद जाँनशीन (उत्तराधिकारी) मिर्ज़ा क़मरक़द्र को घोषित किया था। पर बादशाह के गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिनों बाद वे मर गये। सलातीने अवध के अनुसार मिर्ज़ा क़मरक़द्र मुहम्मद आबिदअली वास्तव में दूसरे बेटे थे। पहला बेटा पागल था अतएव दूसरे को वली अहद बनाया गया। पर इन्हें तपेदिक़ हो गया था। जब हकीमों ने जवाब दे दिया तो रेसिडेन्सी के डा० स्प्रिंजर के इलाज में गये। यकायक इनको चेचक निकल आयी। हालत ज़्यादा खराब हुई तो २६ मई, १८४९ को शाहमंज़िल में ले गये। वहीं ४ जून, १८४९ को उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय इनकी उम्र १० वर्ष ५ महीना थी। इस मृत्यु

१. सलातीने अवध, पृष्ठ ३५।

के समाचार को बादशाह से छिपाया गया पर उन दिनों उनका दिल डूबा डूबा रहता था। जब उनको समाचार मिला तो वे बहुत ही दुःखी हुए।

मिर्ज़ा लिखते हैं:—

अवध के पिछले १००-१२५ साल की तवारीख़ में कोई जाँ-नशीन नहीं मरा था। इसलिए वली अहद की मृत्यु को लोगों ने राज्य के लिए मनहूस समझा—और मनहूस साबित भी हुआ। ख़ैर, उनकी मृत्यु के बाद मिर्ज़ा क़ैमा क़द्र को वलीअहद और मिर्ज़ा फ़रीद क़द्र को (मिर्ज़ा हिजबअली) जेनरल बनाया गया। "क़ैमा" शनीचर सितारा को कहते हैं।

बादशाह की पहली शादी पन्द्रह वर्ष की उम्र में हुई थी।[1] पहली पत्नी को ही नवाब ख़ास महल कहते थे। इसके बाद की शादियों की संख्या या समय देने से कोई लाभ नहीं। ७ जून, १८५१ को इनका विवाह सय्यदअली नक़ी ख़ाँ वज़ीर की बड़ी लड़की से हुआ। उसको ख़िताब मिला अख़्तर महल। "अख़्तर" बादशाह का कविता का "उपनाम" भी था। इस विवाह के सम्बन्ध में कर्नल स्लीमन ने लार्ड डलहौजी को ११ नवम्बर, १८५३ को एक पत्र लिखा था:—

"बादशाह की असली महारानी मौजूदा वज़ीर की भतीजी है और उसका लड़का वलीअहद है। इसलिए वह वज़ीर और वली अहद की मां दोनों के स्वार्थ में है, हित में है कि जितनी जल्दी बादशाह से छुटकारा मिले अच्छा है। मालूम होता है कि राजमाता मल्का किश्वर को इस ख़तरे का पता चल गया और उन्होंने बादशाह से इशारा कर दिया। शायद बादशाह को वज़ीर की एक लड़की पसन्द भी आ गयी थी। उन्होंने उससे शादी कर ली। यह शायद इसलिए कि अब वज़ीर के भी हित में होगा कि बादशाह को जीवित रखें।"

बादशाह इतने नीचे उतर कर सोचने के आदी नहीं थे जितना स्लीमन समझते हैं। पर, यह अवश्य है कि नवाब ख़ास महल अपने पुत्र के लिए चिन्तित बहुत रहती थीं। राजमाता मल्का किश्वर को अपने बेटे वाजिदअली शाह की तथा नवाब ख़ास महल को अपने बेटे वली अहद की चिंता बनी रहती थी। इसलिए दोनों में अकसर झड़प हो जाती थी। सास, बहू का झगड़ा हो जाता था और कई दिन तक बोलचाल बन्द रहती। पर, बादशाह की गद्दी छिनने पर इन दोनों ने दृढ़ता तथा वीरता का परिचय दिया था।

१. तारीखे अवध।

१८५० में बादशाह की बड़ी लड़की की शादी हुई। दामाद थे नवाब बाकर अली खां। शादी खूब धूम से हुई। महफ़िल का इन्तजाम मिर्ज़ा वसीहअली के ज़िम्मे था। खूब जशन रहा। ४ मई, १८५० को, एक ही दिन में बादशाह की दो और बेटियों की शादियां हो गयीं। लेकिन रुपया लुटाने तथा नाच-गाने से लोगों की तबीयत नहीं भरी। महज़ तमाशा के लिए, नाच गाने के लिए बादशाह के बड़े बेटे, कमज़ोर और पागल मिर्ज़ा नौशेरवां क़द्र की शादी नवाब इकरामुद्दौला हुसेन खां की बेटी से २८ फरवरी, १८५१ को कर दी गयी। नवाब इकरामुद्दौला ने भी महज़ बादशाह का समधी बनने के लिए अपनी लड़की का जीवन नष्ट कर दिया। इस मौक़े पर खूब धूमधाम थी। खूब रुपया लुटाया गया। बादशाह के एक बेटे सज्जादअली ख़ां की शादी मई, १८५१ में बादशाह की सगी भांजी के साथ हो गयी। जून, १८५१ में बादशाह की तीसरी लड़की की शादी तैमूरिया ख़ानदान के शहज़ादे सुलतान आलम से हुई। इस शहज़ादे की और कई शादियां पहले हो चुकी थीं।[१]

१७ अक्टूबर, १८५१ को वली अहद "साहबे आलम" क़ैमाक़द्र की शादी नवाब सरफ़राजुद्दौला की लड़की से हुई। १८ अक्टूबर, १८५१ को बादशाह की चौथी लड़की की शादी बादशाह के चौथे लड़के जेनरल फ़रीद क़द्र से हो गयी। "दूध" बचाकर ऐसा विवाह उन लोगों में जायज़ था। इन शादियों में पहले जैसी धूमधाम नहीं थी। इसका एक सबब यह भी था कि १२ अगस्त, १८५१ को यानी शादियों से दो महीना पूर्व ही बादशाह के वालिद के धर्म गुरु इमामुद्दौला नवाब जाफ़र अली खां हैज़ा से मर गये थे। फ़क़ीर थे लेकिन मरने के वक़्त ६-७ लाख रुपया छोड़ गये थे।

बादशाह अपने परिवार से बहुत स्नेह रखते थे। इसका अन्दाज़ तारीख़ मुमताज से लगता है। यद्यपि कई स्थानों पर ज़िक्र आया है कि बेगम मुमताज महल भी बादशाह के साथ कलकत्ता गयी थीं और फिर वापस चली आयी थीं पर तारीख़ मुमताज की बेगम मुमताज महल नवाब अक़लील महल थीं। इनका ख़िताब ज़ीनत महल था। वे बादशाह के साथ गयी नहीं थीं। अतएव उनके साथ जो मुमताज महल गयी थीं वे कोई और बेगम होंगी। नवाब अक़लील महल ने जो

१. सलातीने अवध, अध्याय ३८, भाग २—लेखक मिर्ज़ा ज़ायर ने इस विवाह पर टिप्पणी की है—"लेखक की एक बीवी से मिट्टी ख़राब है।"

ख़त बादशाह को भेजे थे उनकी मूल प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम में मौजूद है। ये पत्र कुल ८० पन्नों में हैं। हरेक वर्क़ पर सात सतरें हैं। हाशिया सोने का है—सोने का पानी है। हरेक वर्क़ पर गुलकारी की गयी है। इन ख़तों को इकट्ठा करने वाले ने बड़े ठिकाने से जमा किया है। आख़री ख़त ७ सितम्बर, १८५९ का तथा पहला ख़त ९ जुलाई, १८५६ का है। ९ जुलाई १८५९ को बादशाह अंग्रेज़ी क़ैद से रिहा हुए थे। क़ैद से लिखे गये पत्र बहुत ही दर्दनाक हैं।

मुमताज फ़ैज़ाबाद के (हुक्मराँ) शहामत अली खां की नवासी थीं। शहामत अली खां नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला के बेटे थे। इन ख़तों के इकट्ठा करने का कारण यह लिखा हुआ है कि बेगम ने "मुहब्बत नामज़ाद" को ठीक से इकट्ठा करने की इच्छा प्रकट की ताकि वे "तनहाई में उनको देखा करें।" इधर उन्होंने हुक्म दिया और उधर फोर्ट विलियम से बादशाह ने यही इच्छा प्रकट की कि "जैसे लिखा है वैसे ही हमारे पास भेजो। यह हमारे दिल का सरूर व आंखों का नूर रहेगा।" कलकत्ता में वाजिदअली शाह के कातिब (लेखक) नवाब जुलफ़िका-रुद्दौला सय्यद मुहम्मद रज़्ज़ाक अली थे जो बेगम मेहरतन अफ़सरुन्निसा नवाब निशात महल के भाई थे। बेगम के सलाहकार मीर वाजिदअली थे। इन्होंने सत्तावन के ग़दर के जमाने में अंग्रेज़ बच्चों को पनाह दी थी, अतएव ग़दर के वाद बादशाह के महलों के कोतवाल मुक़र्रर हुए थे। ख़तों का संग्रह कराने का ख़र्च बादशाह ने दिया था।

ख़तों को क़ैदख़ाने से भेजने में बादशाह को बड़ी परेशानी होती थी। कोई ख़त ले जाने वाला या डाँक में पहुंचाने वाला भी नहीं मिलता था। वे खीझ कर लिखते हैं:—

"क़ासिद बहुत कमयाब[1] है कि जिनके हाथों दर्दे दिल लिख के भेजा करूं। अगर कोई डाकिया नसीबों से हाथ आ गया तो हज़ार-हज़ार मिन्नतें व समाजत से हाथ जोड़कर एकाध ख़त रवाना किया।" ख़त लिखने का सामान भी नहीं उपलब्ध था। बादशाह ने लिखा है:—

अजब वक़्त यह दास्तां है लिखी।
कि था क़ैद में बख़्तेबद मुख़्तफ़ी।।[2]

१. कमयाब-कठिनाई से प्राप्य।
२. मुख़्तफ़ी = छिपा हुआ।

कलम ना सियाही न काग़ज़ दवात।
कि नायाब हो जैसे आबेहयात॥

इस ग्रन्थ का हमारी दृष्टि से बड़ा महत्व है। इससे यह भी पता चलता है कि शुरू में बादशाह के साथ "तेईस मर्दोज़न जिनमें छः बेगमें थीं" कलकत्ता गये थे। ५ रजब, १२७२ हिजरी, १३ मार्च १८५६ को, बृहस्पतिवार के दिन लखनऊ से रवाना हुए और अपने फूफा नवाब हिशामुद्दौला को लखनऊ में अपना मुख़्तार-आम बना गये। ७ अप्रैल को कानपुर से बनारस के लिए रवाना हुए और १६ अप्रैल को बनारस पहुंचे। वहां से जहाज़ के द्वारा (स्टीमर से) गंगा नदी से, कलकत्ता रवाना हुए और १३ मई, १८५६ को मटियाबुर्ज़ पहुंचे।

बेगम की ओर से ख़तों का संग्रह करने वाले अकवर अली खां "तौकीर" थे। दस रुपया फ़ी वर्क़ ख़र्च पड़ा था यानी ८०० रुपया। तस्वीर का ख़र्च तीस रुपया। सब खर्च बादशाह ने दिया। इस संग्रह की भाषा का अनुमान उसकी भूमिका से लगता है। लिखा है:—

"एक शब कि कवाकिब अनवर ऊपर फ़लक़ अखजर के मानिन्दे नूरे दौलत व इक़बाल के नासियये बख़्तनन्दा से शअशअ[1] अन्दाज़"

बादशाह का अपनी बेगमों के प्रति प्रेम तारीख़े मुमताज के पांचवें पत्र से प्रकट होता है:—

"ख़ुदा गवाह है कि अब एक घड़ी मिस्ल एक एक साल के गुज़रती है। मुफ़ारिकत तबीयत मुहब्बत तबीयत को बहुत बेचैन करती है। इसको तसव्वुर करो कि जो उस ऐशोआराम और जाहो हश्मत सिकन्दरी से बसर करता हो या वोह अब गर्दिशे फ़ल्की से कोठी राजा बर्दवान में कि वास्ते दुश्मनों के महबत[2] से कम नहीं दिन मुसीबत के भरता हो, क्या उसके दिल का आलम होगा।"

आलम ग़रीबी का पर चाल रियासती बनी रही। इनके साथ जो लोग कलकत्ता गये थे, उनमें से सब जेलख़ाने में नहीं जाने पाये। बादशाह के साथ सबसे बड़ा जुल्म यह था कि "महलात"—बेगमात में से कोई साथ न जाने पाया। मुजाहदुद्दौला, दियानतुद्दौला, जुल्फ़िकारुद्दौला, फ़तहुद्दौला और मोअतमुद्दौला तथा शाहे

१. शुभ घड़ी २. कैदखाना।

तबीब (हकीम) तबीबुद्दौला साथ में थे और नौकरों में बाकरअली ,व मुहम्मद जान चोबदार, हुबदार खां केवल बरदार (चिराग़ उठाने वाला), जमालुद्दीन चपरासी शेख इमामबख्श, कलिया बरदार (हुक्का उठाने वाला) अमीरबेग खबास, वली मुहम्मद बोलदान बरदार (पेशाब उठाने वाला), मुहम्मद शेर खां गोलन्दाज़, अब्दुर्रज़्ज़ाक़ आराम गोश (क़िस्सा सुनाने वाला), करीम बख्श आबकश (पानी पिलाने वाला), हाजी कादिर बख्श कँहार, इमामी गाड़ी पोंछ, मीर नवाब रफ़ीक मुजाउद्दौला और ख़ादिमा औरतों में से थीं दारोग़ा राहस्तुसलुतान खासाबरदार (खाना खिलाने वाली), करबलाई आबेखासाबरदार (पानी पिलाने वाली), हुसेनी खासदान बरदार (पान खिलाने वाली) और मुहम्मदी खानम पोशाक़ दोज़ (कपड़ा पहनाने वाली), कुल ३३ लोग साथ में थे।[१]

क़ैदखाने में जिसने इतने कर्मचारी साथ में रखे हों, उसके कुनबे का अन्दाज़, जब वे बादशाह थे, लगाना ज़रा कठिन सी बात है।

बादशाह के परिवार के उनके स्वजन तथा अतिप्रिय लोग उनके सामने ही चल बसे। बुढ़ापे में उनको यह दुःख भी देखना बदा था। उनकी माता मल्का किश्वर तथा भाई मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत जव्वाद अली शाह अपनी विदेश यात्रा में पेरिस में स्वर्ग सिधारे। वली अहद क़ैमाक़द्र हिन्दुस्तान वापस आकर संसार से चल बसे।[२] स्वयं बादशाह की मृत्यु ७५ वर्ष की उम्र में हिजरी १३०५ में हुई।[३] एक इतिहासकार के अनुसार[४] २१ सितम्बर, १८८७, ३ मुहर्रम, हिजरी १३०५ को ९ घड़ी रात गये, बादशाह का इन्तक़ाल हुआ। मरने के तीसरे दिन मटियाबुर्ज़ में अपने ही बनवाये इमामबाड़ा में दफ़न किये गये। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसवीय सन् लिखने में भूल हो गयी है।

राजकुमार बिरजीसक़दर[५] सन् सत्तावन की क्रान्ति में गद्दी पर बिठाये गये। ३ जुलाई, १८५७ को उनका राज्याभिषेक हुआ। उनकी माता बेगम हज़रतमहल क्रान्ति की नेता बनीं। यह बात बहुत सी बेगमों को बुरी लगी। सरफ़राज बेगम ने नवाब अख्तर महल को कलकत्ता लिख भेजा—"हज़रतमहल खुद हाथी पर

१. तारीख मुमताज—सम्पादक डा० मुहम्मद बाकर। २. तारीख़े-अवध ३. तारीख़े मुमताज ४. अफजलुत्-तवारीख। ५. इनके शिक्षक मौलवी ग़ुलाम हजरत थे तथा दारोग़ा महल मम्मू ख़ां और दीवान ठाकुरदास थे।

बैठकर तिलंगों के आगे-आगे अंग्रेजों से मुक़ाबला करती हैं। **आंख का पानी ढल गया है।** उनको भय बिलकुल नहीं है।"[१]

राज्याभिषेक के समय बिरजीसक़दर ११ वर्ष के थे। ९ महीना ८ दिन राज्य करके वे नैपाल भाग गये। वहीं शादी कर ली। तीन बेटे पैदा हुए। १८७७ में १८ वर्ष की उम्र में इनका बड़ा बेटा मर गया। अप्रैल, १८७९ में बेगम हज़रत-महल नैपाल में मर गयीं। इस प्रकार बादशाह के जीवन काल में ही उनका परिवार बिखर गया।

१. बेगमों के खतूत। पृष्ठ ५०-५१

अध्याय चार

वाजिदअली शाह का राज्य और उसका अन्त

१३ फरवरी, १८४७ को अवध के अन्तिम नरेश वाजिदअली शाह गद्दी पर बैठे।

उनके दादा मुहम्मदअली शाह के शासन के आरम्भ काल में इनका ख़िताब था—"नाजिमुद्दौला मुहम्मद वाजिदअली शाह बहादुर।" फिर, इनका ख़िताब, उन्हीं के शासनकाल में था—"खुरशीद हश्मत मिर्जा मुहम्मद वाजिदअली शाह बहादुर।" जब वे वली अहद यानी युवराज हो गये, इनका ख़िताब हो गया —"अबुल मंसूर सिकन्दर जाह सुलेमान हश्मत साहेब आलम वली अहद मिर्ज़ा वाजिदअली शाह बहादुर।" जब वे बादशाह की गद्दी पर बैठे उनका ख़िताब था :—[1]

"अबुल मुज़फ्फ़र नासिरुद्दीन सिकन्दरजाह बादशाहे आदिल, क़ैसरेज़मां, सुलताने आलम वाजिदअली शाह बहादुर बादशाह।"

इन्होंने अपना जो सिक्का चालू किया उस पर एक तरफ़ फ़ारसी का यह शेर लिखा था:—

सिक्काज़द बरसीमोज़र अज़ फ़ज़्ले ताईदे इलाह।
जिल्ले हक़ वाजिदअली सुलताने आलम बादशाह॥

सिक्के के दूसरी तरफ़ एक ताज है। उस पर एक छतरी है जिसके दोनों तरफ़ दो झंडियां खड़ी हैं। उनको दो अर्द्ध नारी मछलियों ने एक-एक हाथ से सहारा दे रखा है। उनके दूसरे हाथ में चंवर है और भुजाओं में पंख बने हुए हैं। इस ताज के तले एक क़िले की अलामत है और उनके तले में दो तलवारें खड़ी हैं जिनके क़ब्ज़े नीचे की ओर इस प्रकार क़ायम हैं जैसे त्रिभुज की भुजाएं। इन झंडियों के डंडे इतने लम्बे हैं कि डण्डा तलवार से मिलता हुआ नीचे की ओर, अन्त तक चला

१. तारीख़े अवध, अफ़ज़लुत् तवारीख आदि से।

गया है। हरेक झंडी व तलवार से भी त्रिभुज की शक्ल बनती है। सिक्के के चारों ओर किनारे से सटी हुई यह इबारत लिखी है :—

"ज़र्ब मुल्के अवध बैतुस्सलतनत लखनऊ
सन् ४ जुलूस मैमनत मानूस"

बादशाह ने अपना ख़ुद नया साल शुरू किया था। वाजिदअली के तख़्त के जुलूस का साल। ऊपर जो इबारत लिखी है वह चौथे साल के सिक्के पर है। महीनों के नाम इस प्रकार थे:—

माहे वाजिदी, माहे मुहम्मदी, माहे अख़्तरी, माहे सिकन्दरी, माहे हुसैनी, माहे अस्ना अशरी, माहे अमानी, माहे सनोवर, माहे मरातिब, माहे मंसूरी, माहे सुलेमान, माहे नबी।

वर्ष का प्रारम्भ—१३ ज़ीकाद, हिजरी १२७१ से हुआ था।[१]

शासन के अंतिम दिनों में राज्य की आमदनी १ करोड़ ३५ लाख रुपया थी।[२] एक लेखक राज्य की आमदनी १ करोड़ २९ लाख ४१ हजार ८१८ रुपये बतलाते हैं।[३] कर्नल स्लीमन ने ५० लाख रुपया ही लिखा है और बादशाह के ख़र्चे के बारे में लिखा है[४] :—

"(बादशाह के) मौजूदा ख़र्चे का मेरा अनुमान है कि दीवानी और अन्य वित्तीय मद में ३८ लाख रुपया, सेना तथा पुलिस पर ५५ लाख रुपया, बादशाह के महलात का ख़र्चा ३० लाख रुपया, कुल १२३ लाख रुपया साल। सरकारी शासन (ब्रिटिश हुकूमत) होने पर दीवानी तथा वित्तीय ख़र्चे २२ लाख रुपया, सेना पर २६ लाख रुपया, बादशाह के परिवार व आश्रितों पर १२ लाख रुपया, बादशाह व उनके बेटों पर १५ लाख रुपया यानी कुल ७५ लाख रुपया . . . लखनऊ की आबादी आवश्यकता से अधिक है।"

हम ऊपर लिख आये हैं कि नवाब वज़ीर सआदतअली खां १४ करोड़ रुपया छोड़ कर मरे थे। बादशाह इसके बारे में स्वयं लिखते हैं[५] कि जबकि कम्पनी के

१. सलातीने अवध। अध्याय ५६-भाग २. अफज़लुत् तवारीख। ३. तारीख-हित प्रसाद। ४. स्लीमन का सरपत्र जेम्स वेयर हॉग के नाम, २८ अक्टूबर, १९५२। ५. बादशाह का कम्पनी को उत्तर—लार्ड लूसी ने १८ जून, १८५५ को अपनी रिपोर्ट में सआदतअली के १७ वर्ष के शासनकाल में ३३ करोड़ रुपया आमदनी बतलाया है।

ही कथनानुसार अवध की आमदनी उस समय डेढ़ करोड़ रुपया सालाना थी तो वे १७ वर्ष के अपने राज्य में १३ करोड़ रुपया छोड़कर मरे यह कैसे मुमकिन था? बादशाह के गद्दी से उतारे जाने के समय जेनरल आउट्रम रेसिडेन्ट थे। उनका आक्षेप था कि "अवध की हुकूमत पर कम से कम ५० लाख रुपया कर्मचारियों का वेतन बाक़ी है। **बादशाह को कर्ज नहीं मिलता है।"** इस पर बादशाह ने जवाब दिया है कि "पिछले तीस साल में अवध की आमदनी १ करोड़ ३५ लाख रुपये से बढ़कर १ करोड़ ७५ लाख रुपया हो गयी है। जब १८५६ में राज्य पर क़ब्ज़ा हुआ, रियासत पर कुल ४० लाख रुपया कर्ज़ निकला। हमारे सब कर्मचारियों का कुल वार्षिक वेतन ८ लाख रुपया था। अगर मालगुज़ारी का हिसाब बाद कर दें तो कुछ भी बाक़ी नहीं मिलेगा।"

किन्तु, अंग्रेज़ों को तो हर तरह से बादशाह को बदनाम करना था और उनको ज़लील करना था। स्लीमन साहब लिखते हैं:—

"बादशाह को अपने कर्त्तव्यों का बिलकुल ध्यान नहीं है। अपनी ज़िम्मेदारियों का हमेशा की तरह एहसास नहीं है . . . आमदनी से कहीं ज़्यादा ख़र्च है। लेकिन बादशाह के पास अपने जवाहरात हैं और कुछ निजी सम्पत्ति सरकारी हुण्डियों में है। यह उनको अपने पिता और दादियों से मिली है . . . यदि हमारी सरकार को हस्तक्षेप करना है तो वह संधि या पत्र-व्यवहार से नहीं हो सकेगा बल्कि वर्त्तमान ज़िम्मेदारियों तथा संधियों के आधार पर अधिकारपूर्वक होगा। यदि हम अवध को क़ब्ज़े में कर लें या ज़ब्त कर लें तो भारतवर्ष में हमारे नाम को अनिवार्यतः धक्का लगेगा और वह अपयश दर्जनों अवध प्राप्त करने से बुरा होगा। . . . और यदि लोग हमारी ओर शंका की दृष्टि से देखेंगे तो हमारी स्थिति (सत्ता) डूबने लगेगी . . . . मौजूदा बादशाह के तीन या चार लड़के हैं, वे सब बहुत छोटे हैं और उनमें से किसी से यह आशा करना कि वे कभी काम के लायक़ निकलेंगे, बिलकुल असम्भव है और यह आशा करना कि उनमें से कोई मौजूदा बादशाह से बेहतर बादशाह होगा, मूर्खता होगी . . . . बादशाह की उम्र इस समय २८-२९ साल की है पर अत्यधिक विलासिता के कारण उनकी बुद्धिमत्ता एकदम समाप्त हो गयी है . ."[१]

१. ईस्ट इंडिया कम्पनी के उपाध्यक्ष सर जेम्स वेयर हॉग के नाम २८ अक्टूबर, १८५२ का पत्र।

वे पुनः लिखते हैं:—

"वज़ीर कमजोर और नम्बरी लुच्चा है....न तो हमारे वर्त्तमान सम्बन्ध या प्रधान अधिकारी होने का दावा हमें ऐसा कोई अधिकार देता है कि अवध को ज़ब्त कर लें और क़ब्ज़े में कर लें....हमको अपने क़र्ज़ के नाम पर हैदराबाद की रियासत को ज़ब्त करने का अधिकार हो सकता है पर **अवध पर हमारा एक पैसा भी ऋण नहीं है।**"[1]

इसी पत्र के सिलसिले में एक दूसरे पत्र में लिखा है :—[2]

"...बादशाह इस योग्य हैं कि उनको गद्दी से हटा दिया जाय और ऐसी सूरत में हमारे सामने तीन ही रास्ते हैं—(१) वली अहद की उम्र इस समय ११ साल की है। उनकी नाबालग़ी के ज़माने में रेसिडेन्ट की सलाह से शासन करने के लिए रीजेंसी नियुक्त की जाय। (२) सदा के लिए यूरोपियनों के द्वारा शासन चलाया जाय और राज्य की आमदनी में ख़र्च काट कर जो बचे, वह बादशाह तथा उनके परिवार को दे दिया जाय। (३) अवध को ज़ब्त कर लिया जाय और शाही ख़ान्दान की पेंशनें मुकर्रर हो जायँ....पहला प्रस्ताव लार्ड हार्डिंग का था। दूसरा वही है जो हमने सन् १८१७ में नागपुर में किया है...तीसरे प्रस्ताव में एक विकट परिस्थिति पैदा होगी....अब गवर्नर जेनरल साहब ही फ़ैसला करें।"

बादशाह के बारे में कर्नल स्लीमन ने अपना पदभार ग्रहण करने के समय ही ऐसी गन्दी धारणा बना ली थी तथा अपना षड्यन्त्र का जाल बिछा रहे थे कि उनके घृणित आक्षेपों का पूरा आधार तथा कारण स्पष्ट मालूम हो जाता है। असल में कम्पनी को अवध के शासन में सुधार की चिन्ता नहीं थी, उसको रुपया चाहिए था। उनकी नीयत के बारे में मसीहुद्दीन ने लिखा है:—

"सन् १८४८-४९ में ब्रिटिश सेना की हालत बड़ी ख़राब थी। पंजाब में मुल्कराज दबाये नहीं दबता था। चिलियांवाला में अंग्रेज़ बुरी तरह से हारे थे। कम्पनी के सिपाही काम छोड़ रहे थे। ईरान और काबुल से हिन्दुस्तान पर हमला करने के लिए सेना आने वाली थी। ऐसे नाज़ुक़ समय में उनका साथ दिया था वाजिदअली शाह ने। सन् १८५१ में लन्दन की नुमायश में हिन्दुस्तान से बहुत क़ीमती नुमायशी चीज़ें बादशाह ने भेजी थीं...अंग्रेज़ों को रुपये की ज़रूरत थी।"

१. सर जेम्स के नाम २ जनवरी, १८५२ का पत्र, वास्तव में अवध सरकार का कम्पनी पर ४ करोड़ रुपया ऋण था।

२. १२ जनवरी, १८५२ का पत्र।

अवध पर अंग्रेजों की आंख ऐसी गड़ी थी कि स्लीमन ने अपने एक पत्र में लिखा है :—[१]

"कुछ वर्ष तक यहां सन्तोषजनक हुकूमत हो जावे तो यह भारतवर्ष का सबसे अच्छा प्रदेश होगा, क्योंकि भारत का ऐसा कोई हिस्सा नहीं है जो इतना अच्छा हो—तथा जिसे क़ुदरत की इतनी बरकत प्राप्त हो।"

अस्तु, जिस बादशाह की निन्दा करते-करते तत्कालीन रेसिडेन्ट स्लीमन थकते नहीं हैं, उसके सम्बन्ध में तत्कालीन सहायक रेसिडेन्ट मेजर (उस समय कप्तान) बर्ड की राय है:—

"स्लीमन, आउट्रम, डलहौज़ी, जिसे देखिए, वही चिल्ला रहा है कि बादशाह का दरबार हींजड़ों और गवैयों से भरा था ... जिस रनिवास में परस्पर द्वेष तथा ईर्ष्या फैली हुई हो, वहां हींजड़ों का समाज प्रबल हो उठना अनिवार्य है ... बादशाह के बारे में लार्ड डलहौज़ी लिखते हैं—"वज़ीर अली के ज़माने से एक भी अवध नरेश स्वभाव से या आदतन निर्दय या क्रूर नहीं रहा है। वे सभी सज्जन, दयालु तथा उदार रहे हैं .... और हम कैसे कल्पना कर सकते हैं कि एक आदमी सज्जन भी हो और फिर अत्यधिक नीचतम लोगों के साथ रहता हो ..."[२]

अवध के भूतपूर्व रेसिडेन्ट जेनरल लो लिखते हैं :—"अंग्रेजी समाज में अवध के नरेशों को अपनी प्रजा पर निर्दय अत्याचार करने वाला कहा गया है ... अब, इस प्रकार की भाषा निश्चयतः असत्य है विशेष कर पिछले पांच बादशाहों के लिए। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह खेद की बात है कि उन्होंने अपने कामों को बुरे ढंग से प्रतिपादित किया ... पर व्यक्तिगत रूप से हरेक नरेश ने नियमित रूप से, ध्यानपूर्वक, सौजन्य तथा सौहार्द्र के साथ अपने कार्य का संचालन किया है ...।[३]

फ्रेन्च विद्वत् परिषद् के सदस्य राज्य की संस्था एकोल में हिन्दुस्तानी भाषा के अध्यापक महाशय गार्सिया दि तासी ने बादशाह वाजिदअली शाह की बड़ी प्रशंसा की है तथा उनके साहित्यिक गुणों की बड़ी तारीफ़ की है और लिखा है कि उनकी जो रचनाएं यूरोप में पहुंच जाती थीं, उनका बड़ा आदर होता है।[४]

१. सर अर्स्कइन पेरी के नाम २ फरवरी, १८५० का पत्र। २. अवध की डाकाज़नी—मेजर बर्ड, पृष्ठ १५३, ३. कम्पनी का बादशाह पर अभियोग—Oude Blue Book जेनरल लो का कथन, पृष्ठ २२५। ४. M. Garcia de Tassy, Professor of Hindustani at ECOLE IMPERIAL, Paris.

ऐसे नेक व्यक्ति को उनका राज्य छीनने के लिए इतना बदनाम क्यों किया गया? मेजर बर्ड ने इस विषय में एक बड़ी अच्छी और मार्के की बात कही है:—

"निस्सन्देह बादशाह अपने समय का अधिक अच्छा उपयोग कर सकते थे पर उन्हें ऐसा करने से रोकने का दोष किसका था?"[1]

बादशाह ने स्वयं लिखा है:—

१. मैंने शासन प्रारम्भ करते ही जनता की शिकायतों को सुनने के लिए बक्स बनवाये।
२. मेरे शासन में न्याय का प्रबंध बहुत निष्पक्ष था।
३. मेरे न्यायाधीश बड़े योग्य व्यक्ति होते थे।
४. मैं चाहता था कि अपनी सेना का पुनः संगठन करूं, कई अच्छे पर बर्खास्त कर्मचारियों को काम पर बहाल करूं। मैंने यह भी निश्चय किया था कि अपनी सेना का स्वयं निरीक्षण किया करूं और मैंने उस सेना को ठीक ढर्रे पर लाने के लिए कुछ प्रबंध भी किया पर रेसिडेन्ट कर्नल रिचमौन्ड और फिर कर्नल स्लीमन ने इन बातों की शिकायत की और स्वयं मुझसे बातें कीं...मना किया...अतः मैंने तुरन्त यह इरादा छोड़ दिया और अपना ध्यान केवल राज्य के शासन में लगाने लगा।
५. लार्ड हार्डिज की सलाह के अनुसार मैंने "अमानी" ढंग से लगान वसूली शुरू की।[2]

बादशाह ने कम्पनी को जो उत्तर भेजा है, उसमें उन्होंने इन बातों को तथा कम्पनी के दोषारोपण का जो उत्तर दिया है, उसका ज़िक्र हम ज़रा विस्तार के साथ आगे करेंगे।

शासन सुधार के प्रस्ताव

बादशाह को गद्दी पर बैठे कुछ ही महीने बीते होंगे कि गवर्नर जेनरल लार्ड हार्डिज पंजाब का दौरा समाप्त कर कलकत्ता जाते हुए कानपुर में ठहरे। उनके आने के पहले ही उनके निजी सचिव श्री इलियट तथा श्री इंकमैन लखनऊ

१. मेजर बर्ड—पृष्ठ १५९। २. बादशाह का उत्तर।

आये। इलियट उस समय का इतिहास लिख रहे थे। उनको बादशाह के पुस्तकालय से कई अमूल्य पुस्तकें मिलीं जिसे वे मांग कर ले गये। इलियट का "भारत का उद्यान"[1] बड़ा प्रमाणित तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कुछ वर्षों बाद इनका देहान्त कानपुर में ही हुआ था।

लार्ड हार्डिज के आने की सूचना मिलते ही २२ अक्टूबर १८४७ को बादशाह स्वयं कानपुर के लिए रवाना हुए। अपने कर्मचारी वसीह अली को इन्तज़ाम करने के लिए पहले ही रवाना कर दिया गया था। २६ नवम्बर, शनिवार को बड़े लाट नवलगंज रहमतगंज आये और वहीं पर बादशाह की ओर से उनका बड़ा शानदार स्वागत हुआ। राजा दर्शनसिंह नवाब के कैम्प के इंचार्ज थे। समूची सड़क पर सुर्ख़ी बिछायी गयी थी। बादशाह बड़े लाट को लखनऊ लिवा लाये। वहां उनके स्वागत के लिए एक सुन्दर नक़ली बाग़ बनाया गया था। खूब नाच गाना हुआ। इतवार तक बड़े लाट कैम्प में रहे। बादशाह गवर्नर जेनरल से मिलने गये और फिर वे बादशाह के यहां मिलने आये।

बादशाह जब मिलने गये तो उन्होंनें बड़े लाट के कर्मचारियों में ३४६५ रुपया इनाम में बांटा। बादशाह का अपने द्वार पर स्वागत करने के लिए बड़े लाट भी हाथी पर बैठ कर आये। उस समय तमाशा देखने वालों की ऐसी भीड़ इकट्ठी हो गयी कि पुलिस भी न संभाल सकी और एक तमाशाई एक हाथी के पैरों के नीचे कुचल गया।[2] बादशाह अपने साथ ३८ व्यक्ति ले गये थे जिसमें १२ ख़वास थे। बड़े लाट के यहां ३६ आदमी कुर्सी पर बैठे।

गवर्नर जेनरल ने कहा—"हम मुश्तहक़ मुलाक़ात थे।" उन्होंने अवध के बादशाह के प्रति कम्पनी की ओर से मित्रता प्रकट की तथा कहा कि "हमने आपके सभी इख़्तियारों का आदर किया है।" यह भी कहा कि "लखनऊ में रेसिडेन्ट हमारा नुमाइन्दा है। वह हमारी-आपकी सेवा के लिए है।" गवर्नर जेनरल ने ५१ किश्ती सामग्री बादशाह को तथा ३० किश्ती वली अहद को भेंट की। बादशाह की भेंट में ४ हाथी, २ चांदी के हौदे, ६ घोड़े मय विलायती साज के, पशमीने का एक ख़ीमा तथा जवाहरात से भरी किश्ती थी। इन सामानों को लाने वाले को बादशाह ने १००० रुपया नक़द इनाम दिया। चाय पानी हुई।

जब बादशाह के यहां गवर्नर जेनरल आये तो उन्होंने भी ५१ किश्तियाँ भेंट

१. H. M. ELLIOT.—Garden of India. २. **सलातीने अवध।**

कीं। बहुत क़ीमती सामान दिया। सलातीने अवध के लेखक का कहना है कि बादशाह ने दो करोड़ रुपया या उतनी क़ीमत के जवाहरात चुपचाप लार्ड मायरा यानी लार्ड हार्डिंग को घूस दिया था। गवर्नर जेनरल जब मिलने आये थे तो रेसिडेन्ट रिचमौन्ड ने नवाब अमीनुद्दौला को भी अपने साथ ले लिया था। रेसिडेन्सी के मीरमुंशी मुंशी जानकी प्रसाद तथा खजान्ची बाबू भैरवचन्द और अखबारनवीस लालजी भी साथ थे। गवर्नर जेनरल के भोजन, स्वागत, चाय पानी आदि का प्रबंध बादशाह की ओर से वसीह अली के ज़िम्मे था। उनके खजान्ची बाबू नानकचन्द थे।

बादशाह तथा गवर्नर जेनरल में दो घण्टे तक अकेले बातें होती रहीं। बादशाह ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—"लार्ड हेस्टिंग्स तथा लार्ड ऑकलैन्ड ने जो मिहरबानियाँ की थीं, उसका वादा कीजिए तो हाथ छोड़ूं।"[१] बड़े लाट ने क़बूल कर लिया। तब बादशाह ने हाथ छोड़ा।

देखने में तो बहुत सी बातें तय हो गयीं। निश्चय हुआ कि लगान वसूल करने वालों से ज़मानत ली जाय। न्याय विभाग के वास्तविक प्रधान बादशाह स्वयं होंगे तथा उनके सहकारी रेसिडेन्ट होंगे। रेसिडेन्ट को यह भी आदेश हुआ कि बादशाह के कामों में बेकार दस्तन्दाज़ी न किया करें। हर तहसील यानी चकहे पर एक न्यायालय कायम किया गया।

देखने में यह यात्रा शान्ति से समाप्त हो गयी। पर मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं कि १२ नवम्बर १८४७ को बड़े लाट लखनऊ से विदा हुए। मिस्टर इलियट रात को रवाना हुए। बादशाह बड़े लाट को शहर के नाके तक छोड़ने गये थे। बड़े लाट के ठहरने तथा खाने-पीने का इन्तजाम मिर्ज़ा वसीहअली के ज़िम्मे था। उनके प्रबंध से बड़े लाट इतने प्रसन्न हुए कि लखनऊ छोड़ने के पहले उनके (वसीहअली के) घर भी गये थे।[२] पर लार्ड हार्डिंग चुपचाप रेसिडेन्ट को यह लिखित आदेश दे गये कि १८३७ में मुहम्मदअली के साथ संधि में यह तय हो चुका है कि यदि देश का शासन गड़बड़ हो तो इन्तज़ाम कम्पनी खुद अपने हाथ में ले सकती है इसलिए कम्पनी कई वर्षों की मुद्दत पर अवध को ठीके पर ले ले—मुमालिक महरूसा अमानी।[३] मेजर बर्ड के कथनानुसार कलकत्ता पहुंच कर लार्ड हार्डिंग ने २३ नवम्बर, १८४७ को वहां से रेसिडेन्ट के द्वारा बादशाह को एक पत्र भेजा

१. सलातीने अवध २. वही ३. वही

था जिसे आदेश पत्र कहना चाहिए।[1] कर्नल स्लीमन ने अपनी डायरी में इस पत्र को संक्षेप में दिया है। वे लिखते हैं :—

"रेसिडेन्ट रिचमौन्ड बादशाह के पास (गवर्नर जेनरल के आदेश के आधार पर) एक लिखित स्मृतिपत्र ले आये और उसे बादशाह को पढ़कर सुनाया। ...सन् १८०१ के अहदनामे के अनुसार बादशाह ने राज्य में चारों ओर निःशुल्क न्याय अदालतें स्थापित करने का आश्वासन दिया था...हमने वचन दिया है कि नरेश के सभी अधिकारों की हम रक्षा करेंगे पर जनता की रक्षा भी हमारी ज़िम्मेदारी है...गवर्नर जेनरल को आशा है कि बादशाह अपने पूर्व-वर्त्ती नरेशों से अधिक बुद्धिमत्ता के साथ शासन करेंगे और ऐसी स्थिति नहीं पैदा करेंगे कि उनको अपनी दोस्ताना सलाह के बदले हुक्मनामा जारी करना होगा यानी पूरा हस्तक्षेप करना होगा...लार्ड विलियम बेंटिंक ने २० जनवरी १८३१ को बादशाह नासिरुद्दीन हैदर से इसी संबंध में निजी बातचीत की थी...उस समय उन्होंने बादशाह को जो चेतावनी दी थी—यदि वर्त्तमान बादशाह उस चेतावनी की उपेक्षा करेंगे तो रेसिडेन्ट को तथा गवर्नर जेनरल को मजबूरन यह सलाह देनी होगी कि ब्रिटिश सरकार शासन अपने हाथों में ले ले।"[2]

राजकाज में सुधार करने के लिए बादशाह को दो वर्ष का समय दिया गया। तहसील की अदालतों पर रेसिडेन्ट के आदमी तैनात हुए। बादशाह ने शासन-सुधार का आश्वासन दिया। ३० नवम्बर, १८४७ को रेसिडेन्ट ने बादशाह का उत्तर कलकत्ता लिख भेजा। वहां से २४ दिसम्बर, १८४७ को पत्र लिखा गया कि गवर्नर जेनरल बादशाह के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हैं।

१२ फरवरी, १८५० को सीतापुर से अपनी डायरी में कर्नल स्लीमन लिखते हैं कि चेतावनी को दिये दो वर्ष हो गये पर "बादशाह ने शासन में सुधार के लिए या अपनी निजी विलासिता कम करने के लिए कुछ नहीं किया है। सार्वजनिक कार्यों में उन्होंने रत्ती भर ध्यान नहीं दिया है। इसके पूर्व उन्होंने अपने पिता की नक़ल शुरू की थी। कुछ सार्वजनिक काम भी देखते थे। कभी-कभी शाही ख़ान्दान के लोगों से या कम से कम शहर के रईसों से मिल लिया करते थे। मुहक्मों के प्रधानों से मिल लेते थे। पर इसमें भी उनको कष्ट होता था और उन्होंने शीघ्र

१. सलातीने अवध में लिखा है—"इस ख़त को मुहब्बतनामा नहीं, हुक्म-नामा कहना चाहिए।" २. स्लीमन की डायरी, भाग २, पृष्ठ २०३

ही इस परिश्रम को भी समाप्त कर दिया. . .मेरा ख़्याल है कि वे अपनी पीड़ित जनता की कोई अर्ज़ी कभी नहीं पढ़ते या दूसरों से पढ़वा कर सुनते हैं. . . जनता के कामों में उनकी कोई रुचि नहीं है और न उसकी रत्ती भर परवाह है।"[1]

इसलिए, स्लीमन के अनुसार—"एकमात्र उपाय यही है कि पूरे शासन को अपने हाथ में ले लिया जाय और शासन का खर्च काटकर जो कुछ बचे उसे बादशाह तथा शाही घराने में उनके आश्रित पेंशनभोगी लोगों को पेंशनें दी जायं। दीवानी के मुहक्मे में जहां तक हो अवध के पढ़े-लिखे लोगों को नौकरियां दी जायं।"[2] १८५१ में स्लीमन ने यहाँ तक लिखा था कि "हमारी सरकार किसी भी सूरत में मौजूदा हुकूमत का समर्थन नहीं कर सकती।"

किन्तु, क्या यह सत्य है कि बादशाह राजकाज तथा शासन-सुधार से इतने उदासीन और अय्याशी में पड़े हुए थे? स्लीमन के बाद रेसिडेन्ट जेनरल आउट्रम को भी यही शिकायत थी—"शुरू में बादशाह दफ़्तर का काम देखते थे पर बाद में छोड़ दिया। अब ऐश व आराम में रहते हैं।" बादशाह लिखते हैं कि "हमने हमेशा अमूर सलतनत में तवज्जह रखी. . .लगान का बन्दोबस्त ३ से ७ साल तक रहता है। एकदम लगान मुक़र्रर कर देने से जनता को कष्ट पहुंचता है और राज्य का भी नुकसान होता है।"

"हींजड़ों" की शिकायत के बारे में बादशाह लिखते हैं:—"ये ख़्वाजासरा बहुत ही योग्य तथा क़ाबिल लोग होते थे। चूंकि हम मुसलमानों में पर्दा होता है इसीलिए मुगलों के दरबार की तरह हमारे महलों में भी आने-जाने लायक़ यही थे। पर ये बड़े ज़ी-इल्म लोग होते थे। नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला की बेगम के ६० लाख रुपये का इन्तजाम अलमाशअली खां ख्वाजासरा के हाथों में था। अनेक क़ाबिल ख़्वाजासरा हमारे बुजुर्गों के वक़्त से हजारों रुपये माहवार पेंशनें पाते रहे हैं। हमारे कर्मचारी मसीहुद्दौला, हकीम दवामुशुफ़ाउद्दौला, सेहतुद्दौला, तबीबुद्दौला, आफ़ताबुद्दौला, ये सभी लोग ज़ी-इल्म थे। ख्वाजासरा अनीसुद्दौला के पास रियासत का बहुत ज़्यादा काम था।"[3]

१. डायरी भाग–२, पृष्ठ २०६ २. वही, पृष्ठ २१० ३. बादशाह का कम्पनी को उत्तर, मई, १८५७।

शासन-सुधार के प्रस्ताव

बादशाह् शासन-सुधार के लिए बहुत उत्सुक थे तथा अंग्रेज़ों की सलाह् से शासन चलाना चाह्ते थे। इस बात को तत्कालीन सहायक रेसिडेन्ट मेजर बर्ड ने सिद्ध कर दिया है। वे लिखते हैं कि सन् १८४८ के प्रारम्भ में बादशाह् ने अपने वज़ीर नक़ी ख़ां से ब्रिटिश ढंग का शासन चलाने के लिए रेसिडेन्ट के द्वारा गवर्नर जेनरल से योजना मांगी। रेसिडेन्ट रिचमौन्ड ने अपने सहायक (उस समय कप्तान) बर्ड को आदेश दिया कि मस्विदा तैयार करें। जब रिचमौन्ड तथा बर्ड के संयुक्त प्रयत्न से तथा बादशाह् की स्वीकृति से मस्विदा तैयार हो गया तो आगरा[1] के लेफ़्टेनेन्ट गवर्नर मि० टॉमसन के पास पूरी योजना कप्तान बर्ड के हाथ भेज दी गयी। श्री टॉमसन ने काफ़ी परिश्रम करके, बर्ड से परामर्श कर सुधार योजना में संशोधन करके रेसिडेन्ट को वापस किया। योजना तथा संशोधन इस प्रकार है:—

श्री टॉमसन की टिप्पणी	योजना का प्रस्ताव
१. दो प्रदेशों से क्या मतलब है? यह कहिए कि २०-३० लाख रुपया मालगुज़ारी देने वाली भूमि, मेरे ख़्याल से रेसिडेन्ट के सुपुर्द करने का विचार केवल अस्थायी समय के लिए है।	१. ब्रिटिश राज्य से सटे हुए दोनों प्रदेश तुरंत रेसिडेन्ट की देखरेख में कर दिये जायं।
	२. लगान वसूली तथा अन्य शासकीय कार्य के लिए नीचे लिखे कर्मचारी नियुक्त हों—(अ) एक यूरोपियन सुपरिन्टेन्डेन्ट हो जिसका वेतन ७०० रुपया माह्वार हो और १०० रुपया माह्वार दफ़्तर का ख़र्च हो।
(ब) उसे डिप्टी कलक्टर न कहकर "सहायक" कहिए, उसे हर विभाग पर अधिकार हो।	(ब) हर चार-पांच लाख रुपये की वसूली पर एक डिप्टी कलक्टर हो जिसे ३०० रुपया मासिक वेतन तथा १०० रुपया दफ़्तर ख़र्च हो।

१. आगरा उस समय उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की राजधानी था।

३. ठीक तथा उचित ढंग से माल-गुज़ारी का निश्चय डिप्टी कलक्टर अपने क्षेत्र के हर गांव का दौरा करके करेगा। क़ानूनगो से बुलाकर पूछेगा कि पिछले सात वर्षों में किस दर से वसूली की गयी थी। वह रिपोर्ट लेगा तथा देगा कि जो वसूली जिस दर पर उचित है, वह संतोषजनक है या नहीं?

४. मुझे भय है कि इससे काम नहीं चलेगा। यह इतना नाजुक काम है कि पंचायत इसे पूरा न कर सकेगी। इससे वेहतर यह है कि वसूली की एक निश्चित रक़म निर्धारित करके उसका बंटवारा पंचायत पर छोड़ा जावे।

४. मालगुज़ारी कितनी हो, इसका निर्णय हर गांव में अति प्रतिष्ठित लोगों में से पांच को चुनवाकर उस पंचायत द्वारा कराना चाहिए। पंचायत तुरंत बनायी जाय और वह जिस दिन चुनी गयी है, उसी दिन के लिए हो।

५. डिप्टी कलक्टरों को पंचायत के सदस्यों की सूची रखनी पड़ेगी।

५. पिछला पट्टा काम दे सकता है। हर निर्णय की सूचना सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास भेजकर उसकी स्वीकृति मंगा लेनी चाहिए।

५. जिस मामले में "क़बूलियात" पर झगड़ा हो, उसमें बिना सुपरिन्टेन्डेन्ट की स्वीकृति के कार्यवाही न हो सकेगी।

६. पैमायश वग़ैरह् का अधिकार होना चाहिए पर मैं नहीं समझता कि आमतौर पर ऐसा करना ज़रूरी है।

६. डिप्टी कलक्टर को पूरा अधिकार होगा कि वह ज़मीन की पैमायश करे तथा इस विषय में सभी काग़ज़ात तथा पट्टा आदि की छानबीन कर सके।

७. इससे काम न चलेगा। यह नियम वहीं लाभकर होगा जहां भूमि के अधिकार अच्छी तरह से समझाये गये हैं और लोग समझते हैं।	७. बिना मीयाद के ख़त्म हुए कोई क़बूलियात[1] भंग नहीं हो सकता। यदि सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा डिप्टी कलक्टर "क़बूलियात" में निश्चित मालगुज़ारी को उचित समझते हैं पर ज़मींदार उसे देना अस्वीकार करता है तो डिप्टी-कलक्टर उस ज़मींदारी को नीलाम पर चढ़ा देगा तथा सबसे ऊंची बोली बोलने वाले को दे देगा। यदि पुराना ज़मींदार चाहे तो उसे ही सबसे ऊंची बोली की रक़म पर ज़मींदारी दी जा सकती है अन्यथा बोली बोलने वाले की होगी। क़बूलियात की मीयाद तक उसी पुराने ज़मींदार को लगान का दस प्रतिशत् "नानकार"[2] मिलेगा।
८. इस मामले में आजकल जो भी प्रचलित नियम हो, उसका पालन करना चाहिए।	८. किसी ग्राम या उसके कुछ अंश का मालिक 'नानकार' के एवज़ में कुछ भूमि प्राप्त कर सकता है पर इस भूमि पर तब तक कोई मालगुज़ारी नहीं देनी होगी जब तक कि नानकार का पट्टा है। पर बदले में दी जाने वाली ज़मीन का निश्चय सुपरिन्टेन्डेन्ट की स्वीकृति से डिप्टी-कलक्टर करेगा।

१. क़बूलियात—जितना लगान देना स्वीकार कर पट्टा लिखा हो।
२. दाल रोटी का ख़र्च।

९. मैं इन मामलों में ज़्यादा जांच नहीं करना चाहता। लोग इन चीज़ों को खूब समझते हैं और आपस में प्रबंध कर लेंगे।	९. जिस ज़मीन के बहुत से हिस्सेदार हैं उसके बारे में यह अनुमति दी जा सकती है कि सब हिस्सेदार मिलकर एक व्यक्ति को नामज़द कर दें जो सबकी तरफ़ से लगान चुकता करे पर डिप्टी कलक्टर को हरेक हिस्सेदार का हिस्सा स्पष्ट कर देना होगा और सुपरिन्टेन्डेन्ट की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी।
१०. असेसमेन्ट का एक रजिस्टर होना काफ़ी है। क़ानूनगो अपना रजिस्टर खुद रखते हैं।	१०. निर्धारित मालगुज़ारी की एक प्रति क़ानूनगो के पास, एक डिप्टी कलक्टर के पास तथा एक सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास रहेगी। आवश्यकता पड़ने पर सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने प्रति की नक़ल रेसिडेन्ट के द्वारा अवध सरकार के पास भेज सकेंगे।
११. एक सीधा सादा पट्टा बना लो जो प्रचलित ढंग पर हो और उसमें मालगुज़ारी की पूरी रक़म और क़िस्तें दी गयी हों।	११. अभी तक तरीक़ा यह है कि क़बूलियात, एक़रारनामा और किस्तबन्दी हरेक के अलग-अलग पट्टे होते हैं। इसके बजाय ज़मींदार को एक अहदनामा देना होगा कि उसकी अमुक रक़म मालगुज़ारी में, अमुक क़िस्तों में देना है। वह अपनी सरहद का उल्लंघन नहीं करेगा तथा किसानों पर कोई ज़ोर जुल्म नहीं करेगा।
१२. यह कठिन काम है। अभी ज़रूरत भी नहीं है।	१२. हर डिप्टी कलक्टर के सब-डिविजन में एक किताब तैयार की जायगी जिसमें हरेक गांव का पूरा हिसाब, खेतों की संख्या,

१३. मैं चाहूंगा कि दीवानी के मामले पंचायत के सुपुर्द कर दिये जायं और डिप्टी कलक्टर को दीवानी तथा फ़ौजदारी दोनों मामले करने का अधिकार हो तथा दो वर्ष के ऊपर की सज़ा वाले हर मामले में और नीचे की अदालतों के फ़ैसले की उसके यहां अपील हो सकेगी।

प्राणदंड की सजा में रेसिडेन्ट तथा बादशाह की स्वीकृति आवश्यक है।

हिस्सेदारों की संख्या, ज़मींदार का नाम, लगान की रक़म, क़िस्त की रक़म, मीयाद और मुद्दत आदि दर्ज रहेगा।

१३. मालगुज़ारी की वसूली सम्बन्धी अपने कार्यों के अतिरिक्त डिप्टी कलक्टरों को ठगी, डकैती तथा हत्या के मामले छोड़ कर (ठगी तथा डकैती को समाप्त करने के लिए सरहद्दी पुलिस बन चुकी है) अन्य सभी मामलों में मुकद्दमे सुनेंगे तथा कुछ नियमों द्वारा उनके अधिकारों का नियमन हो जायगा। उनके अंतर्गत फ़ैसला करेंगे और उसकी सूचना सुपरिन्टेन्डेन्ट को भेजेंगे जो रेसिडेन्ट तथा उसके द्वारा बादशाह तक पहुंचा देंगे।

१४. डिप्टी कलक्टर जो सज़ा देंगे तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट जिसकी स्वीकृति दे देंगे उस सज़ा को बादशाह की सरकार को कार्यान्वित करना ही होगा। इस विषय में बादशाह की ओर से और कुछ पूछतांछ नहीं हो सकती। हां, रेसिडेन्ट के यहां अपील हो सकती है। उसका फ़ैसला अंतिम होगा।

रेसिडेन्ट की अनुमति से किसी भी फ़ैसले को फिर से विचार के लिए भेजा जा सकता है। फ़ैसला रद्द भी किया जा सकता है।

१५. जैसी अवध फ्रांटियर पुलिस है, वैसी ही एक पुलिस सेना और संगठित की जाय जो सुपरिन्टेन्डेन्ट के मातहत हो और हर डिप्टी कलक्टर की मातहती में ५०० पुलिसमैन हों।

१६. मैं इसे मना नहीं करूंगा। यदि लोग बिलकुल निरवलम्ब हो जायंगे तो डकैती वग़ैरह पड़ने लगेगी।

१६. किसी भी ज़मींदार को सशस्त्र सेना रखने का अधिकार न होगा।

१७. मैं समझता हूं कि इस मामले में सावधानी बरतनी चाहिए। ऐसे कर "सयार" के अंग हैं और ऐसा अधिकार मिल चुका है। एकदम से प्रचलित प्रथा को बिना हरजाना दिये समाप्त कर देना ख़तरे से ख़ाली न होगा।

१७. ज़मींदारों ने निजी तौर पर जो टैक्स लगा रखे हैं या उनके इलाक़े से व्यापारी माल की जो आमदरफ़्त होती है, उस पर वे चुंगी लेते हैं—वह सब बन्द कर देना होगा। ऐसा करना अपराध समझा जायगा और इसके दंड में ज़मींदारी तक ज़ब्त हो सकती है।

१८. सुपरिन्टेन्डेन्ट, उनके दफ़्तर, डिप्टी कलक्टरान, पुलिस, सेना वग़ैरह का वेतन नियमित रूप से हर महीने बादशाह के खज़ाने में भेजना होगा और वहां से यह रक़म सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास भेज दी जायगी जो वितरित वेतन की रसीद भेजा करेंगे।

१९. पिछली अदायगियों का हिसाब, क़ानूनगो का तख़मीना तथा स्थानीय लोगों से जांच कर तुरत बन्दोबस्त किया जा सकता है।

१९. जिस भाग में शुरू से इजारा प्रथा से लगान वसूली होती रही हो, वहां पर लगान का ठीक से निर्धारण करने के लिए क्या उपाय किया जाय?

२०. बेहतर होगा कि सब नाप जोख न करा कर "क़बूलियात" के आधार पर निर्णय हो।

२०. क्या बेहतर होगा—हरेक की ज़मीन की पैमायश करा लेना या बादशाह के कर्मचारी जो क्षेत्रफल बतला दें, उसे ही मान लेना !

२१. बीघा में ही रहने दो। यदि स्थायी रूप से ब्रिटिश ढंग का बन्दोबस्त करना हो तो एकड़ का हिसाब बनाओ।

२१. यह ध्यान रखते हुए कि आसपास के ज़िलों में बीघा के हिसाब से खेतों की नाप है, अवध के जिलों में एकड़ के हिसाब से नाप की जाय या नहीं ?

२२. जब तक पुराना पट्टा मौजूद है, उसे मानना चाहिए। इनकी मीयाद समाप्त होने पर प्रस्तावित तख़मीना बनाकर नया पट्टा बने।

२२. पुरानी क़बूलियात को समाप्त करना होगा। इनकी मीयाद ख़त्म होने पर ही नया पट्टा करना होगा। क्या ज़मींदार की पिछली स्वीकार रक़म के आधार पर नये पट्टे बनें या कई बरस की वसूली से तख़मीना बनाया जाय।

२३. दो, तीन या चार परगना के ऊपर एक डिप्टी कलक्टर ५ से १० लाख रुपये तक की वसूली करे, उसके दफ़्तर का ख़र्च और ४५०० रुपया वार्षिक वेतन मिले।

२३. कितनी रक़म की वसूली हो और उसका वेतन वसूली के किस अनुपात में हो।

२४. यह तो देश की भीतरी हालत पर निर्भर करेगा। शान्ति के समय में कम, अशान्ति के समय अधिक।

२४. लगान की वसूली के लिए एक डिप्टी-कलक्टर के पास कितनी पुलिस हो ?

२५. देशी लोग बहुत अच्छा हिसाब किताब रखना जानते हैं। उसमें सुधार सम्भव नहीं है, हां, हिसाब रखने के काम में सुधार हो सकता है।

२५. मालगुज़ारी का हिसाब किताब रखने का सबसे सरल तरीक़ा क्या है ?

२६. कुछ गांवों के एक मालिक हो सकते हैं अतः उनके नाम से बन्दोबस्त होगा वरना मौज़ावार बन्दोबस्त होना चाहिए।

२६. हरेक गांव का नम्बर देना काफ़ी होगा या हरेक हिस्से का नम्बर होना चाहिए—यानी हरेक का इन्दराज होना चाहिए।

२७. एक प्रतिनिधि के द्वारा अदायगी का तरीक़ा अच्छा है।

२७. क्या ज़मींदारी के हरेक हिस्सेदार को अपना लगान अलग से जमा करना चाहिए?

२८. बक़ाया रखने वाले को हम नानकार नहीं देते। आप पुरानी रीति बरतें।

२८. यदि ज़मींदार की मालगुज़ारी बक़ाया हो जाय और उसके गांव की वसूली कोई दूसरा ज़मींदार इजारा पर करता हो तो उसे कितना प्रतिशत नानकार मिले?

२९. यह तो परिस्थिति पर निर्भर करता है। यदि वह पुराना बक़ाया अदा कर दे और ठीक से काम करने का वादा करे तो उसे फिर मौक़ा दिया जा सकता है। ?

२९. यदि कोई ज़मींदार बकाया की वजह से हटा दिया गया हो तो क्या मौजूदा क़बूलियात की मीयाद के पहले उसे फिर से ज़मींदारी दी जा सकती है?

३०. सरहद का फ़ैसला पंचायतों द्वारा करना ही श्रेष्ठ होगा पर शान्ति कायम रखने के लिए ज्यादा दस्तंदाज़ी ठीक नहीं है।

३०. अपनी ज़मींदारी की सरहद का फ़ैसला क्या ज़मींदार पर ही छोड़ दिया जाय?

३१. मैं सोचता हूं कि कुछ और अधिक सख़्त दंड-विधान ठीक होगा। पर जो भी दंड-विधान हो, वह सीधा सादा हो, देशी विचार के अनुकूल हो, उचित और उदार हो।

३१. क्या दण्ड देने के लिए कुछ नियम बना लिये जायं या मौजूदा न्याय शासन की प्रथा ठीक है?

३२. उन्हीं पर छोड़ दीजिए। वे उसकी निरर्थकता तथा व्यर्थ का ख़र्च समझ कर आप ही समाप्त कर देंगे।

३२. क्या ज़मींदारों को सशस्त्र दल रखने का अधिकार दिया जाय?

मैंने शासन-सुधार के प्रस्ताव तथा लेफ्टेनेन्ट गवर्नर मि० टॉमसन की टीकाओं को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। यह दस्तावेज़ बड़े मार्के का है।[1] इसे पढ़ने से स्पष्ट है कि शुरू में निश्चित प्रस्ताव हैं और बाद में प्रश्न किये गये हैं। सभी प्रस्तावों पर रेसिडेन्ट ने बादशाह से स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। अतएव यह भी स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार को प्रसन्न करने के लिए दुर्बल नरेश ने सब कुछ स्वीकार कर लिया था। मालगुज़ारी की वसूली, मुक़द्दमा, पुलिस, सेना, सभी कुछ कम्पनी को सौंपा जा रहा था। वे न्यायालय का सब काम रेसिडेन्ट को सौंपने को तैयार थे और इतना अपमान स्वीकार कर रहे थे कि रेसिडेन्ट के फ़ैसले के विरुद्ध वे भी कुछ नहीं कर सकते थे। शासन का इतना ही काम उनके ज़िम्मे रह गया था कि सबका वेतन नियमित रूप से सरकारी (रेसिडेन्ट के) ख़ज़ाने में भेज दिया करें। इतना नत-मस्तक होकर वे चलना चाहते थे। एक बात और स्पष्ट है। उस समय की लगान वसूली तथा तत्सम्बन्धी जिन बहुत सी बातों तथा क़ायदे क़ानूनों की स्लीमन ने अपनी डायरी में बड़ी निन्दा की है, उनमें से बहुत सी बातों का टॉमसन ने समर्थन किया है। यही नहीं, उन्होंने स्वयं लिखा है कि प्राणदण्ड की सज़ा में बादशाह की स्वीकृति आवश्यक है। कुछ सुझावों पर उन्होंने राय नहीं दी है। शायद इसलिए कि या तो वे सहमत न रहे हों या रेसिडेन्ट से बुरा न बनने के लिए कोई राय नहीं देना चाहते हों।

और इतना परिश्रम करके कप्तान बर्ड ने जो मस्विदा तैयार किया तथा आगरा से टॉमसन की टीका के साथ वापस लेकर आये उसे रेसिडेन्ट ने कलकत्ता भेज दिया। स्मरण रहे कि अन्तिम रूप से योजना छोटे लाट टॉमसन द्वारा बनायी गयी थी। रेसिडेन्ट ने उसका अन्तिम रूप बादशाह को भी नहीं दिखाया। यह योजना गवर्नर जेनरल के विदेशी विभाग के सचिव सर हेनरी इलियट[2] के पास भेजी गयी थी। उन्होंने गवर्नर जेनरल से परामर्श कर उस योजना को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि यदि बादशाह अपना समूचा राज्य छोड़ने को तैयार हों तो ईस्ट इंडिया कम्पनी उस पर विचार कर सकती है। अन्यथा कुछ टुकड़ों पर इतना परिश्रम बेकार है।

१. इसकी मूल प्रति शायद ब्रिटिश म्यूजियम में है २. सर हेनरी इलियट उस समय के अच्छे इतिहासकार हैं। बाद में उनकी मृत्यु कानपुर में हो गयी।

इस योजना को कप्तान (बाद में मेजर) बर्ड ने अपने पास रख लिया और रिचमौन्ड के उत्तराधिकारी स्लीमन को दे दिया। स्लीमन ने उसे उलट पुलट कर बर्ड को वापस कर दिया।

इलियट ने 'कुछ हिस्से' पर शासन का ज़िक्र किया है। वे, या गवर्नर जेनरल भी नहीं चाहते थे कि केवल देहातों पर ही उनका शासन रहे। दोनों लखनऊ वग़ैरह सब पर क़ब्ज़ा करना चाहते थे। इसके लिए राज्य के शासन तथा शासक दोनों को बदनाम करना तथा गाली देना नितान्त आवश्यक था। १९ दिसम्बर, १८४९ को, अपनी यात्रा में, शाहगंज में बैठे-बैठे स्लीमन साहब अपनी डायरी में यहां तक लिखते हैं:-

"आत्म-सम्मान, सिद्धान्त तथा मानवता की भावना से शून्य पक्के लफंगों की शिक्षा-दीक्षा के लिए अवध में इजारा (ठीके पर लगान वसूली करने वाला) के नाज़िम के स्थान से बढ़कर संसार में और कोई पाठशाला नहीं है।[१]...... जब तक हम अवध का पूरा शासन अपने हाथों में नहीं ले लेते, उसका शासन एक ऐसे बादशाह के हाथ में रहेगा जो अपनी प्रजा के बारे में कभी सोचता भी नहीं। जिसे आग्रह करके भी प्रजा की भलाई सोचने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता।[२] ....पर बादशाह में सब दोष होते हुए भी लखनऊ की जनता उससे स्नेह करती है, पसन्द करती है।[३]........"

२२ दिसम्बर, १८४९ को सुलतानपुर से स्लीमन लिखते हैं:—[४]

"मौजूदा बादशाह न कभी कोई अर्ज़ी पढ़ते हैं, या सुनते हैं या कोई रिपोर्ट देखते हैं। उन्हें अपने निजी हास-विलास से अवकाश नहीं है... उनके पास बिना मन से उनके कुछ रिश्तेदार घुसे रहते हैं जो बादशाह के मूर्खतापूर्ण भड़ैतियों की वाहवाही करते रहते हैं।"

डलहौज़ी और स्लीमन

लार्ड हार्डिंग (लार्ड मायरा) तथा रेसिडेन्ट रिचमौन्ड जिस यज्ञ की तैयारी कर गये थे उसमें आहुति देने के लिए नये गवर्नर जेनरल लार्ड डलहौज़ी ३ जनवरी, १८४८ को कलकत्ता पहुंचे। भारत आते ही उन्होंने अवध के लिए अपने मन का एक बहुत शातिर रेसिडेन्ट ढूंढ़ निकाला। रिचमौन्ड[५] का कार्यकाल समाप्त हो

१. भाग १. पृष्ठ १६३ २. वही, पृष्ठ १६४ ३. वही पृष्ठ १६१ ४. वही पृष्ठ १७८ ५. २९ नवम्बर १८४८ को रिचमौन्ड लखनऊ से चले गये।

रहा था। स्लीमन[१] उस समय झांसी में रेसिडेन्ट थे और झांसी की प्रसिद्ध रानी के पति महाराजा गंगाधर राव की सम्पत्ति तथा उनका राज्य कम्पनी के लिए ज़ब्त करना चाहते थे। १६ सितम्बर, १८४८ को डलहौज़ी ने स्लीमन को लिखा:—

"यह मेरे लिए सम्मान की बात है कि मैं आपसे प्रस्ताव करूं कि लखनऊ का रेसिडेन्ट बनना स्वीकार करें। विशेष कर ऐसे अवसर पर जब वहां निकट भविष्य में बहुत बड़ा परिवर्तन होने जा रहा है।"

स्लीमन १८४९ में अवध के रेसिडेन्ट नियुक्त हुए और उनकी नियुक्ति ने "अवध तथा उसकी बादशाहत के संहार पर मुहर लगा दी।" डलहौज़ी ने स्लीमन को जो पत्र १६ सितम्बर, १८४८ को लिखा था, उसमें उन्होंने अपनी नीयत तथा तबीयत साफ़ तौर पर खोल दी थी। लार्ड ने सलाह दी थी:—

"आप अवध की पूरी परिक्रमा कर लें और वस्तु-स्थिति को स्वयं जानने की चेष्टा करें... बादशाह को चेतावनी दिये दो वर्ष समाप्त हो रहे हैं और यदि शासन में काफ़ी वास्तविक सुधार नहीं हुआ है तो शासन-भार ब्रिटिश कम्पनी अपने हाथों में ले लेगी।"

अतएव स्लीमन जानते थे कि किस काम से उन्हें अवध बुलाया जा रहा है और पूरी तैयारी के साथ वे लखनऊ आये। लखनऊ में उनके सहकारी मेजर बर्ड ने लेफ्टेनेन्ट गवर्नर टॉमसन द्वारा तैयार की हुई योजना सामने पेश कर दी पर स्लीमन ने उसे ठीक से पढ़ा भी नहीं।

उन्होंने लखनऊ में पैर रखते ही बादशाह की निन्दा शुरू कर दी। ३० जनवरी, १८४९ के उनके एक पत्र का हवाला हम दे चुके हैं। २० मार्च, १८४९ को वे लिखते हैं:—

१. स्लीमन का जन्म ब्रिटेन के कार्नवाल जिले के स्ट्राटन ग्राम में ८ अगस्त, १७८८ को हुआ था। २१ वर्ष की उम्र में, अक्टूबर, १८०९ में ईस्ट इंडिया कम्पनी की बंगाल सेना की पैदल टुकड़ी में वे भर्ती हुए थे। २४ नवम्बर, १८५३ को उन्हें कर्नल की पदवी मिली और २९ नवम्बर, १८५४ को मेजर जनरल बनाये गये। लखनऊ में नियुक्ति के समय वे झांसी में तैनात थे। १८४९ के शुरू में लखनऊ आये। वे भारत में ४० वर्ष रहे। अगस्त, १८५४ में गहरी बीमारी के कारण उन्होंने छुट्टी ली और कुछ दिन कलकत्ता रहकर लंदन के लिए रवाना हुए पर रास्ते में ही, ६७ वर्ष की उम्र में, १० फरवरी, १८५६ को मर गये।

"बादशाह की बीमारी पहले जैसी है... उन्होंने अभी तक किसी यूरोपियन डाक्टर को दिखलाना अस्वीकार कर दिया है... यदि बादशाह मर गये तो नया अहदनामा किसके साथ होगा.... एक रीजेन्सी कौंसिल बनानी होगी जिसके हरेक सदस्य के कर्त्तव्य निश्चित होंगे। इस रीजेन्सी कौंसिल के सदस्य कौन हों, इस बारे में सबसे ठिकाने की सलाह राजमाता (मल्का किश्वर) से मिल सकती है पर उसे या राज-परिवार की किसी स्त्री को राजकाज में ज़रा भी भाग लेने की अनुमति नहीं देना है.... वर्त्तमान उच्च पदाधिकारियों को जितना वेतन मिलता है उसकी आधी रक़म आजीवन पेंशन कर दी जाय... रेसिडेन्ट रीजेंसी कौंसिल का अध्यक्ष हो.... जब तक वली अहद बालिग़ न हो जाय... बादशाह के भाई (मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत) बहुत ही उम्दा आदमी हैं.... उनसे भी सलाह ले लेनी चाहिए.... बादशाह जब स्वस्थ थे तभी राजकाज में विशेष ध्यान नहीं देते थे। अतएव उनकी बीमारी का ख़ास-आम पर कोई असर नहीं है।"

ऊपर लिखा पत्र डलहौज़ी के नाम है। इसमें बादशाह के भाई की तारीफ़ की गयी है पर डलहौज़ी के नाम ही १८ अगस्त, १८४९ के अपने पत्र में स्लीमन लिखते हैं—"अवध की भूमि भारत में सबसे अधिक उर्वर है। यहां के आदमी भारत में सबसे अच्छे हैं। हमारे शासन में यह चमन बन सकता है... बादशाह का भाई एकदम निकम्मा और किसी काम के लायक़ नहीं है। किसी ज़िम्मेदारी के योग्य नहीं है। वज़ीर में, उनके पद के अनुकूल एक भी गुण नहीं है और बादशाह का दिमाग़ ही सही नहीं है।"

इस पत्र के पहले, ८ मई, १८४९ को गवर्नर जेनरल के निजी सचिव[1] को स्लीमन ने लिखा था—"बादशाह अब तन्दुरुस्त हैं इसलिए जब तक वे गद्दी छोड़ें नहीं, हम वली अहद की नाबालग़ी के नाम पर रीजेंसी नहीं क़ायम कर सकते... वज़ीर, दीवान, गवैये, हींजड़े, इस समय सब क़सम खाकर एक हो गये हैं पर ऐसी एकता ज़्यादा दिन टिक नहीं सकती।"

इस प्रकार स्लीमन ने आते ही आग लगानी शुरू कर दी। पर लखनऊ उनको भी नहीं फला। कुछ ही महीने में वे घोड़े से गिर पड़े।[2] उनके जंघे की हड्डी टूट गयी। हाथी या तामजाम पर ही चल सकते थे। अवध की पूरी यात्रा

१. एच० एम० इलियट, इतिहासकार। २. ४ अप्रैल, १८४९ को वे अरबी घोड़े से गिरे थे।

भी उन्होंने तामजाम या हाथी पर की। बादशाह के प्रति उनका व्यवहार इतना बदतमीज़ी का था कि वाजिदअली शाह ऐसा सहिष्णु नरेश ही सहन कर सकता था। स्लीमन ने हुक्म दिया कि बादशाह अपने नाम के आगे "गाज़ी" न लिखा करें। गाजी मुसलिम धार्मिक उपाधि है। स्लीमन से इसका कोई सरोकार नहीं था। फिर भी बादशाह का अपमान तो करना ही था। बादशाह तथा रेसिडेन्ट के बीच में रोज़मर्रा के निकट सम्पर्क तथा परामर्श के लिए बादशाह के राजनैतिक सचिव का दफ़्तर रेसिडेन्सी में ही था। पर १ सितम्बर, १८५० को यह दफ़्तर वहां से हटा दिया गया और बादशाह के विरोध करने पर भी यह हुक्म क़ायम रहा कि महीने में दो बार बादशाह और रेसिडेन्ट एक दूसरे से मिला करें। यदि कभी कोई काम ज़रूरी आ पड़े तो सहायक रेसिडेन्ट मिल सकते हैं।

स्लीमन ने बादशाह को ज़लील करने का हर तरह से प्रयत्न किया था। एक रात को रेसिडेन्ट के बंगले में चार आदमी घुसे, शायद चोर थे।[१] तिलंगे ने बन्दूक़ चला दी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि सिपाही को नींद में कुछ ऐसा शुबहा हुआ था कि कुछ लोग दीवार लांघ रहे हैं। स्लीमन ने इसी घटना को ऐसा रूप दिया कि बादशाह ने स्वयं रेसिडेन्ट की जान लेने के लिए षड्यन्त्र किया था। बादशाह ने मामले की स्वयं जांच की। पहले ख़ुद क़ुरान शरीफ़ लेकर क़सम खायी कि उन्होंने कदापि ऐसा षड्यन्त्र नहीं किया। फिर और प्रमुख लोगों ने क़सम खायी। बादशाह का इस प्रकार क़सम खाना काफ़ी नीचे उतर आना था। जांच की रिपोर्ट स्लीमन के पास भेज दी गयी। उसने अपने संदेह को वापस लेना अस्वीकार कर दिया। बादशाह के मुहक्मा एहतराम (स्वागत-सत्कार विभाग) के प्रधान वसीह अली से उनको सख्त नफ़रत थी। उन्होंने खुलकर कह दिया कि वसीह अली के द्वारा यह षड्यन्त्र कराया गया है। इस घटना के बाद ही स्लीमन अरबी घोड़े से गिरे थे और उनके जांघ की हड्डी टूटी थी।

एक दिन स्लीमन ने राजा बख़्तावरसिंह से कहा कि "सुना है कि बादशाह लखनऊ से हमारी बदली कराने के लिए तीन लाख रुपया ख़र्च करने को तैयार हैं। अगर वे मुझे एक लाख रुपया ही दे दें तो मैं लखनऊ से चला जाऊँ।"[२]

एक दिन बादशाह की सवारी बेली गारद की सड़क से महल जा रही थी। कम्पनी का एक सिपाही थाली में खाना बनाने का कच्चा सामान रखे छाता लगाये

१. सलातीने अवध, भाग २ अध्याय ४५। २. सलातीने अवध, अध्याय ४५।

रसोईं बनाने जा रहा था। सड़क पर खड़े लोगों ने बादशाह के सम्मान में उससे छतरी उतार देने के लिए कहा; जब उसने न माना तो छतरी छीन ली। सिपाही ने अपने सूबेदार से रिपोर्ट की। सूबेदार भी हिन्दोस्तानी था फिर भी उसने रेसिडेन्ट से रिपोर्ट की। स्लीमन ने बादशाह के नाम पर कुछ न कहकर हुक्म दिया कि जब उस रास्ते से वजीर की सवारी निकले, "तुम लोग छतरी लगा कर खड़े होना। जो लोग मना करें उनको डंडे मारो।" बादशाह को जब यह सूचना मिली कि उनके बदले वज़ीर की तौहीन कराना चाहते हैं तो उन्होंने वह रास्ता, वह सड़क ही छोड़ दिया और उनकी सवारी गोलागंज होकर जाने लगी। जब रेसिडेन्ट को बादशाह का यह सौजन्यपूर्ण निर्णय मालूम हुआ तो उन्होंने हुक्म दिया कि सिपाही छावनी में ही छतरी लगाया करें।[1]

इस प्रकार की घटनाएं हम और भी देंगे। स्लीमन के कार्यकाल में ही डलहौज़ी के स्थान पर कुछ समय के लिए लार्ड एलेनबोरो गवर्नर जेनरल होकर आये थे। बादशाह तथा रेसिडेन्ट के बीच सात वर्ष तक जो पत्र-व्यवहार बन्द था, वह फिर चालू कराया गया। बादशाह ने ऊब कर रेसिडेन्ट से राजकाज में सलाह लेना बन्द कर दिया था। गवर्नर जेनरल ने बादशाह को लिखा था कि वे रेसिडेन्ट से पूछ कर काम किया करें। यह खत पहुंचने पर बादशाह ने तोपों की सलामी ली और खूब बनाकर जवाब भेजा।[2] बादशाह की दुर्बलता इससे भी प्रकट होती है।

अस्तु, स्लीमन को डलहौज़ी का पत्र मिल चुका था कि तुम खुद देश का मुआयना करो। अतएव २९ मार्च, १८४९ को उन्होंने कलकत्ता सरकार से अवध की यात्रा की इजाज़त मांगी। ७ अप्रैल को यह अनुमति प्राप्त हो गयी। १९ नवम्बर को बादशाह को सूचना दी गयी।[3] घोड़े से गिरने के कारण स्लीमन कई महीने खाट पर पड़े रहे अतएव वे इसके पूर्व यात्रा कर नहीं सकते थे। २९ नवम्बर, १८४९ को सुबह ९ बजे अपने सहायक बर्ड तथा लेफ्टेनेंट वाटसन के साथ स्लीमन बादशाह के यहां पहुंचे। वज़ीर अली नक़ी खां भी मौजूद थे। नायब वज़ीर राय जगन्नाथ (उर्फ़ गुलामरज़ा) भी मौजूद थे। स्लीमन तामजाम पर आये थे। बादशाह ने यात्रा की बखुशी इजाज़त दी। रेसिडेन्ट ने बादशाह को

१. सलातीने-अवध अध्याय ४९। २. सलातीने अवध, अध्याय ४६। ३. स्लीमन की डायरी, भाग १—भूमिका।

और बादशाह ने रेसिडेन्ट को खिलअतें दीं। बादशाह के शासन में सरकार के प्रत्यक्ष मातहत केन्द्रीय तहसील यानी हुज़ूर तहसील में कोई टैक्स बाक़ी नहीं था। इस पर बादशाह ने राय जगन्नाथ उर्फ़ गुलामरज़ा खां तथा शर्फ़ुद्दौला को इनाम दिया-"खिलअत बेबाक़ी इलाक़ा हुज़ूर तहसील।"[१]

बादशाह की ओर से स्लीमन के सफ़र का पूरा इन्तज़ाम हुआ। ७५ वर्ष के बूढ़े राजा बख़्तावरसिंह, जो रेसिडेन्सी में बादशाह की ओर से मुख्य गृह-प्रबंधक थे, बादशाह की ओर से यात्रा के प्रबंधक थे।[२] इस दौरे पर बादशाह का तीन लाख रुपया खर्च हुआ। वे लिखते हैं कि मैंने "दौरा बर्दाश्त किया।"[३] १ दिसम्बर १८४९ को यह यात्रा शुरू हुई और २७ मार्च, १८५० को समाप्त हुई। पहली दिसम्बर को स्लीमन बाराबंकी ज़िले के एक ग्राम में रुके। वज़ीर नक़ी खां उनको लखनऊ शहर के नाके तक पहुंचाने गये थे। स्लीमन के दोस्त नवाब मुनवरुद्दौला बहुत दूर तक पहुंचाने गये थे। २८ मार्च को तीसरे प्रहर चिनहट से लखनऊ वापस आये। पुराने घुड़दौड़ के मैदान पर, रेसिडेन्सी से तीन मील दूर उनका स्वागत करने के लिए वली अहद मौजूद थे। उनके साथ फ़रहबख्श महल गये। कुछ मिनट रुके। वहां उनका दरबारी स्वागत हुआ। रास्ते में पादरी हैमिल्टन व श्रीमती हैमिल्टन, डा० व श्रीमती बेल, मेजर बर्ड वग़ैरह उनके स्वागत में आये थे। स्लीमन ने यह यात्रा सपरिवार की थी। उनके बीवी बच्चे कई दिन पहले पीर नगर से ही लखनऊ वापस आ गये थे। स्लीमन लिखते हैं—"चूंकि घोड़े के गिरने से कूल्हा टूट चुका था अतएव पूरी यात्रा हाथी या तामजाम से हुई....घर पर सब राज़ी खुशी पाया।"[४]

१. सलातीने अवध। २. स्लीमन की डायरी, १९ दिसम्बर, १८४९। ३. बादशाह का कम्पनी के नाम उत्तर। ४. स्लीमन ने अपनी यात्रा की विस्तारपूर्वक डायरी सन् १८५१ में लार्ड डलहौजी के कहने से तैयार की थी। इसी लिए बहुत सी बातें या घटनाएं बाद में जोड़ी गयी थीं। पुस्तक का नाम है— Journey Through the Kingdom of Oude In 1849-50. By maj. Gen. Sir W. H. Sleeman, K. C. B., Resident at the court of Lucknow, Published by—Richard Bentley, Publishers-in-ordinary to Her Majesty. **इस पुस्तक की केवल १८ प्रतियां छपी थीं।**

डलहौजी और उनके पूर्ववर्त्ती

हरेक भारतीय की दृष्टि में डलहौज़ी सबसे दुष्ट गवर्नर जेनरल था। उन्होंने छल-छद्म से समूचे भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य करा दिया। लार्ड क्लाइव ने निज़ाम हैदराबाद तथा कर्नाटक के नवाब की सहायता से ईस्ट इंडिया कम्पनी का पैर भारत में जमा दिया था।[१] उस समय मुग़ल साम्राज्य एक क़ानूनी उपन्यास मात्र रह गया था।[२] बंगाल की दीवानी मिलने से कम्पनी का शासन प्रारम्भ हुआ। क्लाइव तीन बार कम्पनी के प्रधान शासक बनकर भारत आये थे और तीसरी तथा अन्तिम बार जाते समय वे "अवध के नवाब वज़ीर से गहरी मित्रता"[३] स्थापित करके भारत से रवाना हुए थे। पर वे शासन की कोई प्रणाली स्थापित नहीं कर गये थे। ३००० यूरोपियन तथा कुछ हज़ार भारतीय सिपाही, यही उनकी देन थी। शासन की प्रणाली तो प्लासी के युद्ध के १५ वर्ष बाद वारेन हेस्टिंग्स ने शुरू की जब वे १७८२ में गवर्नर जेनरल नियुक्त हुए। मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उनका अनुशासन मानना अपनी शान के विरुद्ध समझते थे। धीरे-धीरे गवर्नर जेनरल वास्तविक प्रधान बन गया। अवध में ब्रिटिश सेना का पहला उपयोग सन् १७७४ में हुआ। नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला ने रुहेला सेना का दमन करने के लिए फ़ौज मांगी थी। रुपया वज़ीर ने दिया और उसी रुपये से अवध में ब्रिटिश फ़ौज तैयार हो गयी।

वारेन हेस्टिंग्स के ज़माने में मराठा तथा मैसूर दोनों युद्ध हुए। हेस्टिंग्स को कोई सफलता नहीं मिली। इन युद्धों में अवध के नवाब वज़ीर से काफ़ी आर्थिक सहायता मिलती रही। मैसूर नरेश हैदरअली उस समय बहुत शक्तिशाली हो गये थे। मद्रास तक उनकी हुकूमत पहुंच चुकी थी। इन्हीं दिनों कम्पनी की सेना में एक काफ़ी महान सेनापति आ गया था। सर आयरकूट १७७९ में भारत में ब्रिटिश सेना के प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। सर आयरकूट ने १७९० में हैदरअली को गहरी शिकस्त दी। पोर्टोनोवो के युद्ध में हैदरअली की इस पराजय से मैसूर का भविष्य भी डूब गया। पराजित हैदर का शोक से ही देहान्त हो गया। ब्रिटिश कम्पनी की भारत में एकमात्र विदेशी विरोधी शक्ति फ्रेंच थे। डच तथा पुर्तगीज

१. Universal History of The World–Pub. The Educational Book Company Ltd., London. Vol. 7, Chapter—167, Page 4443—**इस अध्याय के लेखक**—Arthur D. Innes. २. वही। ३. वही।

अपने बहुत ही सीमित संकुचित दायरे में थे। फ्रेंच सेना को १७६० में ही वांदेवाश के युद्ध में सर आयरकूट ने कुचल दिया था। १७९०-९२ में द्वितीय मैसूर युद्ध में सर आयरकूट ने ब्रिटिश, मराठा तथा निज़ाम की सम्मिलित सेनाओं के सहारे हैदरअली के पुत्र टीपू सुलतान को पराजित किया। टीपू ने भी ट्रावंकोर के राज्य पर आक्रमण करने की राजनैतिक भूल की थी। किन्तु, भारत में राष्ट्रीयता की भावना इतनी लुप्त हो चुकी थी कि टीपू ऐसे वीर तथा अच्छे शासक के विरुद्ध मराठे तथा निज़ाम भी अंग्रेज़ों के साथ थे। निज़ाम तो क्लाइव के ज़माने से ही कम्पनी के सेवक बन गये थे। पर मराठों ने इस अवसर पर जो भूल की उसका उन्हें गहरा प्रायश्चित्त करना पड़ा। अंग्रेज़ों का भाग्य इन दिनों इतना तीव्र था कि पोर्टोनोवो के युद्ध के बाद भारत में न तो उन्होंने कोई ऐसी लड़ाई लड़ी या लड़ाई में उतरे जिसमें उनकी विजय न हुई हो। टीपू से युद्ध के समय लार्ड कार्नवालिस भारत के गवर्नर जेनरल थे।

लार्ड कार्नवालिस के बाद सर जॉन शोर (बाद में लार्ड टेनमाउथ) गवर्नर जेनरल हुए। वे बड़े दुर्बल तथा निष्क्रिय व्यक्ति थे।[१] उनका समय शान्ति में बीता। १७९८ में लार्ड मार्निंगटन गवर्नर जेनरल हुए। १७९९ में निज़ाम तथा ब्रिटिश फ़ौजें मैसूर पर चढ़ दौड़ीं और श्री रंगपत्तम् में लड़ाई के मैदान में टीपू मारे गये। इस प्रकार मैसूर का राज्य समाप्त हो गया। उसकी स्वाधीनता समाप्त हुई। मैसूर पर इस विजय के पुरस्कारस्वरूप लार्ड मार्निंगटन को मार्क्विस वेलेज़ली की उपाधि मिली। इतिहास में वे लार्ड वेलेज़ली के नाम से विख्यात हैं।

उनके समय में पेशवा बाजीराव, नागपुर के भौंसला नरेश, सिंधिया नरेश दौलतराव, होल्कर नरेश जसवन्तराव—यही प्रमुख स्वतन्त्र हिन्दू नरेश तथा हिन्दू राज्य थे तथा हैदराबाद और अवध यही दो मुख्य मुसलिम स्वतंत्र राज्य थे।[२] ये दोनों मुसलिम राज्य लगभग १०० वर्ष पुराने थे। बसीन की संधि से लार्ड मायरा ने पेशवा की हुकूमत समाप्त की। "सहकारी मित्रता" की नीति द्वारा वेलेज़ली ने अपनी संरक्षक सेना के बदले में कुछ जिले ब्रिटिश शासन के लिए हरेक राज्य से प्राप्त कर लिये।[३] कम्पनी की ओर से "रेसिडेन्ट" या "एजेन्ट" का पद उन्होंने (वेलेज़ली ने) शुरू किया। हरेक भारतीय राज्य में ब्रिटिश रेसिडेन्ट पहुंच गया। वेलेज़ली ने

१. Universal History of the World—पृष्ठ ४४४७।
२. वही, पृष्ठ ४४४८ ३. वही, पृष्ठ ४४४९

अपने शासन काल में ही निजाम की कमर तोड़ दी। उनके राज्य म अपनी सेना तथा अपना रेसिडेन्ट पहुंचा दिया। निजाम ने कोई आपत्ति भी नहीं की।

१८२३ में लार्ड वेलेज़ली के स्थान पर अर्ल मायरा (बाद में मार्क्विस हेस्टिंग्स) गवर्नर जेनरल हुए। १८२३ तक वे इस पद पर थे। इनके शासनकाल में बहुत कुछ शान्ति रही—पर, उन्हीं के ज़माने में कम्पनी की दृष्टि से सबसे बड़ा काम हुआ। अंतिम पेशवा बाजीराव पदच्युत होकर बिठूर भेजे गये। विशाल मराठा राज्य ब्रिटिश हुकूमत में आ गया।

लार्ड हार्डिंग के बाद लार्ड डलहौज़ी ३ जनवरी, सन् १८४८ में गवर्नर जेनरल नियुक्त हुए। उनकी नियुक्ति के पूर्व ब्रिटिश सेना की प्रतिष्ठा को एक गहरा धक्का लगा था। १८३८ में काबुल नरेश दोस्त मुहम्मद गद्दी से हटे थे। १८४२ में लार्ड हार्डिंग ने लारेन्स को काबुल की गद्दी पर शाह शुजा को बिठाने के लिए भेजा। काबुल में ब्रिटिश सेना की हार हुई। सिखों से भी कम्पनी की लड़ाई हुई। पंजाब नरेश रणजीतसिंह की मृत्यु के तीन वर्ष बाद ब्रिटिश सेना ने सतलज पार कर लिया और उनका राज्य कम्पनी ने ले लिया।

डलहौज़ी ने भारत में उस समय पैर रखा जब ब्रिटिश सत्ता को समूचे देश में फैलाने के लिए थोड़ा ही काम बाकी रह गया था। अवध को हुकूमत से काबुल तथा सिख युद्ध में धन तथा सामान से काफ़ी सहायता मिली थी। उसी राज्य से सहायता लेकर डलहौज़ी ने १८४९ में पंजाब में सिखों के विद्रोह को दबा दिया। १८५२ में बर्मा के युद्ध में ब्रिटिश सेना ने पेगू पर अधिकार कर लिया। राजाओं को पुत्र गोद लेने पर प्रतिबंध लगाकर नागपुर, सतारा, झांसी का राज्य कम्पनी की सरकार में मिला लिया गया। सिंधिया तथा होल्कर नरेशों ने अपने यहां ब्रिटिश सेना तथा रेसिडेन्ट रख लिये और ब्रिटिश सत्ता की महत्ता स्वीकार कर ली। अब बचा था एकमात्र अवध।

ब्रिटेन के स्थान पर अन्य कोई भी विदेशी शक्ति देश के एक टुकड़े को इस प्रकार आज़ाद न रहने देती। साम्राज्यवाद का सिद्धांत इतना कमज़ोर नहीं है।

डलहौज़ी के समय में देश में कुछ शासन-सुधार भी हुए—रेल, तार, डाक व शिक्षा का संगठन प्रारम्भ हुआ। मालगुज़ारी की प्रथा में भी परिवर्तन हुआ। उस समय की देशी तथा विदेशी सरकार का मुख्य काम मालगुज़ारी वसूल करना तथा अमन रखना था। भारत में मुसलिम काल में मध्य युग में भूमि की उत्पत्ति का आधा सरकारी मालगुज़ारी होता था। रोमन साम्राज्य में भी यही नियम था। अकबर के ज़माने में उत्पत्ति का एक तिहाई वसूल होता था।

कम्पनी ने उत्पत्ति का १/५ या १/६ भाग लगान में लेना शुरू किया और लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल बिहार में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया था। अवध में मालगुज़ारी की वसूली का तरीक़ा इज़ारा यानी ठीके पर वसूली था। पर धीरे-धीरे उसे "अमानी" कर दिया गया। यानी बादशाह के कर्मचारी स्वयं लगान वसूल करें। ब्रिटिश प्रथा तथा प्रतिशत वसूली के तरीक़े से अवध का नियम अधिक उदार था। इसका प्रमाण हम आगे चल कर देंगे।

डलहौज़ी ने बादशाह वाजिदअली को गद्दी से उतारने का प्रयत्न शुरू कर दिया। और "वही गति अवध की भी हुई. . .यह राजपरिवार सदा से एक रंग ब्रिटेन का वफ़ादार रहा पर इसका शासन बहुत ख़राब था।"[१] शासन भार ग्रहण करने के कुछ दिन बाद यानी १५ नवम्बर, १८४८ को अम्बाला (पंजाब) जाते हुए डलहौज़ी कानपुर रुके थे। यहीं पर राजपूताना के रेसिडेन्ट श्री लो (भूतपूर्व रेसिडेन्ट लखनऊ) भी उन्हीं दिनों आ गये थे। ११ सितम्बर, १८५१ को कर्नल स्लीमन लार्ड डलहौज़ी से मिलने शिमला गये। डलहौज़ी रामपुर आये और नवाब मुहम्मद सईद खां के सत्कार से प्रसन्न होकर उनके उत्तराधिकारी बेटे को वली अहद स्वीकार कर लिया। वहां से फ़र्रुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद होते हुए कलकत्ता वापस चले आये। बादशाह को कानपुर आने की इत्तला भी नहीं दी गयी। १५ जुलाई, १८५२ को स्लीमन लखनऊ वापस आये। वली अहद चारबाग़ तक उनका स्वागत करने आये। डलहौज़ी का कानपुर से सीधे चले जाना, लखनऊ न आना—यह सबको खटका।[२]

पत्र-व्यवहार

स्लीमन-डलहौज़ी अवध के राज्य की समाप्ति का षड्यन्त्र किस प्रकार कर रहे थे यह उनके पत्र-व्यवहार से प्रकट होता है। डलहौज़ी ने जो पत्र लिखे, वह हमें उपलब्ध नहीं हैं। कुछ इतिहासकारों ने उनका उद्धरण दिया है। पर डलहौज़ी के पत्रों का उत्तर स्लीमन ने दिया था और वे पत्र उनकी "डायरी" में छपे हैं। इनमें से कुछ पत्रों को हमने ऊपर उद्धृत भी किया है। स्लीमन हर प्रकार से बादशाह को बदनाम कर रहे थे। १२ जनवरी, १८५३ को ईस्ट इंडिया के लन्दन

१. Universal History of the World. Page 4462.

२. सलातीने अवध—भाग २, अध्याय ४३।

के दफ़्तर में कर्नल साइक्स को उन्होंने जो पत्र लिखा था, वह पढ़ने योग्य है। उस ज़माने में लंदन में भी अवध को ज़ब्त करने का आन्दोलन चल पड़ा था। उन्हीं दिनों लन्दन में "टाइम्स" दैनिक समाचार पत्र में जे० मार्शमैन का एक लेख छपा था जिसमें अवध को ज़ब्त करने की मांग की गयी थी।[१] श्री जी० मार्टन ने स्लीमन को एक पत्र लिखकर यह इच्छा प्रकट की थी कि वे लखनऊ से एक दैनिक समाचार पत्र निकालना चाहते हैं। स्लीमन ने इसका उत्तर भेजा :—

"अवध के बादशाह तुमको यहां पर कोई अख़बार निकालने में मदद नहीं देंगे......उनकी मातहती में किसी को नौकरी करने की सलाह मैं नहीं दूंगा ....बादशाह तथा उनके परिवार को ब्रिटिश सरकार से कोई ख़तरा नहीं मालूम होता है। उसकी सद्भावनाओं पर उन्हें पूरा भरोसा है।"[२]

जब बादशाह ब्रिटेन की नेकनीयती पर इतना भरोसा किये बैठे थे, स्लीमन उसे तबाह करने के लिए हर प्रकार का षडयंत्र कर रहे थे। ५ जून, १८५३ को स्लीमन ने डलहौज़ी को लिखा—"वह (बादशाह) पहले जैसा ही (निकम्मा) है।" २८ दिसम्बर, १८५३ को लार्ड डलहौज़ी को स्लीमन ने लिखा :—

"जिस समय हमने अवध का आधा भाग बादशाह से लिया था दोनों हिस्सों में रईस ज़मींदारों की तादाद बराबर थी। अवध के लोगों का ख़्याल है कि अब भी वही स्थिति है। पर हमारे यहां वह वर्ग समाप्त कर दिया गया है।"

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन्होंने (अंग्रेज़ सरकार ने) रईसों को तबाह कर दिया। पर इससे ग़रीब किसान का कोई फ़ायदा हुआ हो, यह बात नहीं है। हम इस विषय में आगे चलकर स्थिति पर प्रकाश डालेंगे। जब स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण स्लीमन घर जाने लगे तो प्रश्न यह था कि उनके स्थान पर उनकी नीति को चलाने वाला दूसरा कौन नियुक्त हो। मेजर बर्ड से स्लीमन नाराज़ रहते थे। बर्ड बादशाह का पक्ष लेते थे। उनके शासन सुधारने में सहायक होना चाहते थे। निजी आदतों को सुधारने में बादशाह को परामर्श देते रहते थे। यह सब बातें स्लीमन को बहुत खलती थीं। इसीलिए पदभार ग्रहण करने के समय से ही दोनों में पटरी नहीं बैठती थी। दिसम्बर, १८४९ में जब स्लीमन अवध की यात्रा पर गये, बर्ड ही लखनऊ में स्थानापन्न शासक (रेसिडेन्ट) थे। उन दिनों इनमें काफ़ी

१. London Times, Feb. 9,1853.

२. **१४ सितम्बर, १८५३ का पत्र।**

मतभेद पैदा हो गया। बर्ड अपने कार्यों की रिपोर्ट स्लीमन को दौरे पर भेजा करते थे। ५ दिसम्बर, १८४९ को नवाबगंज (ज़ि० बहराइच) से स्लीमन ने बर्ड को लिखा :—

"बादशाह ने गवैयों को हटाने को कहा था. . .क्या हुआ ? . . .बेगम ताज-महल के यहां से सिपाही हटा दो।[१] हां, महालदरनी रख सकते हैं. . ."

१० दिसम्बर को बहराइच से बर्ड को पत्र लिखा—"बादशाह ने कुछ गवैयों को गंगापार भेजने को कहा था। क्या हुआ ? हमारी सलाह थी। हम ज़ोर नहीं दे सकते. . .उनकी जगह तुम अच्छे आदमी रखो तो बादशाह नाराज़ होंगे। बादशाह को अपना आदेश मत देना कि वे ऐसा करें. . ."

इस पत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह नीचे की पंक्तियों में पढ़िए :—

"नवम्बर, १८४७ में गवर्नर जेनरल ने बादशाह से कह दिया था कि वे उस समय तक जिस लापरवाही से हुकूमत करते आये हैं यदि उसमें सुधार नहीं हुआ तो उस दशा में हमारा क्या कर्त्तव्य होगा। बादशाह के द्वारा अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा का हमें जो अनुभव हुआ है, तुमको उनसे यह कदापि नहीं कहना चाहिए था—जिस बात को तुमने स्वयं मुझे लिखा है कि **हमारी सरकार की यह कदापि इच्छा नहीं है कि उनके अधिकारों को छीन लें**. . . . . . .किसी भी बादशाह ने इनकी तरह से अपने कर्त्तव्यों तथा कार्यों के प्रति इनके समान उपेक्षा नहीं दिखायी होगी। चूंकि हमारी सरकार अवध की जनता के प्रति सुशासन के लिए ज़िम्मेदार है, यदि तुम्हारी बात उनके दिमाग़ में बनी रही तो उन्हें अपनी लापरवाही बरतने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।"

१२ दिसम्बर को घंघोली से स्लीमन ने बर्ड को लिखा :—

"तुमने जो कुछ किया है, मेरी समझ में अक़्लमन्दी की बात नहीं है। तुमने मुझसे पूछा था कि विशेष परिस्थितियों में अपने मन से काम कर सकते हैं या नहीं। मैंने अनुमति दे दी थी। पर बादशाह के दरबार में बारह गवैया रहें, या दो यह कोई ऐसा विषय नहीं है जिसमें तुरंत निर्णय करना आवश्यक है. . . . . ."

बर्ड को इस पत्र पर बड़ी आपत्ति थी। उन्होंने "अक़्लमन्दी की बात नहीं है"

१. ताजमहल बादशाह के पिता की विधवा पत्नी थीं और दुराचार के कारण उन्हें गर्भ रह गया था। बादशाह उन्हें पहरे में रखना चाहते थे पर रेसिडेन्ट ने ऐसा न होने दिया।

पर विरोध प्रकट किया है। १८ दिसम्बर, १८४९ को फ़ैजाबाद से बर्ड को स्लीमन ने लिखा—"इस शब्द का उपयोग मैंने केवल तुम्हारी बादशाह से दूसरी भेंट तथा कुछ वादों को पूरा करने की उनसे मांग के बारे में किया है।"

पर, बर्ड-स्लीमन का मतभेद बढ़ता ही गया। १८ मार्च, १८५२ को लार्ड डलहौज़ी को स्लीमन ने लिखा:—

"....कप्तान बर्ड और डा० बेल के लिए यही उचित प्रतीत होता था। बातचीत में अपनी बे-अख़्तयार बातों के लिए डा० बेल ने माफ़ी मांग ली है। निश्चित रूप से कप्तान बर्ड बादशाह को यह विश्वास दिलाने का बराबर प्रयत्न करते रहे हैं कि हमारी सरकार उनके शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगी और गवर्नर जेनरल की अभी तक की धमकियों को बन्दरघुड़की समझ कर उनकी उपेक्षा की जा सकती है।"

मजबूर होकर कप्तान बर्ड को—जो बाद में मेजर हो गये थे, लखनऊ से हटा दिया गया और वे राजस्थान में रेसिडेन्ट लो के सहायक होकर चले गये। वहां से भी उन्हें हटना पड़ा और बादशाह के दुर्दिन में वे उनके साथ रहे और उनकी माता के साथ विलायत गये थे।[1]

२४ नवम्बर १८५१ को डलहौज़ी को स्लीमन ने लिखा—

"लखनऊ की हालत ऐसी है कि हमें पूरे देश का शासन अपने हाथों में लेना चाहिए। श्रीमान को निश्चय यह करना है कि यह काम एक नयी संधि के द्वारा हो या केवल घोषणा मात्र से...सबसे अच्छा तरीका है घोषणा करना। इसमें मर्यादा भी रहेगी......यहां तो ख़ज़ाना ख़ाली हो गया है। शाही परिवार की तथा कर्मचारियों की बक़ाया तनख़्वाह चुकाने के लिए ही ५० लाख रुपया चाहिए......अब तो लोग चाहते हैं कि हमारा शासन हो जाय।"

जनता ब्रिटिश शासन चाहती थी या नहीं, इसका प्रमाण तो आगे चलकर मिलेगा पर बादशाह काम करते थे या नहीं, इस विषय में स्लीमन स्वयं ६ दिसम्बर

१. मेजर बर्ड ने "अवध पर डाकाज़नी" अपनी पुस्तक में लेखक के स्थान पर अपना नाम नहीं दिया है। पर लेखक प्रकट तो हो ही गया था। १८५७ में क्रान्ति के बाद बर्ड का अंग्रेज़ी खून उबल उठा और मंगलवार, १६ फरवरी १८५८ को साउथैम्पटन में अपने एक व्याख्यान में उन्होंने अपनी पुस्तक "वापस" ले ली।

१८४९ को बहराइच-गोंडा के बीच के स्थान बैरामघाट से लिखते हैं कि—"इस बादशाह को सिर्फ़ एक ही धुन है। वह है बक़ाया लगान की वसूली।"

पर, अपनी बात पर तो उन्हें डटे ही रहना था—सितम्बर[1], १८५२ को लार्ड डलहौज़ी को लिखा था:—

"जितने अधिक दिन यह बादशाह राज करेगा, उतना ही अपने पद के अयोग्य होता जायगा। देश का शासन उतना ही ख़राब होता जायगा . . .इस समय उनके अति प्रिय हैं दो हींजड़े दियानतुद्दौला और हुसेनुद्दौला, दो सारंगिया अनीसुद्दौला और मुसाहबुद्दौला. . . . . .सारंगियों के हाथ में दीवानी अदालतों की हुकूमत है और हींजड़ों के हाथ में फ़ौजदारी की. . . .इस बादशाह को हर्गिज़ शासन नहीं करने देना चाहिए. . .यद्यपि हरेक व्यक्ति जानता है कि बादशाह सनकी और निकम्मा हो गया है, पर इसका अदालती सबूत मिलना कठिन है. . . ."

किन्तु, ऐसे निकम्मे बादशाह के बारे में स्लीमन ही लिखते हैं कि "उनमें सब कुछ ख़राबियां होने पर भी लोग उन्हें प्यार करते हैं।" ३ दिसम्बर, १८४९ को किनाली ग्राम से वे लिखते हैं कि—"इस मुल्क में अच्छा काम करने में असमर्थ अवध के समान दुर्बल और कोई सरकार नहीं है।"

बादशाह के कई पुश्त तक को बुरा भला कहते हुए बहराइच से ९ दिसम्बर, १८४९ को स्लीमन ने लिखा—

"नवाब वज़ीर सआदतअली ख़ां के पहले नवाब आसफ़ुद्दौला और वज़ीरअली बड़े ख़र्राच और विचार-शून्य शासक थे। सआदतअली की हुकूमत बहुत अच्छी थी। पर उनके बेटे गाज़ीउद्दीन हैदर की नीति थी—"न कुछ देखो, न कुछ करो।" . . .अमज़दअली शाह व्यवसायी बुद्धि के आदमी थे. . . .पर उनके ज्येष्ठ पुत्र मौजूदा बादशाह तो न कुछ जानते हैं और न कुछ परवाह ही करते हैं. . .अपने राजकाज की उन्हें ज़रा भी चिन्ता नहीं है।"

बादशाह के विषय में ऊपर हम स्लीमन की उक्ति दे आये हैं कि "उनको केवल बक़ाया लगान की वसूली की चिन्ता है।" पर साबित वे यह करना चाहते हैं कि उनकी लापरवाही से लगान वसूली कितनी कम़ होती गयी। "गोंडा तथा बहराइच १८४५ में वाजिदअली ज़मींदार की रियासत में था जिससे ११,६५,१३२ रु० ५ आना ३ पाई लगान मिला। सन् १८४६ में रघुबीरसिंह का इलाक़ा हुआ जिनसे

१. इस पत्र पर सितम्बर महीना है। तारीख नहीं।

१४,०१,६२३ रुपया ९ आना ६ पाई तथा १८४७ में उन्हीं से १०,२७,८९८ रु० ४ आना ६ पाई मिला, सन् १८४७ में यह इलाक़ा इच्छासिंह को मिला जिनसे ६,०५,४९२ रुपया ३ पाई वसूल हुई।"

किन्तु, जो इतना निकम्मा व्यक्ति था जिसे हर प्रकार की गाली स्लीमन दे चुके, उसके विषय में १ जून, १८५४ को कर्नल लो को उन्होंने लिखा था—"दिल का बड़ा साफ़-सच्चा व्यक्ति है, और वह अच्छी तरह से समझता है कि मैं उसे कितनी सही सलाह देता हूं और हर मामले में न्याय करना चाहता हूं...बादशाह यह सब समझता है...पर मैं तो वज़ीर के मार्ग में बड़ा भारी रोड़ा हूँ..."

बर्ड की जगह स्लीमन ने अपने मन का आदमी कप्तान हेज़ और उनके सहायक कप्तान वेस्टन को रखा था। जब स्लीमन को अपना पद छोड़ना पड़ा तथा उनकी नीति को पूरा करने वाला आदमी मिल गया, उन्होंने लार्ड डलहौज़ी को ११ सितम्बर, १८५४ को लिखा—

"वज़ीर नम्बरी लुच्चा है...मुझे बड़ा हर्ष है कि मेरे स्थान के लिए कर्नल आउट्रम चुने गये हैं....उनका सहायक कप्तान वेस्टन को होना चाहिए, बड़ा सुलझा हुआ आदमी है।"

किन्तु उन दिनों ऐसे भी अंग्रेज़ थे जो अवध के प्रति ब्रिटिश नीति को समझ रहे थे। २८ अक्टूबर, १८५० को कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले "इंगलिशमैन" तथा २९ अक्टूबर, १८५० को कलकत्ता "हरकारा" पत्र में अवध नीति की आलोचना निकली। ७ नवम्बर, १८५० को स्लीमन ने जे० अलान को लिखा—"अवध के बारे में यह आलोचना सत्य की जानकारी न होने के कारण है।"

कुछ और लिखने के पूर्व हम स्लीमन की डायरी का सारांश भी पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देना चाहते हैं ताकि उस समय की स्थिति तथा एक अंग्रेज़ की आंख से अवध का परिचय मिल जाय और फिर झूठ सच का निर्णय करने की भी सुविधा हो।

स्लीमन की दृष्टि में अवध

स्लीमन की डायरी का सारांश पढ़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि नित्य प्रति की घटनाओं को हमने नहीं दिया है पर जो कुछ भी है, वह तारीख़ के हिसाब से सिलसिलेवार है। डायरी में वर्णित बहुत से विषयों का वर्णन हम अन्यत्र करेंगे, अतएव उनको काटछांट कर ही दिया जा रहा है।

हरा भरा पर ज़ुल्म भी

१ दिसम्बर, १८४९—स्लीमन तामजाम पर बैठकर चले और २ दिसम्बर को बहराइच ज़िले के नवाबगंज पहुंचे। रास्ते में चारों ओर लहलहाते खेत मिले। आम के अच्छे-अच्छे बाग़ थे। नवाबगंज व सिधोर का परगना आमिल आग़ा अहमद के ज़िम्मे था। उनके दो सहायक थे। ग़ुलाम अब्बास और ग़ुलाम अमीर। ग़ुलाम हज़रत ज़मींदार झरियापुर ने १० नवम्बर १८४९ को लखनऊ के बड़े जेल पर धावा बोला था। उस धावे में ८ मरे, ७ घायल, २५ पकड़े गये। १४५ क़ैदी जेल से भगा दिये गये। ग़ुलाम हज़रत ने सिहोर परगना के राठौर राजा भवानीसिंह की ज़ायदाद छीन कर यह ज़मींदारी हासिल की थी। उनके पास दो दुर्ग हैं—पारा व सराय में। ३ दिसम्बर को किनाली पहुंचे। बड़ा हरा भरा गांव है। मिठवल के ज़मींदार कलन्दर बक्स ने ज़मींदार गंगासिंह, ब्राह्मण को लूटकर उसके घर भर को मार डाला। उस बेचारे की स्त्री को भी काट डाला। रामनगर धमीरा रियासत के राजा गुरुबख्श बड़े ज़ालिम हैं। ४ दिसम्बर को गणेशगंज, उर्फ़ बैरामघाट घाघरा के दायें किनारे, नवाबगंज से १२ मील, पहुंचे। यहां पर खूब खेती होती है पर पासी लोग बड़ी लूटपाट करते हैं। रामनगर गांव सड़क पर है। ५ दिसम्बर को घाघरा के बायें किनारे नवाबगंज पहुंचे। इस क्षेत्र में पंस्का के राजा, जिनका धनौली में दुर्ग है, राजा पृथ्वीपत सिंह, शाहपुर के राजा मृत्युन्जय बख्स, धुनावा के राजा महीपतसिंह, कुनिया के राजा शेरबहादुरसिंह, अत्ती के राजा सरनाम सिंह तथा परूरूपुर के राजा महीपतसिंह, ये सब बहुत दुष्ट तथा प्रजा पर अत्याचार करने वाले हैं।

बूंदी या बसनौली के राजा हरदत्तसिंह १,८२,००० रुपया लगान देते थे। उनके पड़ोस में दर्शनसिंह बड़े योग्य शासक थे। ग़रीबों की रक्षा करते थे पर बड़े बड़े ज़मींदारों को लूटते थे। नैपाल राज्य में घुसकर उधर से वे बलरामपुर पर चढ़ दौड़े थे। बलरामपुर के राजा को खूब पीटा था। उनके तीन बेटे थे— ज्येष्ठ थे रघुबरसिंह। रघुबरसिंह ने राजा हरदत्तसिंह से रियासत छीन ली और इसने इतना ज़ुल्म किया कि रियासत तबाह हो गयी और वे ३०,००० से ज़्यादा मालगुज़ारी नहीं दे सकते थे। करामतअली से नवाबगंज की दुर्गति मालूम हुई। बशरतअली ज़मींदार वहां से १,३५,००० रुपया लगान देते थे पर हज़रतअली ने लूटपाट कर ७०,००० रुपया वार्षिक वसूली कर दिया। कुंवारी के ज़मींदार सीताराम को शिकायत है कि जागौर के ज़मींदार ग़ुलाम इमाम ने तबाह कर दिया

है। घाघरा के उस पार मुसलमान ज़मींदार लूटते थे और इस पार हिन्दू ज़मींदार।

गोंडा बहराइच का लगान का ठीका दर्शनसिंह के लड़के रघुबरसिंह के पास था और सुलतानपुर का दूसरे लड़के मानसिंह के पास। रघुवरसिंह ने बम्हनौली में हरदत्तसिंह की रियासत के २५,००० हल तथा बैल नष्ट कर दिये थे।[1] हरहरपुर गांव से ६०,००० रुपया वार्षिक वसूली होती थी। अब घटकर गत वर्ष तक ५०,००० रुपया लगान देते थे। रघुबरसिंह ने उन्हें इतना चौपट कर दिया कि ११,००० रुपया वार्षिक रह गया है। ८ दिसम्बर को १४ मील पुरवरपुर पहुंचे। वहां पहले गला फूल आने यानी घेघा की बड़ी शिकायत थी पर अब वह बीमारी कम हो रही है। ९ दिसम्बर को बहराइच के तराई जंगल में पहुंचे। यहीं जंगल में राजा तुलसीपुर रहते हैं। इनके लड़के साहेबजी ने इनकी जायदाद छीन ली है[2]। इस कार्य में उस लड़के को बादशाह के वित्त मंत्री दीवान वालकृष्ण का सहारा मिला। पस्का के राजा पृथ्वीपत ने सन् १८५६ में बादशाह का २६,००० रुपये का सरकारी ख़ज़ाना लूटा था। हौसला बढ़ा तो सन् १८४० में ८०,००० रुपया लूट लिया और जनवरी, १८४२ में अपने पिता की मृत्यु पर अपने भाई दृगपालसिंह को पकड़ कर बीच घाघरा में ले जाकर उनका गला काटकर नदी में फेंक दिया। बहराइच के नाज़िम वाजिदअली ख़ां ने नवम्बर, १८४३ में पृथ्वीपत को धनौली व पस्का से भगा दिया। उनकी रियासत दृगपालसिंह के लड़के दानबहादुरसिंह को दे दी। कई बार चचा-भतीजे यानी पृथ्वीपत तथा दानबहादुर आपस में लड़ते तथा अधिकार में आते गये। अन्त में २६ मार्च, १८५० को पृथ्वीपत मारे गये और सिपाहियों ने उनकी लाश वहीं पर घाघरा नदी में फेंकी जहां पृथ्वीपत ने अपने भाई का गला काटकर फेंका था।[3]

बहराइच में महमूद गज़नी के सिपाही सय्यद सालार गाज़ी मियां की क़ब्र है, ११ वीं सदी की। हिन्दू भी इसकी बड़ी पूजा करते हैं। इस इलाक़े में काफ़ी ख़ालसा भूमि यानी बादशाह की भमि है। इस क्षेत्र में सरकारी आमदनी बराबर घटती गयी है। सन् १८०७ से १८११ तक बालकराम कानूनगो का इस भूमि का ठीका था।

१. एक गांव में इतने हल-बैल नहीं हो सकते—लेखक।

२. साहेबजी १७ वर्ष की उम्र में ही पिता से बाग़ी बन गया था।

३. यह घटना डायरी में है, पर डायरी लिखने के बाद जोड़ दी गयी है।

सन् १८१६ तक उनके लड़के अमरसिंह का ठीका था। उसे जान से मरवा कर १५–२० लाख रुपये की सम्पत्ति छीन ली गयी। उसे मारने के लिए बाबू बेग जब गये तो उसने उनकी उंगली दांत से काट कर मुंह में रख ली और कटी उंगली तब मिली जब उनके मरे मुख में गंगाजल डालने के लिए मुख खोला गया। यह घटना १८१७–१८ की है। कुप्रबंध के कारण आमदनी कितनी घटी इसका प्रमाण है :—

	१८०७ में आय	१८४९ में आय
बहराइच	२,५०,०००	४,०००
हिसमपुर	२,००,०००	४०,०००
हरहरपुर	१,२५,०००	१०,०००
बुहारीगंज	१,५०,०००	१५,०००
कुल योग	७,२५,०००	६९,०००

बादशाह की दाढ़ी

ऊपर जिस हकीम मेंहदी का ज़िक्र किया गया है, उन्हीं के भतीजे मुनवरुद्दौला सआदतअली खां के वजीर थे। वे (मुनवरुद्दौला) पक्के अफ़ीमची थे। फिर भी क़ाबिल आदमी थे। बादशाह वाजिदअली की दयालुता इतनी थी कि उनके सलाहकार ग़ुलामरज़ा खां की जब बहुत सी ग़लतियां पकड़ी गयीं तो कप्तान बर्ड उनसे कहने गये कि उसे शहर से निकाल दो। पर बादशाह ने यहां तक बर्ड से कह डाला कि "मुझे ही दाढ़ी पकड़ कर ले चलो।"[१] २५ मई, १८५० को बादशाह के १४ गवैयों को कानपुर भेजा गया और २ जून को ग़ुलाम रजा खां भी कानपुर भेजे गये। जाने के पहले वे बादशाह से मिले और बादशाह ने बड़े आदर से उन्हें बिदा किया।[२]

अवध में बाज पक्षी उड़ाकर चिड़ियों का शिकार करने का निर्दय खेल चारों-ओर खेला जाता था। स्लीमन को भी बाज और शिकारी कुत्ते दिये गये पर उन्होंने लखनऊ वापस कर दिया। १२ दिसम्बर को पयागपुर रियासत के मार्ग से गंगवल पहुंचे। इस क्षेत्र में सबसे योग्य, चतुर, उदार तथा वफ़ादार राजा

१. उस समय बादशाह वाजिदअली दाढ़ी रखते थे। बाद में हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए दाढ़ी घुटा दी थी।

२. इस सम्बन्ध में स्लीमन तथा बर्ड में मतभेद हो गया था; देखिए स्लीमन की डायरी, भाग १—पृष्ठ १०७।

दिग्विजयसिंह, बलरामपुर नरेश हैं। १५ दिसम्बर को वज़ीरगंज पहुंचे। नवाब वज़ीर आसफ़ुद्दौला को यह देहात बहुत पसन्द था। वे प्रायः यहीं आकर रहते थे। यहां बड़ी बढ़िया भूमि है। आबपाशी का प्रबंध है, खेती है, खाद वगैरह का भी प्रबंध है। रास्ते में कोडसा गांव पड़ा था। यह स्थान कुलहंस राजपूतों की राजधानी रह चुका है। इस वज़ीरगंज में आसफ़ुद्दौला के लगाये बाग़ वग़ैरह मौजूद हैं। बादशाह अमजदअली ने इस गांव को मुंशी बाकरअली को दे दिया।

राजा बलरामपुर साथ हो गये। बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। इन्होंने बतलाया कि भिनगा के राजा के लड़के ने रैवेंसक्राफ़्ट अंग्रेज़ की हत्या करायी थी। दो महीने बाद ही उसका शरीर फूलकर मर गया। स्लीमन ने पूछा कि अत्याचारी पृथ्वीपति क्यों नहीं मरता। उस समय तक पृथ्वीपति की हत्या नहीं हुई थी। राजा साहब बोले—"वह भी दंड भोगेगा। हम लोग ऐसे नीचों के साथ शादी-व्यवहार कोई संबंध नहीं रखते।" १६ दिसम्बर को दूसरे नवाबगंज पहुंचे। यहां पर इलाक़ा उजड़ गया है क्योंकि बाग़ तथा खेती करने वाले मुराव (कच्छी) लोगों को रघुबरसिंह ने मार भगाया है। इस इलाके में सबसे बड़ा किसान साहूकार रामदत्त पांडे है।[१]

कुलहंस राजा का परिवार अब भी बहमनीपीर पर क़ाबिज़ है। इस ग्राम के नाम से भी पता चलता है कि यहां ब्राह्मणों को काफ़ी सताया गया था। एक ब्राह्मण रतन पांडे ने श्राप दे दिया था कि इस राजा के परिवार में सब अंधे ही पैदा होंगे। फलतः वह श्राप अभी तक चल रहा है। साहूकार रामदत्त पांडे के पास सिंधा, चन्दा, अकबरपुर वग़ैरह इलाके थे जिनसे १,६६,७४४ रुपया १३ आना ३ पाई मालगुज़ारी सरकार को मिलती थी।[२]

१. सन् १८०१ की संधि में नवाबगंज, मनकापुर व बहमनीपीर (गोंडा—गोरखपुर के पास का इलाक़ा) कम्पनी को मिले थे पर सन् १८१६ के मई में इलाहाबाद की हंडिया तहसील लेकर कम्पनी ने अवध को वापस कर दिया था।

२. नवाबगंज, वज़ीरगंज महदेवा का एक इलाक़ा था जिससे १,०८,००० रुपया लगान मिलता था जिसमें से ३२,००० रु० नानकार रखकर ७६,००० रु० सरकार को देते थे। मनकापुर की रियासत से ४०,००० रुपये लगान जिसमें से १२,००० रु० नानकार (निजी ख़र्च) काटकर २८,००० रु० सरकार को देते थे तथा बहमनीपीर से १२,००० रु० वसूली में से ३,००० रुपया नानकार काटकर शेष रक़म सरकार को देते थे।

रामदत्त पांडे की हत्या

१२ से १६ दिसम्बर, १८४९ की डायरी में स्लीमन एक वर्ष आगे यानी ८ नवम्बर, १८५० की घटना लिखते हैं कि ८ नवम्बर, १८५० को साहूकार किसान रामदत्त पांडे गोंडा के नाज़िम मुहम्मद हसन को सरकार के लगान का सब बक़ाया चुकाकर तथा नाज़िम को ८०,००० रुपया ज़मानत लिखाकर ऋण देकर कार्त्तिक की पूर्णिमा के लिए अयोध्या में सरजू स्नान पर जाने के पूर्व नाज़िम से बिदाई मांगने गये। राजा बलरामपुर भी इनके साथ थे। दोनों का पड़ाव आम के बाग़ में अलग-अलग था। नाज़िम का पड़ाव डेढ़ मील पर था, नाज़िम ने मिलने आने के लिए बुलाया। उनके ख़ीमे में हथियार लेकर या हथियारबन्द सिपाही साथ लेकर जाने की इजाज़त नहीं थी। पर ख़ीमे में जाने के पहले रईस लोग अपने जान और माल की हिफ़ाज़त की ज़मानत ले लेते थे। रामदत्त भी ज़मानत लेकर ख़ीमे में गये। वहां नाज़िम ने उनसे ८०,००० कर्ज़ और मांगा। रामदत्त ने कहा कि जो कुछ रुपया तैयार था, वह ८ दिन पहले दे चुके हैं। अब रुपया नहीं है। नाज़िम के बहुत कुछ कहने पर भी जब वे राज़ी नहीं हुए तो उनके सहायक नाज़िम जाफ़र अली ने रामदत्त को गोली मार दी, वे "हाय राम" कहकर वहीं मर गये। उनके बदन में २२ घाव किये गये और लाश भूमि में गाड़ दी गयी। रामदत्त की मुहर, कर्ज़नामे का काग़ज़ वग़ैरह लाकर रामदत्त के दामाद ने राजा बलरामपुर को दे दिया। वे बीस मील दूर ब्रिटिश अमलदारी में यानी गोरखपुर ज़िले में भाग गये। इधर नाज़िम ने रामदत्त का गांव, घर वग़ैरह सब लूटकर १२ लाख रुपये का माल प्राप्त कर लिया। जब यह समाचार रामदत्त पांडे के भाई किशनचन्द को ब्रिटिश अमलदारी में मिला तो वे वहां से अपने आदमी लेकर आये और नाज़िम के ५०–६० आदमियों को मार डाला। भाई की लाश निकाल कर उसकी समुचित रूप से दाहक्रिया की।

नाज़िम ने १८ नवम्बर, १८५० को बादशाह को रिपोर्ट भेजी कि रामदत्त पर काफ़ी मालगुज़ारी बाक़ी थी। वे समझाने पर भी अदा नहीं कर रहे थे। उलटे ५०० आदमी लेकर नाज़िम की छावनी पर चढ़ गये थे। दूसरे दिन १८ नवम्बर को उन्होंने बादशाह को रिपोर्ट भेजा कि नाज़िम के सामने उनके आदमियों से इस बात पर झगड़ा हुआ कि हिसाब साफ़ करके तब जाओ। २० नवम्बर को तीसरी रिपोर्ट भेजा कि नाज़िम के और रामदत्त पांडे के आदमियों ने एक साथ मिलकर उनका मकान लूट लिया था। इन रिपोर्टों से प्रसन्न होकर

वज़ीर ने नाज़िम को बड़ा सम्मान प्रदान किया। उन्हें १४ पार्चा ख़िल-अत दी।[1]

पर रेसिडेन्ट स्लीमन और गोरखपुर के कलेक्टर मि० चेस्टर के कहने तथा ज़ोर देने से इस हत्याकांड की जांच वज़ीर ने करायी। नाज़िम गोंडा के राजा का दो हाथी और १,५०,००० रुपया लेकर गोरखपुर भागे। जब वहां शरण न मिली तो लखनऊ आकर आत्मसमर्पण कर दिया। जाफरअली भी पकड़े गये। मुहम्मद हसन शिया मुसलमान थे। शिया लोगों को इतनी छूट थी कि यदि वे किसी सुन्नी मुसलमान को मार भी डालते तो उन्हें फांसी न होती। किसी हिन्दू की हत्या करके यदि कोई हिन्दू मुसलमान धर्म ग्रहण कर लेता तो उसे भी प्राणदंड नहीं मिलता।[2] अतएव मुहम्मद हसन नाज़िम[3] को केवल जेल की सजा मिली और १८ मई, १८५१ को रामदत्त के परिवार को उनकी दो जागीरें वापस मिल गयीं पर उनकी मालगुजारी या लगान काफ़ी बढ़ा दी गयी। सिरधा तथा चन्दा वग़ैरह की जागीर की वसूली १,२०,७२९ रुपया ११ आना थी और अकबरपुर की ४६,०१५ रुपया २ आना ३ पाई। इनमें पहली जागीर में २०,००० रुपये साल की तथा दूसरी में १०,००० रुपये साल की वृद्धि करके रामदत्त पांडे के परिवार को दी गयी।

फ़ैज़ाबाद, सुलतानपुर

१७ दिसम्बर १८४९ को पटी नाव से घाघरा पार कर स्लीमन फ़ैज़ाबाद पहुंचे। वे लिखते हैं कि इस नगर का नाम पहले "बंगला" था क्योंकि केवल

१. स्लीमन की डायरी भाग १, पृष्ठ १३४।

२. बादशाह शिया मुसलमान अवश्य थे पर नवाबी शासन में कई शिया मुसलमानों को फांसी मिली थी।

३. "नाज़िम" दो प्रकार के होते थे। लगान वसूली का ठीका लेकर यानी "इज़ारा" पर काम करने वाले भी नाज़िम कहलाते थे और सरकार से वेतन लेकर यानी "अमानी" पर काम करने वाले को भी नाज़िम कहते थे। इज़ारा पर वसूली कराने वाले निजी खर्च के लिए सरकार से "नानकार" मिलता था। मुहम्मद हसन अमानी पर काम करते थे। ज़िले के हाकिम को आमिल कहते थे। आजकल हम उसे "कलक्टर" कहते हैं। तहसील को चकला कहते थे और तहसीलदार को चकलेदार कहते थे।

एक बंगला उस "ग्राम" में बना था। नवाब वज़ीर ने इसे अपनी राजधानी बनाकर बसाया था। चूंकि नवाब आसफ़ुद्दौला अपनी मां के पास रहना पसंद नहीं करते थे अतएव उन्होंने लखनऊ गांव को आबाद किया और राजधानी बनाया। ८० साल में यह लखनऊ शहर इतना बढ़ गया है कि आज उसकी आबादी दस लाख है। फ़ैज़ाबाद के नाज़िम के पास ६ टुकड़ी पल्टन की है, ६ तोपें हैं और उसकी सलामी ७ तोप की है। पर उसकी बन्दूकें बेकार हैं क्योंकि उनमें भरने के लिए "पाउडर" (बारूद) ही नहीं है। जब सेना के ज़िम्मे लगान वसूली होती थी तो उसकी दो सूरतें होती थीं, एक थी "लाकुलाये कुब्ज़" यानी वसूली का एक निश्चित अंश सरकार को देना पड़ता था, दूसरी थी "वसूली कुब्ज़" यानी रियासत से कुल प्राप्त रक़म आमिल के पास जमा करनी होती थी।

फ़ैज़ाबाद ज़िले में साहेबगंज का इलाक़ा ऊपर वर्णित रघुबरसिंह के भाई मानसिंह के पास है। मनियारपुर इलाक़े में कुपरागऊ व सेहीपुर के ताल्लुक़े हैं। मनियारपुर की रानी बीबी सोगुरा या सगोरा लगान में अत्यधिक बक़ाया हो जाने के कारण १८४७ में बादशाह के हुक्म से क़ैद कर ली गयीं। पर इन ताल्लुक़ों में दर्शनसिंह तथा निहालसिंह बड़ा उत्पात करते थे। १८४९ में बादशाह ने गफ़ूर बेग को यह इलाक़ा दिया। पर वे भी मालगुज़ारी न वसूल कर सके। फलतः यह क्षेत्र सेना के ज़िम्मे कर दिया गया। वही लगान वसूल करती है। बीबी सोगुरा क़ैद से छूटने पर पूरी तरह से लूट ली गयीं और उनकी मृत्यु भी हो गयी।

१९ दिसम्बर, १८४९ को स्लीमन शाहगंज पहुंचे। क़स्बे के चारों ओर मिट्टी की दीवाल है। बादशाह ने जिस राजा बख़्तावर सिंह को स्लीमन की यात्रा का प्रबंधक बनाकर संग में कर दिया था, वही राजा, जिनकी उम्र स्लीमन के कथनानुसार उस समय ७५ वर्ष की थी, इस इलाक़े के मालिक हैं। राजा के चार भाई-भतीजे थे। यह पूरा क्षेत्र बड़ा सम्पन्न, सुखी तथा बढ़िया खेती वाला है। यहां चोरी नहीं होती। फ़क़ीर तथा साधुओं को क़स्बे में गश्त लगाने की आज्ञा नहीं है। कोई भीख नहीं मांग सकता। यदि कोई नया खेतिहर बनना चाहता है, बाहर से आता है तो २५ रुपया बैल की जोड़ी ख़रीदने के लिए, ३० रुपया झोपड़ा बनाने के लिए तथा ३६ रुपया फ़स्ल पैदा होने तक का ख़र्च चलाने के लिए और कुछ अन्य मद मिलाकर राजा से ९० रुपया ऋण मिलता था। खेतिहर वहीं बस जाता और अपना ऋण चुका देता। यहां की जनता सुखी तथा स्वस्थ है। यहीं पर राजा बलरामपुर ने, जो साथ में थे, कोल्हुआर गांव का क़िस्सा बतलाया, यह भी शाहगंज के पास का हराभरा गांव है। कोल्हुआर के लोगों ने निश्चय किया कि गन्ना

की खेती करेंगे। पर यह तय न हो सका कि कोल्हू कहां लगे। इसी में बात इतनी बढ़ी कि जमकर लड़ाई हुई और गांव में एक भी जवान ज़िन्दा न रहा। कोल्हू का झगड़ा उस समय हुआ था जबकि एक गन्ना भी बोया नहीं गया था। उस झगड़े के बाद से ही उस गांव का नाम "कोल्हुआर" पड़ा। राजा बलरामपुर ने अपनी कहानी समाप्त करते हुए कहा—"हमारे इलाक़ों में अधिकतर बड़े परिवार ही नष्ट हुए हैं।" निकट में बैसवाड़ा ग्राम है जहां के १६,००० व्यक्ति कम्पनी की सेना में सिपाही हैं।[१]

२१ दिसम्बर को भरतीपुर पहुंचे। यह भी रघुबर सिंह के भाई मानसिंह का इलाक़ा है। यहां की भूमि, खेती, सभी बहुत अच्छी है। बड़े अच्छे-अच्छे बाग़ लगे हैं।[२] २२ दिसम्बर को सुलतानपुर पहुंचे। यहां की भूमि भी बहुत उर्वर है, खूब खेती होती है। कहीं भी एक भी लंगड़ा या लूला या अंधा नहीं दिखायी पड़ता है। पर, स्लीमन के अनुसार—"दर्जनों लोग कांपते होठों से नेत्रों में आंसू भरकर मुझे अर्ज़ियां दे रहे हैं[३]....पर यदि इन सताये हुए लोगों में से कोई प्रार्थी कम्पनी का सिपाही या अफ़सर है तभी उसे रेसिडेन्ट के द्वारा अपनी कठिनाइयाँ दूर कराने का अधिकार है।[४]

राजा प्रतापगढ़, सलोन और भदरी

२२ से २४ दिसम्बर तक मीरनगर के इलाक़े में रहे। यहां की भूमि मटियार, काली तथा फिर ऊसर है। पर ऊसर में रेह बहुत है, जो बंगाल की सज्जी मिट्टी की तरह है। यहां के लोग साबुन बनाने या शीशा गलाने के लिए रेह का उपयोग

१. सिपाही नौकरी कम्पनी में करते थे पर अपने बालबच्चे अवध राज्य में रखते थे।

२. स्लीमन ने रघुबरसिंह तथा मानसिंह को पक्का 'लुटेरा' कहा है फिर भी उनका इलाक़ा उन्हें "हराभरा" मिला। ३. डायरी, भाग १, पृष्ठ १७६, स्लीमन यह भी लिखते हैं कि नाजिम या सहायक नाजिम का पद प्राप्त करने के लिए अनुमानित वसूली का १० से १५ प्रतिशत नजराना देना पड़ता था। काम मिल जाने पर कुल मिलाकर २५ प्रतिशत देना पड़ता था। ४. समूची यात्रा में स्लीमन को २५० अर्जियां मिलीं। ब्रिटिश शासन में एक तहसील में हजारों अर्जियां होती थीं—लेखक।

करते हैं।[1] २५ दिसम्बर को नवाबगंज पहुंचे।[2] २६ ता० को प्रतापगढ़, वहां दो दिन रहे। नवाबगंज और प्रतापगढ़, दोनों जगहों की भूमि बहुत अच्छी है और खेती भी काफ़ी अच्छी होती है। २८ दिसम्बर को हंडोर में देखा कि वहां भी बहुत बढ़िया खेती है। राजा प्रतापगढ़ से नाज़िम से पटरी नहीं बैठती थी। "राजा प्रतापगढ़ बहुत मोटा और साधारण समझ बूझ का व्यक्ति है।"

२९ दिसम्बर को रामपुर रियासत से १० मील दूर पहुंचे। राजा सलोन के ये सब इलाक़े हैं, इनमें रामपुर, धारूपुर और कालाकांकर शामिल हैं। राजा सलोन हनुमन्तसिंह की चारो ओर बड़ी धाक है। सलोन में मुसलमान फ़क़ीर शाह पूना अता रहते हैं। हिन्दू मुसलमान सभी इनको मानते हैं। एक बार शाह की गद्दी पर जो फ़क़ीर बैठता है वह मर कर ही घर से निकलता है। ६० वर्ष पूर्व इस गद्दी को नवाब आसफ़ुद्दौला ने १६ गांव लगान माफ़ी के साथ दिया था। ये गांव कमपुरिया राजपूतों के थे। शाह की आमदनी ५०,००० रुपया सालाना थी।

सलोन के राजा हनुमन्तसिंह विशन ठाकुर हैं। प्रतापगढ़ के राजा सोमवंशी ठाकुर हैं। भदरी के राजा भी उच्च ठाकुर हैं। हनुमन्तसिंह सरकार को १,६०,००० रुपया लगान सालाना देते हैं। बादशाह ने इसमें १५–२० हज़ार रुपया बढ़ाना चाहा तो अस्वीकार कर दिया। राजा बख्तावर सिंह इनके हिमायती हैं। ये सभी ठाकुर ओड़छा के पवार राजा तथा रीवां के बघेल राज परिवार में विवाह संबंध करने में गौरव समझते हैं। अभी राजा भदरी की एक लड़की एक लाख रुपया दहेज़ देकर रीवां नरेश के एकमात्र पुत्र से ब्याही गयी है। प्रतापगढ़ के राजा शिवरतन सिंह के भाई गुलाबसिंह ने ५०,००० रुपया दहेज़ देकर अपनी लड़की उसी लड़के से ब्याह दी। धारुपुरा नरेश हनुमन्तसिंह बिशेन ने इसी लड़के से

१. "रेह तथा सज्जी मिट्टी आदि के बारे में डा० शानेसी (Dr. D. Shaughnessy) **जो उस समय बहुत ही प्रसिद्ध रसायन पंडित थे, लिखते हैं कि "जब मैं भारत के रहने वालों की बहुत सी रासायनिक क्रियाओं तथा रीतियों को देखता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि वे हमारी आज के बहुत आगे बढ़े हुए वैज्ञानिक अनुसंधानों के बराबर हैं। उदाहरणार्थ, जिस अनुपात से वे सज्जी मिट्टी या रेह का उपयोग करते हैं वह यूरोप के रसायन शास्त्रियों के अणु-सिद्धान्त के बिलकुल समान है।"—डायरी, भाग १, पृष्ठ १९२।**

२. मालूम होता है कि हर ज़िले में एक नवाबगंज था।

अपनी लड़की की शादी की बातचीत की और ५०,००० रुपया टीका और ७५,००० रुपया गौना पर देने का वचन दिया। सब पक्का हो जाने पर रीवां नरेश ने कहला भेजा कि हमारा बेटा इतनी गर्मी में बाहर नहीं जायगा। राजा हनुमन्तसिंह १०० ब्राह्मण लेकर रीवां गये और राजा के दरवाज़े पर 'अनशन' करके धरना दे दिया। रीवां नरेश राज़ी हो गये पर २५,००० रुपया और लेकर तब गौना कराया। अभी हनुमन्तसिंह के एक लड़की और है। रीवां नरेश ने रुपये के लोभ में अपने राजकुमार की ५–६ शादियां कीं पर उनको भी एक लड़की है। उसके विवाह में सब कमाई निकल जायगी। राजपूताना में अपने से उच्चकुल की तलाश में कई ब्राह्मण उन्होंने भेज रखे है। ब्राह्मणों में भी लड़की के विवाह में काफ़ी लेन-देन होता है।[१]

३१ दिसम्बर १८४९ को स्लीमन सोती पहुंचे। पर स्थान कम्पुरिया राजपूत जगन्नाथ सिंह का इलाक़ा है। बड़ी अच्छी खेती, बड़े अच्छे बाग़ हैं। पहले इनके पास ९ गांव थे। अब १५० से ऊपर हैं। इस इलाक़े में सई नदी के दायें किनारे १२ मील का जंगल है जिसमें शाही पल्टन रहती थी। १८४७ तक यह इलाक़ा इज़ारा पर था। जब हामिदअली आमिल हुए तो उनके सहायक नौरोज़ अली ने ४ गांव लेकर जंगल से शाही पलटन हटा ली और कम्पुरिया राजपूत पूरे इलाक़े पर क़ाबिज़ हो गये। अब इनके वंश की ५ शाखाएं राज कर रही हैं। अवध के दरबार में इनकी ओर से नौरोज़अली ही राजदूत हैं।

रायबरेली और विद्रोह को प्रोत्साहन

१ जनवरी, १८५० को रायबरेली से १० मील पर पहुंचे। यहां दो-मटिया ज़मीन है। रायबरेली शंकरपुर रियासत में है। राजा बेनीमाधो गद्दी पर हैं, रायबरेली बैसवाड़ा जिले की शाही राजधानी है। ६०–७० वर्ष पूर्व मियां अल-

१. स्लीमन लिखते हैं :—"क़रीब क़रीब समूचे हिन्दू समाज में इस प्रकार का लड़के लड़कियों का सौदा बराबर चालू है। ईसाई राज्यों में भी यह प्रथा पायी जाती है। अवध में इस प्रथा के कारण ब्रिटिश इलाक़ों में भी जवान लड़कियों की चोरी होती रहती है। कुछ मर्द-औरतों का यही पेशा है।"—पृष्ठ २३९।

मासअली खां[1] नामक मशहूर ख्वाजासरा के सहकारी रेवती राम ने रायबरेली से दो मील दूर सई नदी पर पुल बनवाया था। सलोन से रायबरेली तक, २० मील तक फलदार वृक्ष लगवाये थे तथा दक्षिण में १४ मील, गंगा तट पर बसे हुए डालमऊ (दहलामऊ) तक फलदार वृक्ष लगवाये थे। पुल की मरम्मत की ज़रूरत है। गोमती पार करने के बाद यह सबसे स्वस्थ स्थान है—अवध का सबसे स्वस्थ स्थान है। गोमती पार करने पर सबसे खुशहाल इलाक़ा, जहां के लोग अपने ज़मींदार राजा बेनीमाधो की बहुत तारीफ़ करते हैं, वह है गुरुबक्स गंज उर्फ़ ओनई। (३,४ जनवरी) रायबरेली में रेवतीराम का बनवाया पक्का तालाब है, बाग़ है, कुंआ है, कुएं का पानी बहुत अच्छा है। मुग़ल बादशाह शाहजहां के शासन काल में रायबरेली ने बड़ी उन्नति की थी पर अब तो खंडहर हो रहा है। यहां के नाज़िम वही हामिदअली हैं जिनका ज़िक्र हम नौरोज़अली के सिलसिले में कर आये हैं। हामिदअली फ़ज्लअली के दामाद थे। फ़ज्लअली १५ महीने तक अवध के बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के दीवान रह चुके थे और इतने थोड़े समय में उन्होंने ३०–३५ लाख रुपया कमाया था। हामिदअली खुद दीवान बनना चाहते थे इसलिए पहले रईस बनना ज़रूरी था। इसीलिए उन्होंने खेती शुरू की। नाज़िम बने, आमिल बने। जब उन पर सरकार का १८ लाख रुपया लगान बक़ाया हो गया तो जेल भेजे गये। "आजकल जेल में हैं।" रायबरेली में शाही पल्टन भी है। कप्तान शोभासिंह की मातहती में। इसके पास सामान वग़ैरह कुछ नहीं है।

"राजा हनुमन्त सिंह और राजा बेनीमाधो मेरे साथ-साथ घोड़े पर चल रहे थे। हम गांव में से देखने में प्रसन्न वदन किसानों की भीड़ में से होकर जा रहे थे। ये किसान राजा बेनीमाधो की रियाया थे। मैंने राजा से पूछा कि "यदि आप अवध की सरकार के विरुद्ध विद्रोह करेंगे[2] तो ये किसान आपका साथ देंगे।"[3] राजा

१. उस समय के सफीपुर जिले का मियांगंज। स्लीमन ख्वाजासराओं के बड़े निन्दक थे पर मियां अलमास को "अवध में पैदा हुए लोगों में सबसे महान व्यक्ति" लिखते हैं—डायरी, पृष्ठ ३२०।

२. डायरी भाग १. पृष्ठ २५३

३. यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। इससे स्पष्ट है कि स्लीमन इस यात्रा में राजाओं को बादशाह के विरुद्ध बग़ावत करने का प्रोत्साहन दे रहे थे और इस बात की थाह भी ले रहे थे कि क्या वे विद्रोह करेंगे—लेखक

साहब ने उत्तर दिया—"अवश्य। इनकी मेरे साथ प्रतिज्ञा है कि हमारे साथ चलेंगे वरना हमारी ज़मीन छोड़नी पड़ेगी।"

यहां पर यह भी पता चला कि यद्यपि शाही सेना का यह नियम है कि सैनिक सेवा में अंग-भंग हो जाने पर एक माह का वेतन देकर काम से हटा देते थे और मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा को दो माह का वेतन देते थे, पर अब यह सब कुछ नहीं होता। फल का बाग़ लगाने वाले को २० रुपया सालाना और महुआ का वृक्ष लगाने वाले को ४ आना से २ रुपया सालाना बादशाह या ज़मींदार को देना पड़ता था। आम का वृक्ष लगाने वाला ज़मींदार की भूमि में वृक्ष होने पर भी उसके फल खा सकता था। तिलोकचन्द बंसी राजपूत कभी सांप काटने से नहीं मरता। ६ जनवरी को मोरावां के बड़े कस्बे में साहूकार चन्दनलाल मिले। बड़े सुलझे हुए, समझदार, नेक, प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। कानपुर में भी इनका बड़ा कारोबार है।[1]

नवाबगंज में वज़ीर से भेंट

८ जनवरी, १८५० को स्लीमन लखनऊ, कानपुर के बीचोबीच नवाबगंज पहुंचे। इस क़स्बे को नवाब अमीनुद्दौला वज़ीर ने मुसाफ़िरों को ठहराने के लिए बसाया था और अमजदअली शाह ने बस्ती के बीच से लखनऊ कानपुर की पक्की सड़क निकाली थी। एक मकान यूरोपियनों के ठहरने के लिए बनवाया गया। वैसे उधर की ज़मीन ऊसर है। फल के पेड़ भी नहीं हैं। नवाबगंज बस्ती का सब खर्च (यानी सफ़ाई, मरम्मत आदि) बादशाह देते हैं। नवाब अमीनुद्दौला पूरी बस्ती का खर्च देते थे। लखनऊ-कानपुर की ५० मील लम्बी सड़क दो लाख रुपए में बनी है। लेफ़्टेनेन्ट सिम ने इसे बनाया है और यह बहुत चालू सड़क है।[2] सड़क पर ग़ल्ले की गाड़ियां भरी पड़ी हैं।[3] सन १८४९ तक सड़क पर लूटपाट का डर

१. डायरी के २८१ पृष्ठ पर इसी चन्दनलाल की बड़ी बुराई की है। लिखा है कि इस दुष्ट व्यक्ति ने दुधियारीखेड़ा के राजा रामबक्स की जायदाद छीन ली।

२. १० सितम्बर १८५० को हिज एक्सलेन्सी सर चार्ल्स नेपियर को स्लीमन ने पत्र लिखा था—"लखनऊ से कानपुर ५० मील सड़क है, सिर्फ ६ घंटे में ५० मील की यात्रा हो जाती है।"

३. डायरी पृष्ठ २७९

था पर अब तो इस सड़क पर पहरे का प्रबंध है अतएव कोई ख़तरा नहीं है।[1] वर्षा के कारण ११ जनवरी तक यहीं रुके रहे। ९ तारीख को लाव-लश्कर के साथ वज़ीर नक़ी खां आये। राजा लोग अपने वज़ीर से मिलना चाहते थे पर पहरेदार कसकर घूस मांगता था और ख़ीमे में घुसने नहीं देता था। वज़ीर का ख़ीमा समय पर नहीं पहुंचा था अतएव "मैंने ख़ीमा दिया। वज़ीर के आदमी जाने के पहले ख़ीमा वापस कर गये पर उसके रस्से काट ले गये।" १० जनवरी को वज़ीर वापस गये। इस पड़ाव में रेसिडेंट ने तीन हत्यारों को अपनी आज्ञा से गिरफ़्तार कराया।

लड़कियों की हत्या

१३ जनवरी को रसूलाबाद से स्लीमन राजपूतों में तत्कालीन कथित प्रचलित एक घृणित प्रथा का उल्लेख करते हैं। वे लिखते हैं श्रृंगेर राजपूतब, घेलखंड, रीवां, सागर आदि के राजपूत अपनी कन्याएँ किसी अन्य कुल में देने से बचने के लिए कन्या पैदा होते ही सूतिकागृह में मार डालते थे। नमक चटा कर भी मारने का तरीका था। अवध में श्रृंगेर राजपूतों को छोड़कर अन्य सभी बड़े घराने के राजपूत अपनी कन्याओं की हत्या करा देते थे। हत्या के १३ दिन बाद ब्राह्मण से प्रायश्चित्त कराते थे। इस प्रायश्चित्त के अवसर पर पुरोहित कोई दक्षिणा वग़ैरह नहीं लेते थे। केवल साथ में भोजन करते थे। स्लीमन के कथनानुसार यह प्रथा चारो ओर फैली हुई थी। डायरी में स्थान-स्थान पर इसका जिक्र है।[2]

१५ जनवरी[3] को मियांगंज, फिर १६ तारीख को सई के बायें किनारे, फलों

१. स्लीमन ने अपनी डायरी के २७८ पृष्ठ पर बादशाह के शासन की निन्दा करते हुए लिखा है कि सड़क के किनारे कोई गांव नहीं बसते क्योंकि सरकारी फौजें लूटती हैं पर वे नवाबगंज की प्रशंसा न छिपा सके और बादशाह के शासन की तारीफ भी कर बैठे।

२. भाग दो, पृष्ठ ३४ पर स्लीमन ने लिखा है कि लड़का पैदा होने पर पुरोहित को १० रुपया इनाम मिलता था। केवल घनकौड़ी राजपूत कन्या नहीं मारते थे। यह बात शायद कहीं-कहीं होती रही हो पर सब जगह यह प्रथा होती तो स्लीमन ने स्थान-स्थान पर राजपूतों की कन्याओं में दहेज प्रथा का ज़िक्र क्यों किया है?

३. १८ जनवरी से दूसरा भाग शुरू होता है।

के वृक्ष से भरपूर स्थानों से गुज़र कर १७ जनवरी को स्लीमन संडीला पहुंचे। १६ ता० को स्लीमन से बादशाह की फ्रान्टियर पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट राजा ग़ालिबजंग मिले जो डाकुओं का एक गिरोह पकड़ कर ले जा रहे थे। इन डाकुओं में अधिकांशतः पासी थे। "अवध में १००० पासी परिवार हैं और ये सांप हैं सांप ?"

हिन्दुओं की रक्षा और यात्रा का रहस्य

१८ जनवरी तक रेसिडेन्ट संडीला में रहे। इसका उत्तरी भाग ऊसर है। यहां पर पकी ईंट के बने बड़े अच्छे-अच्छे मकान हैं। जून, जुलाई, अगस्त में वर्षा न होने के कारण जानवरों के लिए चारा का अभाव है। यहीं पर धरुआ के राजा मर्दनसिंह मिलने आये। "सज्जन पुरुष हैं।" हटिया हसन ग्राम की ज़मीन में बहुत निकट पानी है। पांच-दस रुपये में कुआं तैयार हो जाता है। सिंचाई का अच्छा प्रबंध है। खेती काफ़ी अच्छी है। "यहां की आबोहवा मुझे सबसे अच्छी लगी। यहीं से दस मील की दूरी पर हिन्दुओं के देवता ब्रह्मा २८,००० सन्तों को लेकर आये थे और वहीं पर तपस्या की थी। इस स्थान का नाम नैमिषारण्य है। मिसरिख यहां से कुछ ही मील पर है। दधीचि का स्थान है।"

२० जनवरी को वेणुगंगा और २१ तारीख़ को १० मील उत्तर-पश्चिम "साकिन" स्थान पहुंचे। यहां बढ़िया पेड़, बाग़, खेती सभी कुछ था। २२ जनवरी को तंदीवा पहुंचे तो वहां भी बढ़िया खेती और सम्पन्न काश्तकार मिले यद्यपि ठगौर महमूदी और मंडीपाली के जमींदार डाकू हैं। यहां शाही छावनी होनी चाहिए। तंदीवा में दिलाराम २० वर्ष तक नाज़िम थे। बीच में हुसेनअली नाज़िम हुए। अब दिलाराम का बेटा शिवनाथ नाज़िम है, पर वह बीमार रहता है। लेकिन उसका सहायक केदारनाथ बड़ा योग्य अफसर है। "अवध में ऐसे योग्य अफ़सर कम मिलेंगे।" लखनऊ से १० मील दूरी पर करोड़ी ग्राम है। "यहां के जितने पढ़े लिखे लोग हमारी नौकरी में हैं, उतने कलकत्ता छोड़कर भारत में और कहीं नहीं[1] यानी किसी एक नगर वाले और कहीं नहीं हैं।"

"अवध के सरकारी कर्मचारी बहुत ख़राब हैं। सन् १८१४ में गाजीउद्दीन हैदर ने ५० लाख रुपया इसलिए दान किया था कि सराय बने, नहर खुदे, जनता के लाभ के काम हों। पर कर्मचारियों ने सब रुपया खा लिया और जनता की सराहना

१. डायरी भाग २. पृष्ठ १०

के नक़ली पत्र भिजवा दिये।[१]. . . .पर इतना होने पर भी हिन्दू और मुसलमान ज़्यादातर मुसलमान नवाब से अप्रसन्न होने पर भी हमारी अमलदारी कानपुर वग़ैरह में थोड़े दिनों के लिए जाते हैं और फिर अवध वापस आ जाते हैं। वे बाहर जाते हैं तो परिवार यहीं छोड़ जाते हैं। उनको अवध में ज़्यादा अच्छा लगता है और आराम मिलता है।[२]. . . .आज (२१ जनवरी, १८५०) किसानों ने मुझसे शिकायत की कि हमारे कैम्प के एक सिपाही ने उनका भूसा लूट लिया।[३] बात असल यह है कि हमारा सामान ढोने वाली गाड़ियां बादशाह की हैं। हर गाड़ीवान को पहले २७ रुपया ८ आना माहवार मिलता था जिससे वह भूसा भी ख़रीदता था। अब उसे १४ रुपया माहवार मिलता है जिसमें से ढाई रुपया दफ़्तर के खर्च में काट लिया जाता है। इसलिए वह लूटपाट कर काम चलाता है। पहले हर तेलिंगा पल्टन में ६०–७० सामान ढोनेवाली गाड़ियां थीं। अब २२ ही रह गयी हैं।[४] . . . अवध भर में कहीं भी कोई अच्छी मस्जिद नहीं मिली। न अच्छे मकान ही। फ़ैज़ाबाद नष्ट हो रहा है। अयोध्या में हिन्दू मंदिरों को छोड़कर खंडहर रह गया है। राज्य भर में हिन्दू मंदिर, हिन्दू तालाब, हिन्दू तीर्थस्थान भरे पड़े हैं।"[५]

"मेरे सहायक कप्तान वेस्टन मेरे पीछे-पीछे यात्रा में आ रहे थे। उनसे कुछ जमींदारों ने पूछा कि इस यात्रा का रहस्य क्या है? क्या अंग्रेज़ी हुकूमत आने वाली है? वेस्टन ने कहा कि "नहीं, हमको बादशाह को शासन-सुधार संबंधी सुझाव देने हैं। पर, क्या आप ब्रिटिश हुकूमत चाहते हैं।" लोगों ने कहा कि "आ जाय, पर कानून हमारे देश का हो क्योंकि

१. गाजीउद्दीन जब जनता का इतना ध्यान रखते थे तो उनको कई स्थान पर स्लीमन ने निकम्मा क्यों लिखा है? वज़ीर आग़ामीर की भी प्रशंसा कैसे की है?— लेखक

२. पृष्ठ १०—भाग २ ३. पृष्ठ १४, भाग २

४. डायरी भाग २, पृष्ठ १४। बादशाह ने जहाँ भी कहीं ख़र्च घटाया है, स्लीमन को शिकायत है। यद्यपि उनकी फ़िज़ूलखर्ची की वे बारबार निंदा करते हैं।

५. पृष्ठ २७—यह तो बड़ी तारीफ़ की बात है कि अवध के मुसलिम बादशाह हिन्दू पवित्र स्थानों तथा मंदिरों की पूरी रक्षा करते थे।

ब्रिटिश अदालतों की और उनके क़ानून की भयंकर शिकायतें हमने सुनी हैं।"[1]

"अवध भर में आम के अच्छे पेड़ भरे पड़े हैं। सेमल है, इमली है, असल में हमारे राज्य से अच्छे पेड़ हैं।"[2]

२६ जनवरी को बसोरा पहुंचे। यहां का नाज़िम हाफ़िज़ अब्दुल्ला बड़ा ईमानदार आदमी था। नवम्बर, १८४९ में मरा। उनकी जगह उनके तेरह वर्ष की उम्र के लड़के अमीर ग़ुलाम को मिली है। वह भी होनहार है।[3]

बसोरा के ज़मींदार राजा केवलसिंह थे। पास में ही कटियारी के ज़मींदार राजा रणजीतसिंह थे। "अवध की सरकार हमसे बारबार आपत्ति कर चुकी है कि उसके राज्य के अत्याचारियों को कम्पनी की सरकार द्वारा तथा उसकी प्रजा द्वारा प्रश्रय मिलता है।"[4]

दानी किसान

२७ जनवरी तथा २८ जनवरी शाहाबाद पाली बहुत साफ़-सुथरा गांव है। शाहाबाद के नाज़िम सबसुखराय महाजन हैं। शाहाबाद में पठानों की भी बस्ती है जो किसानों को कर्जा देकर तबाह करते रहते हैं। नाज़िम ने इनका कर्ज़ देना बन्द कर दिया। पठान बदला लेने की फ़िराक़ में थे। लखनऊ में ३० नवम्बर, १८४९ की रात को चांद दिखायी पड़ा। शाहाबाद में २९ की रात को ही। चांद दिखायी पड़ने के दस दिन बाद मुहर्रम होता है। शाहाबाद में पठानों ने २९ तारीख को ही ताजिया बिठाया और फिर झगड़ा हो गया। पठान सबसुखराय के मकान पर चढ़ दौड़े और उनका मकान मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। सबसुखराय तबाह हो गये और भाग कर शाहजहांपुर चले गये। ३० जनवरी को स्लीमन कड़हियापारा पहुंचे। यहां दीमक बहुत पैदा होते हैं। लगते हैं। यहां के किसान इतने दानी हैं कि आवश्यकता से अधिक ग़ल्ला पैदा होने पर सब दान कर देते हैं।

१. पृष्ठ १२—इससे बढ़कर कम्पनी की सरकार की और क्या निन्दा हो सकती है। वेस्टन से किसी ने नहीं कहा कि हम ब्रिटिश राज का स्वागत करते हैं। और उनके क़ानून की कितनी भर्त्सना की है। २. पृष्ठ [illegible]

३. पृष्ठ ३२

४. डायरी भाग २, पृष्ठ ३६

१ और २ फ़रवरी को मोहमदी पहुंचे। ३० वर्ष में यहां १७ नाज़िम रह चुके हैं जिनमें १५ नाज़िम इजारा पर काम करते थे। ४ फ़रवरी को गोकरननाथ में अच्छी खेती दिखायी पड़ी। वहां के राजा लोनीसिंह मिलने आये। बादशाह के बड़े अच्छे ज़मींदारों में इनकी गणना है पर १ लाख रुपया लगान वसूल कर ५०,००० रुपया ही बादशाह को देते हैं। यह आदमी लुटेरा है। बख़्तावरसिंह ने कहा[१] कि बादशाह इसका कुछ नहीं कर सकता। जब इनका पेट भर जाता है तो इनकी तथा इनकी रियासत की हालत बिगड़ने लगती है। "स्लीमन लिखते हैं—"मुझे इस मौक़े पर एक बात याद आ गयी। नर्मदा नदी के किनारे उमरावसिंह ने सन् १८४३ में मुझसे कहा था—...हमारे देश में कुछ ऐसे लोग हैं जो कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। यदि उनको समूचा हिन्दोस्तान दे दीजिए तो वे काबुल पर चढ़ दौड़ेंगे।"[२]

५ फ़रवरी को करणपुर मिरतहा पहुंचे। वहां भी अच्छी खेती है। लोग ख़ुशहाल हैं। "ऐसा प्रतीत होता है कि अवध के अन्य भागों के विपरीत यहां वर्षों से ज़मींदारों का ज़ोर-ज़ुल्म नहीं हुआ है, अतएव लोग ख़ुशहाल हैं।"[३]

ओयल और महेवा

८ मार्च, (फ़रवरी) १८५० को ओयल पहुंचे।[४] यहां के नाज़िम रज़ा कुली ख़ां थे। वे हिन्दोस्तान पर हमला करने वाले नादिरशाह के परपोते थे। रज़ा की उम्र २२ साल की थी जब वे अपने पिता के साथ ईरान से भारत आये थे। उन्होंने मुझसे (स्लीमन से) कहा—"हिन्दोस्तान ऐसा कोई मुल्क दुनियां में नहीं है।"

अस्तु, यह इलाक़ा तीन राजपूत परिवारों के हाथ बंटा है—खिमरा रियासत जिसमें ८२ गांव तथा १२,४८६ रुपया लगान जमा होता है; ओयल रियासत जिसमें १७० गांव हैं जिनका २४,९०० रुपया लगान जमा होता है और महेवा रियासत है जिसमें ७० गांव की २०,८३५ रुपया वार्षिक लगान जमा होता है।

१. डायरी भाग २, पृष्ठ ९३
२. यह बात अंग्रेज़ों के लिए ख़ूब लागू होती है—लेखक
३. डायरी भाग २, पृष्ठ १०१
४. ५ फ़रवरी से ८ मार्च तक स्लीमन कहां रहे यह भ्रम हो सकता है क्योंकि ५ फ़रवरी के बाद ८ मार्च छपा है। पर इसे मार्च न समझकर ८ फ़रवरी पढ़ना चाहिए।

यहां पर खालसा यानी सरकारी ज़मीन में ६६ गांव हैं जिनसे २१,८८१ रुपया वार्षिक सरकारी लगान जमा होता है। यानी यह पूरा इलाक़ा कुल १,१०,९९२ रुपया वार्षिक निकासी का है। स्लीमन लिखते हैं—"ओयल के राजा अनुरोध सिंह बड़े ज़ालिम थे। इनकी राजा अजबसिंह से बड़ी अदावत थी। लहुरपुर की रियासत के राजा शिवबक्ससिंह की वार्षिक वसूली ५४,६४० रुपया थी जिसमें से १७,५८७ नानकार तथा ३७,०५८ रुपया अवध सरकार को देना था। पर, वह नहीं देता था।" १० मार्च (फ़रवरी) को लहुरपुर पहुंचे तो वहां की भूमि को उपजाऊ तथा खेती को अच्छी दशा में पाया, केवल वहां के रहने वाले राजा किशन-बक्स से डरे हुए हैं। ११ मार्च (फ़रवरी) को कुसुरेला पहुंचे। यहां मुनवुरुद्दौला के पास ३०० गांव हैं जो बसाये जा रहे हैं और खेती बड़ी अच्छी है। यह सब ज़िला खैराबाद में है। १२ मार्च (फ़रवरी) को सीतापुर पहुंचे। वहां की खेती भी अच्छी है। फ़स्ल भी अच्छी है। यहां नवाब की एक सेना भी तैनात है।

महमूदाबाद

"अवध में राजाओं ने कम से कम २५० निजी क़िले बनवा रखे हैं और उनके पास ५०० तोपें हैं।" १४ फ़रवरी को पीरनगर, जहां तीर-धनुषधारी पासी रखवारे थे, १७ फ़रवरी को बिसवां और १९ फ़रवरी को कहाँरपुर पहुंचे। यहां पर अवध की सबसे अच्छी रियासत के विख्यात राजा महमूदाबाद नवाबअली से पहली भेंट हुई। यह रियासत अकरामअली की स्थापित की है। उनके पुत्र मुसा-हिबअली की ४० वर्ष पूर्व मृत्यु हो गयी। उनकी बेवा ने २८ वर्ष तक योग्यता के साथ राज्य संभाला और १८३८ में वे मर गयीं। नवाबअली को उन्होंने गोद लिया था। बिलहरी की रियासत राजा महमूदाबाद के बड़े भाई आबिदअली के पास है। नवाबअली ने मिठनसिंह नाज़िम को मिलाकर सेमरी की रियासत भी कब्ज़े में कर ली और इसी प्रकार उनके अनेक किस्से हैं। "राजा के पास इतना काफ़ी रुपया है कि वे दरबार में अपने पक्ष में व्यक्ति खरीद सकते हैं। उनके पास एक सुसज्जित सेना भी है।"[1]

२० फ़रवरी को महमूदाबाद से आधी दूर फ़तेहपुर पहुंचे। रास्ते में महमूदा-

१. इससे यही प्रकट होता है कि बादशाह दुष्ट ज़मींदारों का दमन करने के लिए काफी सतर्क थे।

बाद की लखपेड़ी यानी एक लाख पेड़ों का बाग़ मिला जिसमें अधिकांश वृक्ष आम के हैं। ४ वर्ष पहले यह बाग़ लगाया गया है। २१ फ़रवरी को पासी राजा गुरुबख्शसिंह की रामनगर धमीरा रियासत के बरियारपुर ग्राम पहुंचे।

गंगाबख़्श को फांसी

२५ फ़रवरी, १८३८ को इस ज़िले के आमिल दर्शनसिंह ने दरबार को लिखा कि देवा के गंगाबख़्श लगान नहीं दे रहे हैं। इन इलाकों के राजा डाकू हैं। २७ फ़रवरी को ४८ मील बराबर चलकर दर्शनसिंह सुबह तड़के क़ासिमगंज पहुंचे। उनके पास ३ तोपें थीं। उन्होंने क़ासिमगंज में गंगाबख़्श को घेर लिया। राजा मय साथियों के पकड़ा गया। बादशाह ने ३ मार्च को इस वीरता के लिए दर्शनसिंह को ख़िलवत भेजी और राजा का ख़िताब दिया। गंगाबख़्शसिंह जेल भेजे गये। लखनऊ जेल की हालत अच्छी नहीं थी। क़ैदियों को बादशाह की तरफ़ से भोजन के लिए केवल चार पैसा प्रतिदिन मिलता था। इसमें से दो पैसे फ़ी क़ैदी जेलर अपने पास रख लेता है और रोज़ क़ैदियों को बाजार में भीख मांगकर खाने के लिए भेज देता है। आजकल जेलर अपनी नौकरी क़ायम रखने के लिए ५०० रुपया माहवार घूस देता है। वह क़ैदियों को बेचता भी रहता है। तो फिर गुरुबख़्शसिंह लखनऊ जेल से आसानी से भाग आये। उन्होंने क़ासिमगंज का दुर्ग फिर से ठीक कराया। अब वे, पासी से राजपूत बन गये। और अपनी बहन पवार राजा के यहां ब्याह दी है।

१८४९ में वजीर नक़ी खां ने डाकुओं को दबाने के लिए रेसिडेन्ट से पल्टन मांगी। २६ मार्च, १८५० को कप्तान बायल, बार्लो तथा बादशाह की पलटनें एक साथ चल पड़ीं। डाकू रात को ही भाग गये। गंगाबक्स भी क़ासिमगंज से भाग गये थे। २९ मार्च को भिटिया के क़िले पर दोनों दलों में भिड़न्त हुईं। कप्तान एलरटन मारे गये। अंग्रेज़ी तथा नवाब की फ़ौजें हार कर भागीं। पर बाद में गंगाबख़्सिंह व उनका लड़का रणजीतसिंह पकड़े गये। १८ सितम्बर १८५० को, अक्टूबर, १८४९ में देवा में बादशाह के सिपाहियों को मारने के अपराध में दोनों को फांसी पर लटका दिया गया। इनका ख़ास साथी भगवन्तसिंह फ़रवरी, १८५१ में मारा गया। इस प्रकार दरियाबाद, रुदौली, रामनगर धमीरा, देवा, जहांगीराबाद, जगदीशपुर व हैदरगढ़ के इलाक़े डाकुओं से साफ़ हो गये।[1]

१. गंगाबख़्श काण्ड पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा।

हत्याकांड

२३ फ़रवरी को बद्दूसूरा पहुंचे। यहां के ज़मींदार सब डाकू हैं। पर ज़मीन अच्छी और खेती भी काफ़ी अच्छी है। २४ फ़रवरी को दरियाबाद पहुंचे। यहां पता चला कि देवा के भूरे खां ने सिपाही (कम्पनी के) सरदार खां के दो लड़के खुदाबख्श व अताबख्श को पकड़ लिया था और जब सरदार खां मुंहमांगा रुपया न दे सके तो उन दोनों लड़कों को पेड़ से बांध कर पहले तीर से मार डाला, फिर बोटी बोटी काट डाला। तीसरा लड़का अलीबख्श को भी पकड़कर क़ैद में रखा। सरदार खां को अपने बच्चों की हत्या का पता चला तो वह पागल हो गया। इस ग़रीब पर यह सब विपत्ति आने का कारण यह था कि सालतीमऊ में इसके पास १८ बीघा ज़मीन थी जिसकी २६ रुपया साल मालगुज़ारी कर दी गयी। वह न दे सका। इसीलिए यह सब विपत्ति आयी। भूरे खां अक्टूबर, १८५१ में पकड़ा गया और उसे कालेपानी की सज़ा हुई। २६ फ़रवरी को सिधोरी, २७ फ़रवरी को सुत्रिक पहुंचे। यहां पर शेख़ सालार की बड़ी मज़ार है। ये बहराइच के सय्यद सालार के पिता हैं। इनके साथ महमूद गज़नवी की बहन ब्याही थी। इसी से सालार ख़िताब हुआ था। २८ फ़रवरी को चिनहट गये। और फिर १ मार्च से ८ मार्च तक सुलतानपुर के ज़िले में, ९ मार्च से १६ मार्च तक उलदीमऊ ज़िले में, १६ मार्च देवा-जहांगीराबाद ज़िले में, १७ को बांगुर १८–१९ मार्च सलोन ज़िले में, २० को बैसवाड़ा, २१–२२ मार्च हैदरगढ़, २३ मार्च, खैराबाद-महमूदी तथा २४ मार्च को वारी और मुचरेता इलाक़े में घूमते हुए २८ मार्च को चिनहट पहुंचे।

ज़मींदारों की लूट

डायरी के छठे अध्याय में स्लीमन लिखते हैं कि रुदौली ज़िले के भानूपुर ग्राम में कुचई चौधरी की कुछ ज़मीन थी। उन्होंने इस भूमि को गणेशपुर के ज़मींदार मेहरबानसिंह को दे दिया। पुरिया चौधरी कुचई चौधरी का पट्टीदार था। उसे यह बात पसन्द न आयी। उसने गांव वालों को भड़काया कि गांव छोड़कर अन्यत्र चलो। मेहरबानसिंह ने ग्राम पर हमला किया और उसी साल यानी १८३० में भानूपुर का पूरा गांव अपने क़ब्ज़े में कर लिया और पुरिया चौधरी को मार डाला। भानूपुर के एक पट्टीदार राजाराम ने मेहरबानसिंह पर सन् १८३२ में हमला करके उसे मार डाला। गांव छीन लिया। मेहरबानसिंह ने अपनी प्रथम पत्नी के देहान्त के बाद तेऊर के राजपूत भवानीसिंह पर हमला करके ज़बर्दस्ती उनकी

कन्या से विवाह कर लिया था जिससे उनको एक लड़का तथा एक लड़की थी। लड़का महीपतसिंह का क़ब्ज़ा गणेशपुर पर हो गया और उसने गंगासिंह और छंगासिंह को छोड़कर अपने सभी पट्टीदारों को मार डाला। सन् १८४३ में। तभी से वह डाकू सरदार बन गया है। गोमती की घाटियों में उसका भवानीगढ़ नामक दुर्ग है। उसने ब्रिटिश पैदल सेना के सूबेदार बलभद्रसिंह तथा उनके भतीजे मगनसिंह को गोली मार दी और उनके लड़के सर्वजीतसिंह को काट डाला। औरतों को नंगा करके उनके ऊपर तेल छिड़क कर आग लगा दी। जब वे बहुत जल गयीं तो उन्हें छोड़ा गया। १७,००० रुपया मकान में गड़ा हुआ मिला। ज़ेवर, कपड़ा, क़रीब १०,००० रुपये का सामान मिला। दोपहर होते-होते मोहलरा का आमिल आया। दूर से गोली दागता रहा। एक डाकू मारा गया। डाकू सरदार का लड़का पकड़ा गया। आमिल उसे छः महीने तक अपने पास रखे रहा फिर रुपया लेकर उसे भी छोड़ दिया।

मई, १८४८ में महीपतसिंह ने शिवबख़्स माली पर डाका डाला। इसके पूर्व, अगस्त, १९४७ में उसने ग्वालियर पल्टन के सूबेदार मेहरबान तिवारी पर रुदौली ज़िले के हरिहरपुर ग्राम में डाका डाला था। दस बजे रात को, मकान में ६५० रुपया नक़द मिला। सूबेदार व उसके भाई को जंगल में उठा ले गये और १००० रुपया मांगा। किसी प्रकार ४०० रुपया व एक घोड़ा लेकर छोड़ दिया। इसके भी पहले, जनवरी, १८४७ में इसी ज़िले के बाहापुर ग्राम पर उसने डाका डाला था। अप्रैल १८४७ में गणेशपुर के रामऔतार ब्राह्मण के घर डाका डाला और ३५ दिन तक उसके परिवार को यातना देकर सब कुछ वसूल कर लिया था। जुलाई, १८४७ में बन्नी गांव के छब्बेलाल तिवारी पर डाका पड़ा। अगस्त में तोरमपुर के बिचुक ब्राह्मण का मकान लूटा और उसकी नाक कान काट ली। यही दुर्गत शेख सुबराती की भी हुई। दिसम्बर में मोतीलाल मिश्र का घर लूटा और उसका सात वर्ष का बच्चा उठा ले गये। जून, १८४८ में बीसलपुर का पुरवा के फुर्सत पांडे को गणेशपुर से पकड़वा कर मंगवाया और एक महीने तक मारते-पीटते रहे। उसके भाई ने २०६ रुपया इकट्ठा करके भेजा तो छोड़ दिया। एक बड़ा डाका १८४८ के अक्टूबर में डाला गया। जनवरी, १८४९ में गणेशपुर के उमरावसिंह के घर डाका पड़ा। उनके घर के कई प्राणी मारे गये। ५१० रुपया नक़द व सामान लूट ले गये।

रेसिडेन्ट ने[1] अवध दरबार से अपील की यह शातिर डाकू पकड़ा जाय। दरियाबाद के आमिल को हुक्म हुआ कि महीपतसिंह पकड़ा जाय। उसकी गिरफ़्तारी पर ३००० रुपया इनाम घोषित किया गया। बादशाह के खुफ़िया विभाग के रामधन और रामदीन इस काम पर चले। रामधन महीपत के हाथों पड़ गये। उनकी बोटी बोटी काट डाली गयी। रामधन के साथ गंगा अहीर भी था। उसे कांटों पर सुलाया गया। खूब पीटा गया। एक आदमी ने उसकी नाक काट ली, एक ने कलाई काट ली, एक ने एक हाथ की उंगली काट ली और फिर उसे वैसे ही छोड़कर चले गये। उधर गश्त लगाते हुए बादशाह की सरहद्दी पुलिस की टोली के साथ उसके प्रधान कप्तान ऑर[2] पहुंचे। उन्होंने उसे लखनऊ अस्पताल भेजा। जब महीपत पकड़ कर लखनऊ भेजा गया तो शिनाख्त की कार्यवाही के लिए उसे अस्पताल में गंगा अहीर के सामने ले जाया गया। महीपत को देखते ही मारे डर के गंगा अहीर बेहोश होने लगा।

२५ मार्च, १८५० को अवध दरबार ने राजा मानसिंह[3] को महीपत को पकड़ने के लिए भेजा गया। उनके साथ कप्तान वेस्टन, बनबरी और मैगेनससी की पलटनें भी थीं। भवानीगढ़ पर धावा बोल दिया गया। महीपत ग्यारह साथियों को लेकर क़िले के बाहर हो गया। भिखई डाकू सरदार मारा गया। सबसे बेरहम डाकू अकबरसिंह का एक हाथ गोली से उड़ गया। वह पकड़ा गया। भवानीगढ़ का किला गिरा दिया गया। इसी फ़ौज ने इसी दौरान में डाकू सरदार जगरनाथ चपरासी का फतेहपुर, उसका मऊ, मंगरिया, यहियांपुर, व इटौजा अपने कब्ज़े में कर लिया और नष्ट कर दिया। १ जुलाई, १८५० को रामनगर के ज़मींदार पृथ्वीपतसिंह ने महीपतसिंह को गिरफ़्तार करवा दिया। महीपत का इलाक़ा उनको इनाम में मिला और महीपत मय साथियों के हथकड़ी-बेड़ी में लखनऊ भेजे गये। पृथ्वीपत को ५०० रुपया माहवार नानकार बढ़ा दिया गया और महीपत तथा गजराज को कालापानी की सजा हुई।

१. "रेसिडेन्ट ने सूचना दी" से स्लीमन का तात्पर्य है कि बादशाह को कुछ पता भी न था कि प्रजा पर क्या बीत रही है।

२. Captain Orr ३. राजा मानसिंह रघुबरसिंह के भाई थे। स्लीमन ने इनकी कई स्थानों पर बुराई की है।

हवाई जहाज़ का प्रारंभ

बादशाह नसीरुद्दौला हैदर के समय की एक बड़ी रोचक कथा स्लीमन ने लिखी है। वे लिखते हैं कि उन दिनों एक अंग्रेज़ नवयुवक ने एक बड़ा गुब्बारा तैयार किया जिसके नीचे अपने बैठने के लिए एक नौका जैसी चीज़ बनायी। सब मिलाकर यह यन्त्र ६० फ़ुट लम्बा और १२ फ़ुट चौड़ा था। नाव पर उसने कुछ नक़ली मछलियां तथा एक बन्दूक़ रख ली ताकि बड़ी चिड़ियों को मार सके। युवक नाव पर बैठ गया। गुब्बारा छोड़ा गया। बादशाह भी ऊंची छत पर बैठे तमाशा देख रहे थे। जब गुब्बारा बादशाह के सामने से गुज़रा तो युवक ने टोपी उतार कर झुक कर सलाम किया। युवक का चचा नीचे खड़ा सब देख रहा था। कुछ लोग गुब्बारे के पीछे-पीछे भागने के लिए चले। गुब्बारा फ़ैज़ाबाद की सड़क की ओर चला। जो किसान खेतों पर काम कर रहे थे या जो लोग सड़क पर चल रहे थे वह आकाश में एक आदमी को उड़ते हुए देखकर डरकर भागने लगे। बहुत से बेहोश हो गये। चिनहट के पुल के पास आकर युवक एक पेड़ के पास रस्सा नीचे फेंक कर उतरने लगा। उसने रस्सा नीचे गिराकर आवाज़ लगायी—"पकड़ो, पकड़ो।" पर नीचे लोगों ने समझा कि शैतान पकड़ने आ रहा है। वे भागे। तब तक गुब्बारा के पीछे चलने वालों की टोली आ पहुंची। नीचे से रस्सा पकड़ लिया गया। पर गुब्बारा ऊपर खींचे लिये जा रहा था। युवक ने उसके पेट में चाकू मारा। काला धुआं निकला। युवक नीचे उतर कर सिगार पीने लगा। कहने लगा "ऊपर बड़ी सर्दी थी।" बादशाह ने उसे हज़ारों रुपया इनाम दिया।

अस्तु, स्लीमन की डायरी २८ मार्च, १८५० को समाप्त होती है। तीसरे प्रहर चिनहट से वे लखनऊ वापस आये। लखनऊ में, रेसिडेन्सी से तीन मील दूरी पर वली अहद उनका स्वागत करने आये। उनके साथ फ़रहबख़्श महल गये जहां उनका दरबारी स्वागत हुआ।

उनकी दो भागों में प्रकाशित मोटी पुस्तकों का ऊपर के पृष्ठों में मैंने सारांश दे दिया है। उन पृष्ठों से यह स्पष्ट होता है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि अवध के ज़मींदार, इलाक़ेदार बड़े ज़ालिम थे, उनका कोई नैतिक स्तर नहीं था, फिर भी अवध का सभी भाग हरा-भरा, सम्पन्न तथा फल, फूल के वृक्षों से और बढ़िया खेती से सुखी था। देश के उजाड़ तथा तबाह होने का कोई लक्षण नहीं था। कहीं पर भी कोई भयानक बीमारी या गन्दगी की शिकायत नहीं थी। रोज़गार भी था, सड़कें भी थीं। आबपाशी का प्रबंध भी था, पुलिस, पहरा का

भी प्रबंध था। कुछ ज़मींदार ज़ालिम ज़रूर रहे होंगे। कुछ बातें सही भी होंगी। कुछ ज़मींदारों का वर्णन सही हो सकता है। पर ऐसा कोई राज्य शायद ही हो जिसमें दुष्ट डाकुओं का गरोह न हो, डाका या खून न होता हो, महीपतसिंह जैसे अनेक भयानक डाकू भारत की ब्रिटिश अमलदारी में भरे पड़े थे। महीपत अपने डाकू बनने के ६ वर्ष में ही पकड़ा गया। सुलताना या मानसिंह डाकुओं की गिरफ़्तारी में दर्जनों वर्ष आज के ज़माने में भी लग गये हैं।

स्लीमन अवध के ज़मींदारों से बहुत नाराज़ थे। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि बलरामपुर जैसी कुछ रियासतों को छोड़कर कोई राजा-रईस अंग्रेज़ों का मित्र नहीं था। किसी पर उनको भरोसा नहीं था। ज़मींदारों की निन्दा करते करते वे लिखते हैं :—

"यदि अवध के नरेश तथा उनके कर्मचारी बड़े ज़मींदारों का उनके अत्याचारों तथा लूट में साथ देते रहे तो ठीक है अन्यथा ये बड़े ज़मींदार बादशाह तथा उसके अफ़सरों को अपना स्वाभाविक शत्रु समझते हैं और बिना अपने जानमाल की पूरी ज़मानत लिए कभी भी उनके पास नहीं जाते।"

"....पर बादशाह इन बड़े ज़मींदारों को एक साथ मिलाकर इसलिए एक झंडे के नीचे नहीं ला सकता कि वे किसी दूसरे देश पर आक्रमण करें, उसे लूटें और इस प्रकार बादशाह और उनको भी समृद्धि प्राप्त हो; यश प्राप्त हो, नये पद और अधिकार मिलें, नये खिताब मिलें तथा भावी पीढ़ी की प्रशंसा तथा यशगान प्राप्त हो.... दो हज़ार सात सौ वर्ष पहले राम ने[१] लंका पर आक्रमण करके जो किया था वह ये लोग नहीं कर सकते....इसलिए या तो उनको युद्ध करना ही छोड़ देना होगा या राम के समय से जो ये करते आये हैं, यानी आपस में लड़ते आये हैं, वही करते रहेंगे।"[२]

स्लीमन का प्रस्थान

स्लीमन ने अपनी डायरी में बादशाह के शासन पर तथा स्वयं बादशाह पर पचासों आक्षेप किये हैं और स्लीमन की ही रिपोर्ट के आधार पर उनके

१. स्लीमन ने भगवान राम के साथ यह बड़ा भद्दा मजाक किया है तथा अपनी नीच मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

२. डायरी, भाग २, पृष्ठ २८०।

उत्तराधिकारी जेनरल आउट्रम ने बादशाह पर सात गहरे अभियोग लगाये थे। स्लीमन तथा उनके सहायक मेजर बर्ड में अवध की नीति के सम्बन्ध में पटरी नहीं बैठती थी, यह हम ऊपर लिख आये हैं। २० मई, १८५२ को मेजर बर्ड अजमेर में रेसिडेन्ट लो के सहकारी बनकर राजस्थान गये और उनके स्थान पर कप्तान हेज़ नियुक्त हुए। अजमेर जाने के पहले मेजर बर्ड ने बादशाह से अकेले भेंट की और उनसे बहुत देर तक बातें करते रहे।[1] स्लीमन का स्वास्थ्य भी ख़राब रहने लगा। उन्होंने १५ महीने की छुट्टी की दख़्वास्त दी। बादशाह को लिखा कि आबोहवा बदलने के लिए एक महीने तक छावनी मंडियाहू में रहेंगे। उनके स्थान पर कप्तान हेज स्थानापन्न रेसिडेन्ट बनाये गये।

स्लीमन ने अपना सामान जेकौब जोन्स के यहां नीलाम करने के लिए भेज दिया। ५ अक्टूबर, १८५४ की संध्या को बीवी के साथ मेरठ के लिए रवाना हुए। रास्ते में उनको सन्देह हो गया कि कहीं बादशाह ने डाक्टरों को मिलाकर कलकत्ता यह लिखवा दिया कि मेरी तन्दुरुस्ती लखनऊ में रहकर काम करने लायक़ नहीं है, तो मुझे फिर अवध का रेसिडेन्ट नहीं रखा जायगा। अतएव वे चेष्टा करने लगे[2] कि किसी प्रकार उनका तबादला न हो और थोड़े ही दिन के लिए वे बाहर जायं। मेरठ के डाक्टरों ने उनको सलाह दी कि लखनऊ की आबोहवा शिमला से अच्छी है। फलत: स्लीमन ने कलकत्ता पत्र लिखा। पर कलकत्ता से जेनरल आउट्रम को अदन से लखनऊ आने का आदेश हो चुका था अतएव स्लीमन को उत्तर भेजा गया कि अपनी पन्द्रह महीने की छुट्टी समाप्त कर फिर लखनऊ वापस आ सकते हैं।

स्लीमन की छुट्टी मंजूर होने का कारण केवल उनकी बीमारी होती तो उनकी यह प्रार्थना स्वीकार हो जाती कि कुछ दिनों मंडियाहू में स्वास्थ्य सुधार कर अपने काम पर वापस आ जायं। पर, स्लीमन के कई विरोधी पैदा हो गये थे। मेजर बर्ड ने उनकी काफी शिकायतें लिख भेजी थीं। दूसरे, ब्रैंडन[3] नामक अंग्रेज़ व्यापारी से बादशाह की मित्रता के कारण स्लीमन ने ब्रैंडन को लखनऊ से निकलवाया था। ब्रैंडन ने कानपुर में अपना कार्यालय खोल लिया था। वे लन्दन गये और वहां

१. सलातीने अवध, अध्याय ४३।
२. सलातीने अवध के ५२ वें अध्याय में इसका रोचक ज़िक्र है।
३. ब्रैंडन ने बादशाह के दुर्दिन में उनकी बड़ी सेवा की थी।

उन्होंने स्लीमन की बड़ी पोलें खोलीं। "आगरा" अखबार ने प्रकाशित किया था कि मुन्नाजान तवायफ़ (बादशाह के यहां गाना सुनाती थी) से स्लीमन का नाजायज़ ताल्लुक़ था।[1] तीसरी बात थी स्लीमन-डलहौज़ी का मतभेद। स्लीमन चाहते थे कि अवध का शासन कम्पनी अपने हाथों में ले ले। उनका विचार था कि यदि ऐसा हुआ तो अवध की जनता में १० में से ९ व्यक्ति इस शासन-परिवर्तन का स्वागत करेंगे।[2] पर वे चाहते थे कि बादशाह नाममात्र के बादशाह बने रहें जिससे उनके प्रति स्नेह करने वालों को भी कोई शिकायत न हो और रेसिडेन्ट को भी सब अधिकार मिल जाय। इसीलिए स्लीमन ने लंदन को इसी आशय का एक पत्र भेजा था। लार्ड डलहौज़ी तथा तत्कालीन ब्रिटिश नीति से उनका जो मतभेद था, वह भी इस पत्र से प्रकट हो जायगा। उनका सन् १८५४-५५ का लिखा एक निजी पत्र नवम्बर, १८५८ में लंदन "टाइम्स" में प्रकाशित हुआ था। स्लीमन लिखते हैं :—

"राज्यों को ज़ब्त करने की जो नीति इस देश में हमारा एक दल बरत रहा है तथा जिसे लार्ड डलहौज़ी और उनकी कौंसिल का समर्थन प्राप्त है, मेरी तथा भारत में अधिकतर योग्यतम व्यक्तियों की सम्मति में, हमको नीचे ले जाने वाली प्रवृत्ति है जिससे भूमि से सम्बन्ध रखने वाले सभी उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोग नंष्ट हो जायंगे। हमें तो ऐसे वर्ग को उत्पन्न करना चाहिए, उसे पोषण देना चाहिए. . . .हम देखेंगे कि कुछ वर्षों बाद परिस्थिति हमारे बिलकुल प्रतिकूल हो जायगी।"

अतएव, डलहौज़ी स्लीमन से अपना काम निकाल चुके थे, उन्हें लखनऊ से हटाना ही चाहते थे। ज्यों ही स्लीमन ने अपनी बीमारी की चर्चा की, उन्होंने हैदराबाद-निज़ाम को यहां भूतपूर्व रेसिडेण्ट जेनरल आउट्रम को, जो उस समय अदन में नियुक्त थे, भारत बुला भेजा। ५ दिसम्बर, १८५४ को आउट्रम लखनऊ पहुंचे और स्लीमन के रहने के स्थान दिलकुशा की कोठी में ठहरे। दूसरे दिन

१. 'सलातीने अवध' में लिखा है कि रेसिडेन्ट जेनरल लो कहा करते थे कि "जब हम किसी गली से गुजरते हैं, अक्सर कुत्ते दूर से भूंका करते हैं पर पास नहीं आते। ऐसे ही अखबार वाले भूंकते हैं। हमें क्या परवाह है।" अध्याय ५२

२. स्लीमन की डायरी—भाग २, पृष्ठ २१२।

बादशाह उनका स्वागत करने दिलकुशा गये। उसके बाद आउट्रम बादशाह के यहां "हाज़री" देने गये। फिर मंडियाहू का दफ़्तर देखने गये।

स्लीमन से उनके सहायक कितने प्रसन्न थे, इसका पता एक घटना से लगता था। स्लीमन के मेरठ रवाना होने पर कप्तान हेज़ ने उनका काम संभाला था और मुंशी जानकीप्रसाद ख़जान्ची को काम से हटा दिया था। मुंशी जी मेरठ गये और स्लीमन से हेज़ के नाम सिफ़ारिशी पत्र ले आये। हेज़ ने पत्र को पढ़कर उपेक्षापूर्वक डाल दिया और उस पर कोई कार्यवाही नहीं की।

वसीहअली से विरोध

स्लीमन में एक बहुत बड़ा दोष यह था कि वे मुखबिरों के–गुप्तचरों के, आदी थे। उन्होंने शहर में चारों ओर और बादशाह के आस-पास भी गुप्तचर लगा रखे थे। उनके इन्हीं गुप्तचरों में सर्फ़ुद्दौला मुहम्मद इब्राहीम और नवाब मुहम्मद ख़ां थे। इन्हीं लोगों ने स्लीमन से वसीह की शिकायत की। वे वसीह के पीछे पड़ गये। वसीहअली के ज़िम्मे बादशाह के मेहमानों की खातिर करना था, वैसे वे लगान विभाग में भी सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। मेजर बर्ड के कथनानुसार वे वज़ीर के उपसचिव थे। बर्ड के ही कथनानुसार वे महक्मा एहतराम के अध्यक्ष थे।

वसीहअली बादशाह के परिवार के पुराने सेवक थे। ६ मई, १८४१ को, बादशाह वाजिदअली शाह के पिता के समय में लखनऊ-स्थित ब्रिटिश सेना के प्रधान मेजर जेनरल एफ० जांस्टन ने इनके विषय में लिखा था कि "मैंने इनको सदैव आदरपूर्ण तथा सौजन्यपूर्ण पाया।" २३ नवम्बर, १८४७ को लार्ड हार्डिंग के कैम्प-इंचार्ज श्री डबल्यू० हैरिसन ने वसीहअली को प्रमाणपत्र दिया था :—"लखनऊ के बादशाह की ओर से नियुक्त वसीहअली मेहमानदार राइट ऑनरेबुल गवर्नर जेनरल की कानपुर से लखनऊ की यात्रा में उनके पड़ाव, सामग्री आदि का प्रबंध कर रहे थे, उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ, हमारे लिए पूर्ण संतोषजनक रीति से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।" लार्ड हार्डिंग के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री एच० एम० इलियट ने २२ नवम्बर, १८४७ को वसीहअली को प्रमाणपत्र दिया कि "जब तक वे हमारे कैम्प की हाज़री में रहें, हमारे लिए बड़े उपयोगी साबित हुए थे।"

और वसीहअली दो दरबारियों या स्लीमन के खुफिया दुष्टों की सिफ़ारिश पर स्लीमन की आंखों से ऐसा उतर गये थे कि वे बारबार बादशाह को उसे राज्य से हटाने के लिए मजबूर कर रहे थे। वसीह का एकमात्र दोष यह था कि वे बादशाह के शुभचिन्तक थे और स्लीमन से उनको सावधान करते रहते थे। उनका अच्छा

काम भी स्लीमन को बुरा लगता था। ऊपर हमने गंगाबख़्श और उनके पुत्र रणजीत-सिंह की गिरफ़्तारी का ज़िक्र किया है। वह बयान स्लीमन का है। अपने बयान में स्लीमन ने यह साफ़ उड़ा दिया है कि इन दोनों को पकड़ा किसने था। गिर-फ़्तार करने वाले वसीहअली थे। रेसिडेन्ट को इसका बड़ा सदमा हुआ कि यह नेक काम वसीहअली के हाथों क्यों हुआ। बादशाह वसीहअली को इनाम देना चाहते थे पर स्लीमन ने इसका विरोध किया। वज़ीर नक़ी खां भी वसीह को स्लीमन के कोप से बचाना चाहते थे। उन्हें फ़ैज़ाबाद भेज दिया। वहां से वे काकोरी चले गये। इन्हीं दिनों शाही कुतुबख़ाना (पुस्तकालय) से मूल्यवान पुस्तकें चोरी चली गयीं। वसीह ने इसका पता लगाया और किताबें प्राप्त भी कर लीं। स्लीमन को प्रसन्न करने के लिए वसीहअली ने पुस्तकें लाकर रेसिडेन्ट को दीं। फिर कल-कत्ता प्रार्थनापत्र भेजा कि मुझे लखनऊ रहने दिया जाय। स्लीमन ने अनुमति दे दी पर यह भी शर्त लगा दी कि वे बादशाह या वज़ीर के यहां नहीं जा सकते थे। पर वसीहअली रात को चुपचाप वज़ीर के यहां जाने लगे।

स्लीमन वसीहअली को निकलवाने पर तुले हुए थे। उनके फ़ैज़ाबाद भेजे जाने की घटना तो निकाले जाने के बाद की है। "यह आदमी बहुत ही समझदार, शिक्षित तथा अनुभवी था।" स्लीमन ने २ मार्च, १८४९ को बादशाह को लिखा कि "यह आदमी राजद्रोही है। इसे बर्ख़ास्त कर दीजिए।" इस पर बादशाह ने लिखा कि "यदि उसके अपराध का बिना प्रमाण पाये मैं बर्ख़ास्त कर दूंगा तो मेरे राज्य में बड़ी अव्यवस्था हो जायगी।" स्लीमन ने उत्तर भेजा—"उसका क़सूर साबित करना ज़रूरी नहीं है। उसे जो नौकरी दी गयी है वह कोई जागीर नहीं है। इसलिए उसे निकालने के लिए उसका अपराध पता लगाने की कोई ज़रूरत नहीं है।"[१]

२४ नवम्बर, १८४९ को बादशाह ने वसीहअली को लखनऊ से निकाल दिया और तब नक़ी खां ने उसे फ़ैज़ाबाद भेजा था। बादशाह ने वसीह को चुपचाप २०० रुपया माहवार देने का भी प्रबंध कर दिया। इस बर्ख़ास्तगी से पहली बार स्लीमन तथा वज़ीर नक़ी खां में भी मतभेद हो गया। वसीह को हटाते हुए बादशाह ने स्लीमन को जो पत्र लिखा था उससे प्रकट होता है कि बादशाह कितने बेबस और कितने दुःखी थे। उन्होंने लिखा था :—

१. अवध में डाकाज़नी, पृष्ठ ११६

"रेसिडेन्ट ने बारबार लिखा है कि ज़रूर उसको निकाल दिया जाय। इसलिए अपने मित्र रेसिडेन्ट की हिदायतों को पूरा करने के लिए मैं वसीहअली को हुक्म देता हूं कि इस शहर में न रहें। तब तक जब तक कि वे रेसिडेन्ट को अपने पक्ष में न कर लें तथा उनकी सद्भावनाएं न प्राप्त कर लें। पर बादशाह प्रसन्नतापूर्वक यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि वे वसीहअली के आचरण से पूर्णतः सन्तुष्ट हैं और उनका दृढ़ विश्वास है कि वह बेगुनाह हैं।"

वसीहअली के स्थान पर राय जगन्नाथ उर्फ महाराजा गुलामरज़ा ख़ां नियुक्त हुए। पर, इस घटना ने सभी दरबारियों का दिल दहला दिया। यह निश्चय हो गया कि अब अवध के कर्मचारियों का हाकिम बादशाह नहीं रेसिडेन्ट है। बादशाह की शरण में न जाकर उसकी शरण में जाने में अधिक लाभ है। बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई। ९ दिसम्बर, १८५३ को वसीहअली काकोरी पहुंचे थे और वहीं से मियानें सवारी में छिप कर बादशाह के पास आने लगे। शर्फ़ुद्दौला और इब्राहीम ख़ां ने इसकी इत्तला स्लीमन को दी। अब बादशाह को भी क्रोध आया। उन्होंने उन दोनों को दरबार से निकाल दिया। बादशाह को चिढ़ाने के लिए स्लीमन ने इन दोनों को मंडियाहू की छावनी में शरण दी, और कहा—"बादशाह ने वसीहअली को निकालने का बदला लिया।" नुक्ता बराबर चोट, वार ख़ाली गया[१]। जो हो, स्लीमन् के लखनऊ से रवाना होते ही ३ नवम्बर १८५४ को मिर्ज़ा वसीहअली बादशाह के पास काकोरी से वापस आ गये।

अस्तु, स्लीमन ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का जो महान कार्य किया था उसका फल वे न भोग सके और जितना काम उन्होंने किया था, उसका महत्व उनके मालिक भी न आंक सके अतएव बिना किसी सम्मान के, हतप्रभ और उदास स्लीमन उठी-हुई, रोहू-भरी बीमार लाल आंखें तथा भयंकर मधुमेह[२] की बीमारी लिये हुए, गवर्नर जेनरल से मिलकर कलकत्ता से रवाना हुए और समुद्र में ही उनका मुर्दा फेंक दिया गया। पर भारत से रवाना होने के पहले वे बादशाह के विरुद्ध "ब्लू बुक"—अपराध की पुस्तक तैयार कर गये थे और उनके उत्तराधिकारी के लिए कुछ काम बाक़ी नहीं रह गया था। बादशाह की मान-मर्यादा चौपट हो चुकी थी। उनके कार्यों में इतनी बाधाएं डाली गयी थीं कि वे ऊब

१. सलातीने अवध—अध्याय ४७, ४८ और ५३।

२. आशोबे चश्म और जियाबितुस का मर्ज़ था —सलातीने अवध, अध्याय ८५

कर नाच-रंग में जी बहलाने लगे थे। जेनरल आउट्रम के लिए मार्ग प्रशस्त था।

स्लीमन ने अवध का जो दौरा किया था तथा अपनी डायरी तैयार की थी, उस दौरे के बारे में मेजर बर्ड बहुत साफ़ शब्दों में लिखते हैं:—

"उन्होंने बहाना तो ऐसा किया कि अवध का मुआयना करके रिपोर्ट देने जा रहे हैं पर उनकी रिपोर्ट की रूपरेखा उनके अवध में पैर रखने के पहले ही तैयार हो गयी थी। वे जांच करने का बहाना कर रहे थे पर उन्हें हिदायत थी कि सज़ा दें, मालूम ऐसा हो रहा था कि वे मुक़द्दमा सुन रहे हैं पर उन्हें आदेश था कि दोषी घोषित कर दें।"[१]

पाठकों के मन में यह शंका बनी रह सकती है कि स्लीमन चाहते क्या थे। उनका अवध के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार क्या था? अपनी डायरी में ही वे लिखते हैं:—

"बादशाह में चाहे कितनी भी योग्यता हो और वे कितना ही परिश्रम क्यों न करें, वज़ीर और रेसिडेन्ट चाहें उच्चत्तम योग्यता के व्यक्ति हों, उनके द्वारा मौजूदा शासन-प्रणाली में जो भी कल्याण हो सकता है वह थोड़ा और अस्थायी होगा। मौजूदा प्रणाली में किसी प्रकार भी शासन में स्थायित्व नहीं आ सकता, कुछ व्यक्तियों को सुरक्षा की गारन्टी देकर एक ट्रिब्यूनल—एक पंचायती शासन हो तो उससे कुछ लाभ हो सकता है......पहले तो पूरे देश (अवध) का लगान निश्चित करके उसकी शर्तों का दृढ़ता से पालन होना चाहिए। दूसरे सभी सरकारी कर्मचारियों के ऊपर अभियोगों की जांच करानी चाहिए। जो योग्य तथा ईमानदार हैं, उनकी रक्षा हो तथा जो अयोग्य हैं उनको दंड दिया जाय....सैनिक संगठन में हर दिशा में सुधार हो....और अन्त में, वर्तमान नरेश को उसके पद से हटाकर, शासन का पूरा अधिकार कम्पनी अपने हाथों में स्वयं ले ले।"[२]

शासन-सुधार के नाम पर डाका डालना था। स्लीमन की यात्रा का यह लक्ष्य नहीं था कि शासन-सुधार के लिए वास्तव में परामर्श देते। उन्होंने जो कुछ देखा, सुना, या लिखा, अपनी मोटी तथा मतलबी निगाहों से। यदि वे

१. **अवध में डाकाज़नी, अध्याय ६, पृष्ठ १०९**

२. **स्लीमन की डायरी, भाग १, पृष्ठ ३०८**

वास्तविकता पर आते तो गंगाबख़्शसिंह, ताल्लुकेदार महाई की गिरफ़्तारी के बयान में यह भी लिखते कि उनको गिरफ़्तार करने के लिए कप्तान ऑर ने जो कार्यवाही की थी उसमें २२ बेगुनाह ग्रामवासी, जिनमें दो औरतें भी थीं, मारे गये थे।

जेनरल आउट्रम ने शिकायत की थी कि "कर्नल स्लीमन की १८४९ की रिपोर्ट के बाद से अवध में एक भी सड़क बनकर तैयार नहीं हुई तथा कोई नयी सड़क नहीं निकाली गयी। सिर्फ़ कानपुर से लखनऊ तक की सड़क अभी तक पक्की है और उस पर पुल भी बना है।[1] कम्पनी कानपुर तक अपनी सेना ले जाने के लिए सड़क चाहती भी थी। पर, आउट्रम ने यह नहीं लिखा कि जब बादशाह ने गमना-गमन तथा व्यापार की सुविधा के लिए लखनऊ से फ़ैज़ाबाद, और फ़ैज़ाबाद से अपने राज्य के अन्य भागों में एक घुमावदार सड़क निकालना चाहा, चूंकि उस सड़क का कुछ हिस्सा ब्रिटिश राज्य में से होकर जाता था, कम्पनी सरकार या रेसिडेन्ट ने इसकी अनुमति नहीं दी।

"स्लीमन को ब्रिटिश सरकार का आदेश था कि बिना बादशाह की पूरी रज़ा-मन्दी के उनके राज्य की यात्रा न करें। उन्होंने बादशाह से कहा कि चिनहट तक घूम कर लौट आऊंगा पर वे पूरी यात्रा कर तब चिनहट से लखनऊ वापस आये। वे बादशाह के विरुद्ध मसाला पैदा कर रहे थे और बीस-तीस वर्ष पुराने मामले, गड़े मुर्दे उभाड़ते जाते थे। समूची यात्रा में उनको २५० अर्ज़ियां मिलीं, इतनी तो किसी हाकिम के दौरे में मिल जाती हैं।"[2]

मेजर बर्ड लिखते हैं—अवध सरकार के कम से कम १५० मामलों में स्लीमन

१. मसीहुद्दीन लिखते हैं—लखनऊ-कानपुर सड़क बनाने के लिए एक यूरोपियन तैनात हुआ था। वह थोड़े से ही समय में ही ५०,००० रुपया ग़बन करके लापता हो गया। इस बात को रेसिडेन्ट ने दबवा दिया। इसी प्रकार जब बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर किसानों की सुविधा के लिए गंगा तथा गोमती नदी को मिला देने के लिए नहर बनवाने लगे तो ५० मील नहर खुद जाने के बाद रेसिडेन्ट ने रुकवा दिया। उनका कहना था कि गंगा नदी कम्पनी के इलाक़े में है। यदि उनका पानी अवध में बहकर आयगा तो पूरा इलाक़ा, जहां-जहां गंगा का पानी जायगा कम्पनी का हो जायगा।

२. बादशाह का उत्तर।

ने अपने शासन-काल में हस्तक्षेप किया होगा...२४ नवम्बर १८५४ को सुप्रीम कौंसिल ने जेनरल आउट्रम को स्लीमन के स्थान पर नियुक्त किया। उनको आदेश हुआ कि रिपोर्ट दें कि अवध की परिस्थिति अब भी वैसी ही है जैसा समय-समय पर स्लीमन वर्णन करते रहे हैं — "यानी, क्या वे स्लीमन की रिपोर्ट पर सहमति देने को तैयार हैं ?"....इस पर आउट्रम ने लिखा:—"मुझे कोई निजी अनुभव नहीं है, अतएव इस देश के मामलों के सम्बन्ध में मैं रेसिडेन्सी के रेकार्डों पर ही पूरी तरह से अपनी सूचनाओं तथा जानकारी के लिए निर्भर करता हूं। मैं अपने पूर्ववर्त्ती द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के द्वारा ही जानकारी हासिल कर सकता हूँ।" "इस प्रकार स्लीमन की खोज ही मुख्य आधार बन गयी।"[1]

ज़मींदारों के सम्बन्ध में

स्लीमन ने तत्कालीन ज़मींदारों के सम्बंध में बहुत कुछ रंग रंगाकर लिखा है। पर वास्तविकता से वे कितनी दूर भाग जाते थे, इसका पता अनेक मिसालों से लग जायगा। स्लीमन के हिमायती सलातीने अवध के लेखक ने लिखा है कि ज़मींदार ताल्लुका महाई गंगाबख़्श लगान नहीं देता था। उसने शाही फ़ौज की गाड़ी को भी घेर लिया था। उसकी फ़ौज ने पहले गोली चला दी जिससे अंग्रेज़ी कमांडर मारा गया। ब्रिटिश प्रधान सेनापति सर चार्ल्स नैपियर को यह समाचार मिला तो वे बड़े नाराज़ हुए। और फ़ौज भेजी गयी। नवाब मुनवरुद्दौला के सामने गंगाबख़्श ने आत्मसमर्पण किया। रेसिडेन्ट से मीठा बनने के लिए वसीहअली उसे उनके सामने ले जाना चाहते थे। २५ अगस्त, १८५० को एक छोटी सी फ़ौज की देखरेख में गंगाबख़्श व उनके बेटे को लेकर वसीहअली चले और रात को लखनऊ पहुंचे। उस दिन गुरुवार था। २६ अगस्त, १८५० को ईद के दिन रेसिडेन्ट बादशाह से मिलने आये। बादशाह ने उनसे वसीहअली की तारीफ़ की और स्लीमन के मना करने पर भी २८ अगस्त को वसीह को १७ पार्चा ख़िलअत दी। गंगाबख़्श व उनके बेटे कोतवाली में बन्द थे और अनशन किये हुए थे। मिर्ज़ा वसीह उनको बादशाह के सामने लाने के लिए कुरानशरीफ की क़सम खाकर सुरक्षा का वादा करके लाये थे। उन्होंने पाप किया था इसलिए उनकी तबीयत

१. अवध में डाकाज़नी—पृष्ठ १३४

ख़राब हो गयी। गले के नीचे कुछ उतरता ही नहीं था।[१] १८ सितम्बर, १८५० को बाप बेटे को फांसी हुई।

मुंशी कुर्रमअहमद बादशाह के ख़िलाफ़ बग़ावत फैला रहे थे। बादशाह ने उसे देशनिकाला दिया तो स्लीमन ने उसे अपने यहां शरण दी और १ फ़रवरी, १८५४ को बादशाह को लिखा कि "चूंकि मुंशी कुर्रम खां मेरे पास आया जाया करते थे, इसलिए आप उनको देशनिकाला देने पर तुले हुए हैं। मैं साफ़-साफ़ लिख दूं कि यदि श्रीमान ऐसा करने से बाज न आयेंगे तो मैं आपके वज़ीर और वकील वग़ैरः का अपने यहां आना बन्द कर दूंगा। इसके साथ ही मैं गवर्नर जेनरल तथा उनकी कौंसिल को इत्तला दूंगा कि आपको इस पर ऐतराज़ है कि कोई मुझसे मिलने आये। बेहतर तो यह होगा कि रेसिडेन्सी को ही समाप्त कर दिया जाय और इस देश से ब्रिटिश पल्टन एकदम हटा ली जाय। इस प्रकार बादशाह ख़ुद बाग़ी का रुख़ अपना रहे हैं।"

कम्पनी की सेना (५५वीं बटालियन) का एक सिपाही विधारी गांव से दुश्मनी रखता था। उसने रेसिडेन्ट से रिपोर्ट की कि वह एक साथी के साथ जा रहा था जब विधारी गांव में वहां के ज़मींदार के भाई छत्तरसिंह ने उसे पकड़ लिया; उसके साथी का गला काट दिया। वह ख़ुद एक औरत को घूस देकर छूटा। रेसिडेन्ट ने तुरत दो तोपें देकर कैप्टेन हार्डविक तथा लेफ्टे० वेस्टन को वहां भेजा। आज्ञा थी कि यदि छत्तरसिंह सामने न आये तो समूचा गांव नष्ट कर दो। पर गांव में पूर्ण शान्ति थी। सेना का कोई विरोध ही नहीं था। छत्तरसिंह स्वयं आगे आये। सब बातें झूठी साबित हुईं। यदि हार्डविक जैसा न्यायप्रिय अफ़सर न गया होता तो ग्राम ही नष्ट हो गया होता।

कालाकांकर के राजा, जो इलाक़ा सलोन के भी राजा थे, यानी हनुमन्त-सिंह के विषय में मेजर बर्ड लिखते हैं कि वे लगान नहीं देते थे। आमिल ख़ान अली खां ने सख्ती की तो लखनऊ में रेसिडेन्ट नाराज़ हो गये। रेसिडेन्ट ने अपनी ज़मानत पर उन्हें एक बंगला रहने के लिए दिया और रोज अपनी सवारी के साथ बग़ल में घोड़े पर उनको भी घुमाने ले जाते थे ताकि बादशाह को डर हो जाय। राजा के लड़के बेख़ौफ़ लगान वसूल कर खाते-पकाते जा रहे थे। दरबार को एक कौड़ी नहीं मिलती। इसी हनुमन्तसिंह का स्लीमन की डायरी में हम ज़िक्र कर आये

१. सलातीने अवध।

हैं। बादशाह ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि —"वह कर्ज़ से लदा था। बड़ा दुष्ट था। हमको उस पर हमला करना पड़ा। छावनी मडियाहू में छिप गया। नवाब के आदमियों में से एक की नाक काट ली, एक का हाथ काट लिया —"[1]

रामदत्त महाजन ताल्लुक़ेदार का बड़ा रोमांचकारी ज़िक्र स्लीमन ने किया है। इनके सम्बन्ध में मेजर बर्ड तथा बादशाह दोनों ने लिखा है कि बहराइच के तहसीलदार यानी आमिल से मिलने रामदत्त आये। उनका लगान बाक़ी था अतएव उनको रोका गया। इस पर वे आमिल के कर्मचारियों से लड़ बैठे और मार-पीट में मारे गये। रामदत्त के वकील ने रेसिडेन्ट से शिकायत की। इधर उनका (रामदत्त का) भाई किशनदत्त आमिल के आदमियों से लड़ बैठा। बिस्वास मित्तर नामक एक ब्राह्मण गोली से मर गया। रेसिडेन्ट ने मुहम्मद हुसेन को ही हत्यारा घोषित किया और बादशाह से कहलाया कि उसे बर्खास्त करें। स्लीमन को प्रसन्न करने के लिए बादशाह राज़ी हो गये। पर रेसिडेन्ट की आज्ञा से आमिल पकड़े गये। उन पर रामदत्त तथा मित्तर ब्राह्मण की हत्या का मुक़द्दमा गोरखपुर के अंग्रेज़ जिलाधीश के यहां चला। साबित हो गया कि उस हत्या के समय आमिल वहां थे ही नहीं। वहां से निरपराध छूटे। रामदत्त की हत्या का मुक़द्दमा मुस्तहिदुल-अस्रानी बादशाह के प्रधान न्यायाधीश के यहां चला। वहां से भी निरपराध छूटे। मुस्तहिदुल-अस्र उस ज़माने में बड़े आलिम और क़ाबिल शख्स सय्यद मुहम्मद थे। रेसिडेन्ट ने कहा कि कहीं अन्यत्र मुक़द्दमा हो पर बादशाह ने अस्वीकार कर दिया। खीझ कर स्लीमन ने कलकत्ता पत्र लिखा। पर वहां से भी उनकी बात नहीं मानी गयी।

बादशाह लिखते हैं कि महिपालसिंह नामक एक ज़ालिम ज़मींदार अवध से भागकर इलाहाबाद चला गया। मैजिस्ट्रेट, इलाहाबाद ने उसकी गिरफ़्तारी का आदेश दिया। जब पुलिस उसे पकड़ने गयी तो उसके साथियों ने पुलिस को घायल कर दिया। मैजिस्ट्रेट ने लेफ़्टेनेन्ट गवर्नर को लिखा कि उसका मकान खोदने की इजाज़त दी जाय। यह आज्ञा न देकर केवल उसे अदालत में हाज़िर होने का आदेश दिया गया।

बसवारा का रहने वाला चन्दनलाल खत्री लगान की अदायगी की ज़मानत करने का पेशा करता था। तीस वर्ष से इस व्यापार में वह महाजन बन गया।

१. बादशाह का कम्पनी को उत्तर।

उसका छोटा भाई गंगाप्रसाद मौरावां (आजकल उन्नाव जिला) में रहता था। हटरापुर के काशीप्रसाद से चन्दनलाल का झगड़ा हो गया। चन्दनलाल ने लगान का काम छोड़ दिया। काशीप्रसाद ने उसके गांव पर पटवारी बुलाने के लिए आदमी भेजा। गंगाप्रसाद ५०-६० आदमी लेकर आये और दोनों दलों में झगड़ा हो गया। गंगाप्रसाद ने कानपुर आकर रिपोर्ट की कि उसका ५०-६० हज़ार रुपये का माल आमिल के आदमियों ने लूट लिया और दो साथी मार डाले। स्लीमन ने कप्तान हेज़ के यहां बाक़ायदा मुक़द्दमा कराया। हेज़ ने तहकीक़ात में एक महीना लगाया और फिर रिपोर्ट की कि काशीप्रसाद का लखनऊ आना ज़रूरी नहीं है और वे अपने इलाक़े पर काम पर जा सकते हैं। पर, स्लीमन ने उसे काम पर न जाने दिया। बादशाह पर यह भी इलज़ाम लगाया गया था कि मोतमुद्दौला आग़ा मीर लखनऊ छोड़कर भाग गये थे। पर वे लखनऊ में ही रहना चाहते थे। कम्पनी के कर्मचारियों ने लखनऊ में नहीं रहने दिया। उनकी मृत्यु पर उनके परिवार के लोग लखनऊ में ही आकर रहे। बादशाह लिखते हैं:—"कम्पनी के सभी कर्मचारी हमारे राज्य में अपना परिवार रखना चाहते थे। कम्पनी में लगभग ५०,०००सिपाही अवध के हैं। वे सब अपना परिवार हमारे राज्य में छोड़ गये हैं। इसके विपरीत, रेसिडेन्ट ने हमारे हज़ारों कर्मचारियों को काम से अलग कर दिया है और अपने आदमी तैनात किये हैं।"

ताल्लुक़ेदार शिवदर्शनसिंह ने रेसिडेन्ट से सलोन के आमिल खान अली ख़ां की शिकायत की। रेसिडेन्ट के कहने से बादशाह ने ख़ां को हटाकर साहेबराय को नियुक्त किया। १६ सितम्बर, १८५० को बादशाह ने स्लीमन को लिखा कि १८४९-५० की लगान में १००० रुपया ताल्लुक़ेदार दुर्गराज पर बाक़ी रह गया। उनके लड़के साहेबजी ने चुका दिया है अतः इलाक़ा उसे दिया जा रहा है। स्लीमन के कहने से कुछ महीने बाद दुर्गराज बहाल किये गये। एक वर्ष में उन्होंने फिर इतनी गड़बड़ी पैदा कर दी कि ४१,१२६ रुपया ११ आना लगान बाक़ी रह गया। बादशाह ने स्लीमन को लिखा कि "अगर आप अनुमति दें तो दुर्गराज को हटा दें।" इसका कोई जवाब नहीं आया। भला, ऐसी लाचारी में कैसे राज चल सकता था? जिस दर्शनसिंह की स्लीमन तारीफ़ करते हैं, उसी के बारे में मेजर ट्रूप लिखते हैं कि दर्शनसिंह जहां के आमिल थे, वहां अमानी प्रथा से वसूली होती थी। पर कुप्रबंध से सरकार की आय ५ से ९ लाख रुपया तक कम हो गयी थी।[1]

१. Major Troupe **का पत्र—२७ दिसम्बर, १८५४**

जेनरल आउट्रम ने बादशाह को गद्दी से हटाने के लिए जो सात अभियोग उन पर लगाये थे उनमें अंतिम अभियोग "ज़मींदारों का अत्याचार" था। इस सम्बंध में कर्नल रिचमौंड रेसिडेन्ट के ज़माने में बहराइच के आमिल रघुबीरसिंह द्वारा ५०० देहाती नर-नारियों को दास बनाकर बेच देने का अभियोग है। वाक़या यह है कि जब बादशाह को इस बात का पता चला तो उन्होंने तुरत मौक़े पर जांच करायी तो "बेचे गये लोगों" का एक भी रिश्तेदार या उनके ग्राम का एक भी आदमी, एक भी व्यक्ति के बिकने की बात कहने या गवाही देने नहीं आया। असल में रिचमौंड को रघुबीरसिंह पसन्द नहीं था। रेसिडेन्ट को ख़ुश करने के लिए बादशाह ने उसको काम से हटा दिया। सरकार का लाखों रुपया उसके पास डूब गया। रघुबरसिंह चैन से ब्रिटिश अमलदारी में रहने लगे। उन्हें वहां पूरा आराम था।

ऊपर लिखी बातों से यह स्पष्ट है कि वाजिदअली शाह के शासनकाल में ज़मींदारों व ताल्लुक़ेदारों द्वारा प्रजा पर अत्याचार की अधिकांश बातें झूठी तथा अवध सरकार को बदनाम करने वाली हैं। कुछ बातें सच भी हो सकती हैं पर इतने बड़े राज्य में सभी ज़मींदार नेक और वफ़ादार हों, यह सम्भव नहीं है। ख़ास-कर उस दशा में जब कम्पनी की सरकार उन्हें बादशाह के विरुद्ध बग़ावत करने के लिए प्रोत्साहित कर रही थी। बराबर अवध का शासन कमज़ोर किया जा रहा था। बर्ड लिखते हैं:—

"क्या यह अवध की जनता के हित में था कि हम नियमित रूप से अवध की सरकार को विघटित तथा कमज़ोर करते जा रहे थे तथा अवध के नरेशों के उन हर प्रयत्नों को, जो वे प्रजा के कल्याण के लिए करते थे, न केवल विफल करते रहते थे बल्कि उनको ऐसा करने से मना कर रहे थे।"[१]

सेना, पुलिस तथा न्याय-शासन

इतना सब होने पर भी कम्पनी का शासन अवध के शासन की तुलना में कहीं अधिक ख़राब था। श्री लिविन लिखते हैं:—[२]"बंगाल के डिप्टी गवर्नर

१. अवध में डाकाज़नी—पृष्ठ २०१।

२. Pamphlet on Oude by Malcolm Lewin, Lete Second Judge, Sudder Court, Madras.

मि०हैलिडे की रिपोर्ट से पता चलता है कि हमारे सूबे में न्याय-शासन की जो स्थिति है, उससे अवध की खराब नहीं है....पार्लमेन्ट की आज्ञा से मद्रास के ब्रिटिश सूबे में कर्मचारियों के अत्याचारों की जांच के लिए जो कमिश्नर नियुक्त हुए थे उनकी रिपोर्टों से क्या चीज़ें पता चलती हैं....मि० हैलिडे लिखते हैं कि बंगाल में हमारा न्याय शासन का एक भ्रमजाल है और शक्ति पर आधारित है.... देहाती पुलिसमैन भूखों मर रहा है....मद्रास के कमिश्नर अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि देहातों में पुलिस तथा डाकुओं में एका के साथ काम हो रहा है...."

ब्रिटिश पार्लमेन्ट की दोनों सभाओं के सदस्यों के पास भारत में ब्रिटिश पादरियों ने एक आवेदनपत्र भेजकर कम्पनी के शासन में जनता पर अत्याचार की जांच कराने की मांग की थी। कम्पनी सरकार पर यह बड़ा भारी अभियोग था कि "देहातों में किसानों को घोर से घोर अन्याय पर भी कहीं से न्याय पाने की आशा नहीं रह गयी है।"

हाउस ऑव लार्ड्स (सरदार सभा) में मार्क्विस क्लैनरिकार्डे ने एक व्याख्यान में कहा था कि "भारत को हमने एक नया विधान देने का वादा किया था। अभी तक उसका पता नहीं है और इस बीच में हमारा न्याय शासन ऐसी अनिश्चितता तथा गड़बड़ में पड़ा हुआ है कि लज्जाजनक स्थिति है......ईस्ट इंडिया कम्पनी की फ़ौजदारी अदालतें जनता के लिए भय तथा आतंक की वस्तु बन गयी हैं। वे हमारे लिए प्रतिशोध तथा उत्पीड़न के साधन हैं......"[१]

कम्पनी का साधारण कर्मचारी भी शेर हो गया था। कोई न्याय-विधान न होने के कारण लोगों के सामने न्याय का सहारा ही नहीं था। स्लीमन ने स्वयं लिखा है कि "कम्पनी के सिपाही झूठे दावे करके ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेते थे और किसान ब्रिटिश सिपासियों से बेहद भयभीत थे।"[२] ये सिपाही "कम्पनी की पल्टन

१. Marquiss of Clanricarde in House of Lords, Feb., 19, 1857: लन्दन के "प्रेस" समाचारपत्र ने २० जून, १८५६ को सम्वाद छापा था कि "भारत में कम्पनी के कर्मचारी बड़ी मनमानी कर रहे हैं। अराजकता फैली हुई है। जनता बहुत असन्तुष्ट है।"

२. स्लीमन की डायरी भाग १, पृष्ठ २९२

में भर्ती होते समय अपना झूठा नाम व पता लिखाते थे ताकि वे जब चाह भाग जायँ। उनका कुछ बिगाड़ा नहीं जा सकता था।"[१]

इसके विपरीत, अवध में न्याय-शासन बहुत ही अच्छा था। प्रधान विचारपति को मुस्तहिदुल-अस्र कहते थे। इस पद पर एक बहुत ही विद्वान तथा निष्पक्ष व्यक्ति मौलवी सय्यद मुहम्मद थे। मुसलिम "शरीयत" के अनुसार न्याय होता था। हर जिले में एक न्यायाधीश यानी "मुस्तहिद" नियुक्त था। न्याय का एक अलग शासकीय विभाग था जिसे मुहक्मा मराफ़ा या मुराफ़िया कहते थे। हर क़स्बे में एक मुफ़्ती या मुंसिफ़ रहता था। न्याय-शासन की कठोरता के ही कारण कम्पनी के शासन के जैसी दुर्घटनाएं अवध में नहीं होती थीं।[२]

कम्पनी के शासन की दशा का वर्णन करते हुए बादशाह स्वयं लिखते हैं कि सन् १८५६ में दो बंगालिन स्त्रियां गवर्नर की कोठी के तरफ से जा रही थीं। वहीं पर गोरे सिपाहियों ने उनको पकड़ कर उनके साथ बलात्कार किया। कलकत्ता में ही कुछ औरतें गंगास्नान को जा रही थीं। उन पर गोरे सिपाहियों ने बुरी नियत से हमला किया। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले अखबार "मुहर्रिर" ने हिन्दू स्त्रियों को सलाह प्रकाशित की थी कि वे गंगास्नान बन्द कर दें। ३१ जुलाई, १८४६ को कलकत्ता में बड़ी बाज़ार में बरनचन्द की दूकान पर सरेशाम डाका पड़ा, एक आदमी मारा गया। कई लोग घायल हुए। १६ जुलाई १८५२ को धर्मतल्ला स्ट्रीट में, गवर्नर की कोठी के नीचे डाका पड़ा। १९ अगस्त, १८५३ को फिर वहीं डाका पड़ा। यह सब ब्रिटिश सरकार की नाक के नीचे हो रहा था। दिसम्बर, १८५० में गाज़ीपुर शहर में रंगलाल कारिन्दा मार डाला गया। इलाहाबाद में रतनसिंह डाकू ने बड़ा उत्पात मचा रखा था पर वह पकड़ा न जा सका। १८५३ में इलाहाबाद में गहरा हिन्दू-मुसलिम दंगा हो गया। १०० आदमी से अधिक मारे गये। "दशहरा तथा मुहर्रम पर ब्रिटिश अमलदारी में हर जिले में एक न एक साम्प्रदायिक उपद्रव होता था। कोई त्यौहार ख़ाली नहीं जाता था।

१. वही — पृष्ठ २९३

२. कर्ज के मुक़द्दमों के लिए एक अलग विभाग "मुहक्मा जदीद" था। न्याय-विभाग का ही एक महत्वपूर्ण अंग था मुहक्मा तनकीह मुस्तग़ीसाने मुलाजिमाने सरकार कम्पनी सकनाये अवध।

पर अवध में ऐसा कभी नहीं हुआ। मुरादाबाद में १८५५ में मुहर्रम के अवसर पर बलवा हो गया। एक डिप्टी कलक्टर तथा कई सिपाही ज़ख्मी हुए।"[1] ब्रिटिश ज़िला फ़तेहपुर के बहादुरपुर क़स्बे में दरियावसिंह डाकू ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। वहां मुज़फ़्फ़रहुसेन तहसीलदार थे। वे उसे पकड़ने की कोशिश कर रहे थे, वे ही काम से हटा दिये गये। दरियावसिंह ने ज़िलेदार बख्शीश हुसेन को मार डाला। कम्पनी की सरकार ने दरियावसिंह को २००० रुपया माहवार देना स्वीकार कर अपना लिया पर वह निजी तौर पर डाका डालता ही रहा।[2] अवध की हुकूमत में अमन-अमान की यह हालत थी कि बादशाह के १० वर्ष के शासनकाल में बाहर से ८००० आदमी आकर लखनऊ बस गये थे। पर, कम्पनी की हुकूमत होते ही एक साल के भीतर ४००० व्यक्ति भूखों मरने के कारण लखनऊ छोड़कर भाग गये। कम्पनी के कर्मचारियों का दिमाग़ इतना बढ़ गया था कि बादशाही हुकूमत के बाद कम्पनी की ओर से लखनऊ के कमिश्नर एबिंसन एक दिन शिकार खेलने के लिए अपना कुत्ता लिये जा रहे थे। वह कुत्ता राहचलतू एक ब्राह्मण पर झपट पड़ा। ब्राह्मण ने उसे लात मार दी। इसी अपराध पर एबिंसन ने उस ब्राह्मण को इतना मारा कि वह बेहोश हो गया और दूसरे दिन मर गया। ब्राह्मण ने मरकर सबको नसीहत दी कि "साहब का ही नहीं, उसके कुत्ते का भी आदर करना चाहिए।"

इसके विपरीत स्लीमन तथा आउट्रम ने "अवध में अपराध सूची" तैयार करायी थी। उनकी रिपोर्ट में पृष्ठ १०८ से १४३ तक अवध के अपराधों की ब्यौरेवार तालिका है और पहली इन्दराज़ है—"१ जनवरी, १८४८—देश में दो क़त्ल हुए।" अन्तिम इन्दराज़ है—"कुछ चोर मुघरेता के क़स्बे में घुसे और एक चौकीदार को घायल किया।" बादशाह ने जिन अपराधों की तालिका दी है, वैसा एक भी अपराध समूची फ़ेहरिस्त में नहीं है।

बादशाह अमजदअली ने सन् १८४५ में अपने देश की सरहद पर कम्पनी की सरकार की तरफ़ से आने वाले चोर-डाकुओं से रक्षा के लिए सरहद्दी पुलिस[3] तैनात किया था। इसमें ५०० जवान थे। कप्तान और इसके प्रधान थे। वे स्वयं लिखते हैं—"अवध की सड़कें जनवरी, १८४९ में मेरे पद-ग्रहण करने के समय से

१. बादशाह का उत्तर। २. वही

३. मुहक्मा फ्रांटियर पुलिस

अब बहुत अधिक सुरक्षित हैं।"[1] सरहद्दी पुलिस का संगठन पहले ५०० सिपाही तथा १०० घुड़सवार का था। वाजिदअली शाह ने इसकी संख्या ७५० सिपाही तथा १५० घुड़सवार कर दी थी। स्वयं स्लीमन ने १४ मार्च १८४९ को लिखा था कि "मेरा विश्वास है कि अवध की सरहद्द पर इतने कम अपराध बिरले ही होते रहे हैं जितना कि आजकल"। स्लीमन के ही कथनानुसार इस पुलिस का सामान ढोने के लिए बादशाह ने नानपारा नस्ल के बड़े अच्छे बैल दिये थे जिनकी क़ीमत ४० रुपये से ७५ रुपया जोड़ी थी। इन बैलों को डेढ़ सेर ग़ल्ला रोज़ मिलता था। स्लीमन ने एक स्थान पर शिकायत की है कि बादशाह की ओर से जानवरों के लिए भूसे का प्रबंध नहीं है अतएव सरकारी बैलगाड़ी के लिए किसानों से भूसा लूट लिया जाता है। पर वे ही लिखते हैं कि सन् १८३५ से शाही फरमान जारी हो गया है कि कोई भी गाड़ीवान किसान का भूसा बिना दाम दिये न ले, अन्यथा उसे दंड दिया जायगा। अस्तु, अनेक अंग्रेज़ स्वयं स्वीकार करते हैं कि वाजिदअली शाह के शासनकाल में पुलिस का प्रबंध काफ़ी अच्छा हो गया था और उसकी रसद के लिए किसानों पर कोई ज़ोर-ज़ुल्म नहीं होता था।

अवध में अपराधों के सम्बन्ध में तत्कालीन अंग्रेज़ अधिकारियों में भिन्न धारणाएं थीं। मेजरट्रूप के अनुसार सुलतानपुर ज़िले में अपराध बढ़ गया था। कप्तान बनबरी के कथनानुसार "अत्याचार और अपराध निश्चयतः रोक दिया गया है।" अवध की सरहद के ज़िले के मि० एडमौंस्टन, मैजिस्ट्रेट फतेहपुर लिखते हैं कि "मैं नहीं कह सकता कि अपराध बढ़ा है या घटा है।" जौनपुर के मैजिस्ट्रेट मि० ला बॉस लिखते हैं कि "ज़रूर अपराधों में कमी हुई है।" जिस सुलतानपुर के नाज़िम आग़ा अली ख़ां को अंग्रेज़ हाकिमों ने लुच्चा कहा है, उसी की "सिफारिश" में मि० स्लीमन, कमिश्नर टक्कर तथा कमिश्नर लाउथर के पत्र मौजूद हैं।

अवध की ५० लाख की आबादी में सन् १८४८ से १८५४ तक औसतन प्रतिवर्ष व्यक्ति के विरुद्ध यानी हत्या आदि के १६०० से कम तथा सम्पत्ति के विरुद्ध यानी डाका आदि के २०० से कम अपराध हुए। इसके विपरीत ईस्ट इंडिया कम्पनी के इलाहाबाद ज़िले में सन् १८५५ में १४५२ अपराध और उसी साल बनारस ज़िले में ८००४ अपराध हुए। इलाहाबाद और बनारस क्रमशः अवध का पांचवां तथा छठा हिस्सा है। बंगाल में सन् १८५० में ९६,३५२ व्यक्तियों

१. १८५२ का पत्र।

पर फ़ौज़दारी का जुर्म लगा जिनमें ५५,२५२ को सज़ा मिली। १८५१ में ९४,९५३; १८५२ में ९२,११५ तथा १८५३ में ९२,६२९ यानी बंगाल की ४ करोड़ की आबादी में प्रतिवर्ष ९०,००० अपराधों का औसत था यानी अवध में ५० लाख पर लगभग १८०० का तथा बंगाल में ४ करोड़ पर ९०,००० यानी बंगाल की अठगुनी अधिक आबादी में ५० गुना अधिक अपराध थे।[१]

बादशाह लिखते हैं कि १८५० में बंगाल में ९६,३५२ व्यक्ति फ़ौज़दारी में पकड़े गये जिनमें ५५,२५२ को सजा मिली, ३४,२९३ छूटे, बाक़ी कुछ जेल में सज़ा के पहले मर गये, कुछ भाग गये। उसी साल हज़ारीबाग के ज़िले के इलाक़ा ग्वालवाडा में १४,६७९ व्यक्ति फ़ौज़दारी में पकड़े गये। यह एक इलाक़े का हाल था। अवध बंगाल सूबे का चौथाई हिस्सा था। इसके विपरीत जेनरल आउट्रम के ही अनुसार, १८५५ में अवध में १४०० फ़ौज़दारियां हुई उनमें २१२ व्यक्ति घायल हुए थे तथा १४०० को सज़ा मिली थी। उसी वर्ष यानी १८५५ में इलाहाबाद में १,४५२ वारदातें हुईं और २८७१ व्यक्ति दोषी पाये गये। बनारस में ८००४ मुक़द्दमें चले। इनमें से "लम्बरी" मुक़द्दमें १०१२, दफा ४ में २३७ तथा मुतफ़र्रिक़ात ६४५५ थे। इलाहाबाद में १४५२ मुक़द्दमों में ११०५ लम्बरी तथा ३१५ ऐक्ट ४ में थे। और बनारस में इतनी वारदातें उस हालत में हुईं जब कि १८५४ में वहां के कमिश्नर ने १०६ बार, १८५५ में १०९ बार तथा २६ अक्टूबर, १८५६ तक ७९ बार दौरा किया था।[२] पंजाब की ब्रिटिश अमलदारी में ६२१ मामले हुए—१८५० में।

उन दिनों अवध में लोग परेशान तथा हैरान नहीं थे, यह भी नहीं कहा जा सकता। उसकी माली हालत के बारे में बादशाह स्वयं लिखते हैं कि "प्रजा का रोज़-गार चौपट हो गया था। सिल्क, किमखाब, गुलबदन, मशरू का काम करने वाले, ज़री, बाफ़ून और गोटा का काम करने वाले इसलिए तबाह हो गये कि बनारस को अवध से अलाहदा कर देने से दोनों का आपस में तीन हिस्सा व्यापार समाप्त हो गया। कलकत्ता से बनारस तक रोज़गार से ही कम्पनी सरकार की डेढ़ करोड़ रुपये साल की आमदनी थी। रोज़गार चौपट हो गया पर ग़ल्ले की पैदावार बढ़ गयी है।" इसके विपरीत कम्पनी की बंगाल सरकार के बारे में १८ अक्टूबर, १८५६

१. अवध में डाकाजनी।

२. बादशाह का उत्तर।

को कलकत्ता के "गुलशन नौबहार" अखबार ने लिखा था—"कलकत्ता में गल्ला बड़ा महँगा हो गया है। कर-भार बहुत अधिक है। लगान की वसूली बड़ी सख़्ती से होती है।" अवध में कर-भार बहुत कम था—लगान, आबकारी तथा चुंगी के क़िस्म का व्यापार पर कुछ कर, इसके अलावा अहलेहिरफ़ा यानी बट्टा छापने का पेशा करने वालों से लैसेंस फ़ीस ली जाती थी। हुंडी सकारने का काम करने वाले महाजन साहूकारों से कर लिया जाता था। दिल्ली बादशाह के तथा कम्पनी के सिक्के लखनऊ के सिक्कों में बट्टे से बदले जाते थे।

बादशाह की पुलिस[1] का शासन बहुत संगठित पर ख़र्च में सस्ता था। पुलिस-शासन किस प्रकार का था इसका अनुमान इससे लगता है कि हटरा के इलाके के थानों पर कुल ७४ व्यक्ति थे जिन पर २५० रुपया मासिक खर्च था।[2] थाना हटरा खास पर, यानी आमिल के मुख्य कार्यालय पर १५ व्यक्ति थे जिन पर कुल ५९ रुपया माहवार ख़र्च था जिसमें हिदायतअली थानेदार को १२ रुपया मासिक मिलता था। रनवीरपुर और असवा के थानों पर भी ५९ रुपया मासिक व्यय, ऊपर लिखे चारों मदों में, ६ रुपया माहवार फुटकर खर्च तथा तहसीलदार ख़ज़ान्ची पर १० रुपया माहवार ख़र्च था। खैराबाद इलाक़े में १८० व्यक्ति थे जिन पर ८१० रुपया माहवार। थाना खैराबाद पर ५९ रुपया, थाना खीरी पर ५९ रुपया, दोनों में २५ व्यक्ति थे। थाना सीतापुर में २० व्यक्ति तथा ७८ रुपया मासिक व्यय था। इलाक़ा बहराइच के थानों में ८८ व्यक्ति, तथा ४२५ रुपया, इलाक़ा दहलामऊ रायबरेली पर ८९ व्यक्ति – १०४ रुपया माहवार ख़र्च इलाका बाड़ी, कमकी,

१. मुहक्मा सद् थानेदार।

२. ये ७४ व्यक्ति इस प्रकार बंटे थे :—

अधिकारी	मासिक वेतन	कन्हैयालाल, परवानानवीस	७ रुपया
२८ हमरा (सिपाही)	१७५ रुपया	अधिकारी	मासिक वेतन
८ अमले में—	९७ रुपया	ग़ुलाम गौस, जमादार,	४ रुपया
मुहम्मद विलायतहुसेन		अल्लाबख्श चपरासी	३ रुपया
मुहतमिम (प्रबंधक)	५० रुपया	बहादुरसिंह चपरासी	३ रुपया
अमीरअली, नायब (मुहतमिम)	२० रु०	शिवदीन, तहॅनेवाज, पेशकार,	३ रु०
ईश्वरीप्रसाद, इजहारनवीस	७ रु०	बर्कन्दारान हमरा	२०-६०० रु०

सलोन वग़ैरः पर १४० व्यक्ति, ५५७ रुपया माहवार ख़र्च; थाना बिसवा पर ५४ रुपया, फ़तेहपुर पर ५५ रुपया, चौकी पीरनगर व महराजनगर पर क्रमशः २३ व २५ रुपया, इलाक़ा रसूलाबाद में ६३ व्यक्ति-२८४ रुपया, इलाक़ा नवाबगंज में १०५ व्यक्ति, ४१५ रुपया ८ आना; इलाक़ा रामनगर धमेड़ी में १२ आदमी, १२१ रुपया साढ़े छः आना; इलाक़ा शाहाबाद में १७ आदमी पर पचहत्तर रुपया चौदह आना मासिक ही ख़र्च था।

इतना कम वेतन पाने वाले पुलिस कर्मचारी जनता को, किसान को परेशान व तबाह नहीं करते थे। कम्पनी की पुलिस के बारे में जिस प्रकार की शिकायतें हम ऊपर लिख आये हैं, वैसी एक भी मिसाल या आक्षेप स्लीमन, आउट्रम किसी ने नहीं दी है। कम्पनी तथा अवध की सरकार में वेतन क्रम में कितना अन्तर था इसका अनुमान इसीसे लग सकता है कि कम्पनी के मुफ़्तियों को १२४० रुपया मासिक वेतन मिलता था। बादशाह के परतापगढ़ व जगदीशपुर के मुफ़्ती मीर हुसेन, मऊ टांडा के मुफ़्ती मीर अनवर अली, बैसवाड़ा के मीर मुजफ़्फ़र अली, गोंडा बहराइच के मिर्ज़ा मुहम्मद साहब तथा खैराबाद के मीर मुहम्मद मुफ़्ती को १५० रुपया मासिक मिलता था। वाड़ी-बिसवा और नसीराबाद के मीर अली अकबर और मीर दिलदार हुसेन को १०० रुपया मासिक, रसूलाबाद के मीर ज़ामिन अली को ७० रुपया, मुहम्मदीपुर के अलीहसन, दरियाबाद के अली नक़ी, शाहाबाद के मुहम्मद रज़ा मुफ़्ती को ६० रुपया मासिक तथा सन्डीला के मुफ़्ती मीर अहमद हुसेन को ४० रुपया मासिक वेतन मिलता था।

कम्पनी शासन में खर्च

कम्पनी का शासन बहुत अधिक ख़र्चीला था। पड़ोसी सूबा उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, जिसकी राजधानी आगरा थी, ७२,००० वर्ग मील में ३१ ज़िले, ३० लाख आबादी तथा ५ कमिश्नरी का सूबा था। कमिश्नर लगान, शासन तथा पुलिस शासन का अपने डिवीज़न में प्रधान होता था। एक डिविज़न में ५-६ ज़िले थे। ६ कमिश्नरों का वेतन फी कमिश्नर ३८,००० रुपया वार्षिक के हिसाब से २,२८,००० रुपया साल, सिविल और सेशन्स जज का ३०,००० रुपया वार्षिक से १९ जजों का ५,७०,००० रुपया, एक अतिरिक्त जज को २४००० रुपया, ३० जिलाधीश यानी डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को ८,१०,००० रुपया, २२ ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट को २,६४,०००; १० ज्वाइंट मैजिस्ट्रैट (अतिरिक्त) को ८४ ००० रुपया, ४० जूनियर असिस्टेन्ट को १,९२,०००; २ डिप्टी कलक्टरों को ६००

रुपये माहवार के हिसाब से १४,४०० रुपया; २० डिप्टी कलेक्टरों को ४५० रुपया माहवार से १,०८,००० रुपया; ८ डिप्टी कलक्टरों को ३६० रुपया माहवार से ३३,६०० रुपया; १५ डिप्टी कलक्टर को २५० रुपया माहवार से ४५,००० रुपया; ६ मुख्य सदर अमीन को ६७,२०० रुपया; १४ सदर अमीन जज को ४२,००० रुपया, २४ मुंसिफों को ४३,२०० रुपया, फिर ७४ मुंसिफों को ८८,८०० रुपया, इस प्रकार पुलिस सेना, सिपाही चपरासी, तहसीलदार, क़ानूनगो, पटवारी आदि को छोड़कर, केवल ऊपरी हाकिमों के वेतन पर २६,५७,४०० रुपया सालाना खर्च होता था।

इस सम्बन्ध में यह भी कहा नहीं जा सकता कि शासन अच्छा तथा जनता के लिए सुलभ या लाभदायक था। कम्पनी सरकार ने भारत भर में अपने कर्मचारियों के वेतन तथा सरकारी ढांचे को दखकर ठीक करने के लिए श्री एच० रिकेट्स को विशेष अफ़सर नियुक्त किया था। उनके पास आगरा सूबे की सदर अदालत के जज श्री सी० रैंकेस ने जो रिपोर्ट भेजी थी उसमें साफ़ लिखा था कि "आगरा में १७९३ का बंगाल का क़ानून लागू किया गया है। बंगाल का क़ानून ब्रिटिश क़ानून है। आगरा की १८५६ की तथा बंगाल की १७९३ की दशा में बड़ा अन्तर है। हमारी शासन प्रणाली में बड़ा दोष है। कलक्टर और सिविल जज में भी पटरी नहीं बैठती। जनता बड़ी परेशान है।"[1]

अयोध्या में दंगा

प्रधान विचारपति, मुस्तहिदुल-अस्र सुलझे हुए व्यक्ति थे इसका अनुमान एक खेदजनक घटना से होता है। कम्पनी के शासन में हर साल हिन्दू मुसलिम दंगे होते थे पर वाजिदअली शाह के शासन में केवल अयोध्या में हनुमानगढ़ी पर जुलाई, १८५५ में एक दंगा हुआ। उसे जेनरल आउट्रम ने बहुत खींच तान कर दिखाया है।[2] सलातीने अवध के लेखक मिर्ज़ा जायर ने अपनी पुस्तक के ६० तथा ६१ वें अध्याय में बहुत खींच तान कर लिखा है। इसका विशेष कारण यह था कि उनके भाई भी पल्टन में थे और दंगाइयों के हिमायती थे। मिर्ज़ा जायर के कथनानुसार हनुमानगढ़ी पर एक मस्जिद थी। वहां एक चबूतरा था जिस पर ताजिया रखा जाता था। उसी चबूतरे पर एक हिन्दू ने अपनी झोपड़ी बना ली और फिर

१. Oude Blue Book, पृष्ठ ३०० २. ४ अक्टूबर, १८५६ का पत्र

उसमें मूर्त्ति रख ली और मस्जिद गिरा दी थी जिसे सरकारी फ़ौजों ने फिर से क़ायम करवा दिया। पर जब यह इलाक़ा राजा दर्शनसिंह को मिला तो उन्होंने मस्जिद गिराकर मंदिर में मिला लिया। इसी कथित स्थान को फिर से प्राप्त करने के लिए ग़ुलामहुसेन शाह कुछ साथियों को लेकर फ़ैज़ाबाद पहुंचे पर नायब कोतवाल और कप्तान अलेक्जेन्डर आर० पैट्रिक ने उनको शहर से बाहर निकलवा दिया।

बादशाह को जब यह वाक़्या मालूम हुआ तो आग़ा अली ख़ां नादिम और मिर्ज़ा मुनीस बेग कोतवाल को तहक़ीक़ात के लिए फ़ैज़ाबाद भेजा। लखनऊ से जॉन हर्सी भी तहक़ीक़ात में गये। हर्सी की तहक़ीक़ात क्या थी, हिन्दू-मुसलमानों को लड़ाने की शरारत थी। मिर्ज़ा ज़ायर ने घटना का अतिरंजित रूप दिया है पर वे लिख ही गये हैं कि हर्सी ने ही कथित मस्जिद में दरवाज़ा लगाने का हुक्म दिया था। बैरागियों तथा मुसलमानों में दंगा हो गया था। इस दंगे के बाद वहां के कुछ मुसलमानों ने मुस्तहिदुल-अस्र को स्मृति पत्र भेजकर पूछा कि वे बदले में लड़ें या ख़ून करें अथवा नहीं। ऐसे अनेक सवाल थे। उनको साफ़ जवाब मिला कि हाकिमों का फ़र्ज़ है कि फ़साद को रोकें और किसी को भी झगड़ा करने का अधिकार नहीं है। निदान, मुसलिम पक्ष ने बादशाह को अर्ज़ी भेजी कि मस्जिद क़ायम की जाय। उनकी अर्ज़ी पर दो हिन्दुओं के भी हस्ताक्षर थे—छेदी वल्द नन्दराम, क़ौम सेवती और धनीसिंह, चपरासी, अदालत फ़ैज़ाबाद।

बादशाह के पास उन कर्मचारियों की रिपोर्ट आ गयी कि मस्जिद साबित नहीं होती। बादशाह ने महन्त किशनदास, बलरामदास और देबीराम बैरागी तथा उस इलाक़े के ताल्लुक़ेदार राजा मानसिंह को बुला भेजा। आउट्रम ने कहा कि महन्त लोग बिना ज़मानत नहीं आयेंगे। बादशाह ने बिगड़ कर उत्तर दिया—"क्यों न आयगे। क्या हमारी रियाया नहीं हैं।" सब लोग आये। बादशाह ने उन्हें स-सम्मान वापस किया। इस निर्णय पर मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं—"हाकिम हिन्दुओं से मिले थे।" पर, रेसिडेन्ट और गवर्नर जेनरल सबने बादशाह के फैसले की तारीफ़ लिखी है।

इधर महमूदाबाद के नवाब अली खां के कारिन्दे, अमेठी निवासी मौलवी सय्यद अमीरअली, बन्दगी मियां के पोते संडीला के लोगों को भड़का कर अयोध्या पर जेहाद करने चले। कुछ दिनों उन्हें तथा उनके ७० साथियों को नवाब की ओर से १०० मन गल्ला और कुछ खर्च रोज़ मिलता रहा। मौलवी दरियाबाद के ईदगाह में वे ठहरे। बादशाह ने कप्तान बार्लो को ५ तोपें देकर उनको रोकने

को भेजा। रसद आना बन्द हुआ। संडीला के लोग भाग गये। मौलवी इतने डरे हुए थे कि उनके नमाज़ पढ़ने के वक़्त तीन आदमी नंगी तलवारें लिए पहरा देते थे। उनको लखनऊ में आलिमों ने, जिनमें मौलवी मुहम्मद हुसेन अहमद, ग़ुलाम जिलानी (वकील अंग्रेज़ी अदालत), मुहम्मद युसुफ़ वग़ैरह, मौलवियों ने फ़तवा भेजा कि जेहाद हराम है। जो व्यक्ति हाकिमों का हुक्म न माने वह बाग़ी है और अमीरअली का क़त्ल होना मुनासिब होगा। पर, अमीरअली न माने और ७ नवम्बर १८५५ को मुहम्मदपुर की ओर चल पड़े। ८ कोस दूर हयातगंज पहुंचे और यहीं वे तथा उनके ३०० साथी बार्लो की पल्टन से भिड़ गये। उनके साथी जरा देर में भाग गये। १७-१८ आदमियों सहित मौलवी काम आये।[१] मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं कि ११३ आदमी मारे गये। जो हो, पर इस घटना ने बादशाह की दृढ़ता तथा हठधर्मियों से साहस के साथ निपटने की क्षमता साबित कर दी। उनकी न्यायप्रियता का अकाट्य प्रमाण बन गयी।

सेना

लखनऊ शहर में ५२ थाने थे जिनमें २००० कांस्टेबुल या सिपाही थे। कोतवाली में ही अदालत होती थी। लखनऊ ख़ास में बादशाह के पास छः पल्टनें थीं, जिनके नाम थे बांकी, तिर्छी, घनघोर, अख़्तरी, नादरी आदि। बादशाह रोज़ ख़ुद इनकी क़वायद फ़ारसी ज़बान में कराते थे। बादशाह के कुल कर्मचारियों की संख्या ८७,००० थी जिनमें से सेना के ५२ बटालियन, तथा बादशाह के निजी अंगरक्षक तुर्की घुड़सवारों को छोड़ कर १४,००० नौकर, २००० कांस्टेबुल, ७०० घोड़े, बैल, गाय, भैंस तथा अन्य जानवर, २०० हाथी, लगभग १ लाख बढ़िया कबूतर तथा १०७ शेर थे। और यह तादाद तब थी जब बादशाह वाजिदअली शाह ने ख़र्च बहुत घटा दिया था। उनके पिता के शासनकाल में ७००० घोड़े तथा टट्टू थे और शाह की सवारी गाड़ियों पर ही ३५०० रुपये रोज़ का ख़र्च होता था। उनके मुख्य कोचवान नवाब रमज़ान अली थे।[२] वाजिदअली

१. तारीख़े अवध।

२. रमज़ानअली बादशाह के पास कुछ दिनों कलकत्ता रहकर नवाब रामपुर के यहां नौकर हो गये थे। वहीं मर गये। बादशाह को गद्दी से उतार कर अंग्रेज़ों ने उनके पास १०० घोड़े तथा २१ हाथी छोड़ दिये।

शाह के समय में इस पद पर ज़ायरुद्दौला थे तथा रोज़ १२०० रुपये का खर्च था। मिर्जा ज़ायर लिखते हैं—(अध्याय ६६) की बादशाह के गद्दी से हटने के समय कर्मचारियों तथा शाही परिवार का कुल मिलाकर ८८ लाख रुपया वेतन बाक़ी था।

पर, बादशाह की सेना पर कोई ख़र्च या वेतन बाक़ी था इसका पता नहीं चलता है। मुहम्मदअली शाह के ज़माने में शाही फ़ौज में ३२,००० प्यादे तथा ३७०० सवार थे। उस वक्त सरकार की आमदनी डेढ़ करोड़ रुपया वार्षिक थी। २१ तोपों की सलामी होती थी। अमजदअली शाह के वक़्त में २८,००० प्यादे तथा ३००० सवार थे। आमदनी १ करोड़ १० लाख थी।[1] मिर्जा ज़ायर लिखते हैं कि बादशाह की १४ तेलिंगा पल्टनें थीं। हर पल्टन में २२ बैलगाड़ी रहती थी। पहले ६०–७० बैलगाड़ियां रहती थीं। बादशाह ने घटा दी थी। शाही पल्टन में तीन यूरोपियन अफ़सर थे, कप्तान बार्लो, वनबरी और मैगनेसी। स्लीमन के अनुसार, राठौर राजा भवानीसिंह, ताल्लुकेदार सिहोर की रियासत छीनने वाले तथा गुलाम हज़रत को गिरफ़्तार करने वाले कप्तान हियरसे भी बादशाह के नौकर थे। कप्तान बार्लो की पल्टन के बारे में स्लीमन स्वयं लिखते हैं कि "उनकी सेना के सिपाही हमारी किसी भी पैदल सेना के सिपाही से अच्छे हैं यद्यपि बादशाह की फ़ौज में हर सिपाही को ५ रुपया मासिक वेतन मिलता है जबकि हम सात रुपया मासिक देते हैं।"[2] नवाब की सेना की ऐसी प्रशंसा उस व्यक्ति ने की है जो यहां तक लिख गये हैं कि पिछले तीस साल में शाही फ़ौज को वरदी नहीं मिली है। वे लिखते हैं कि कम्पनी की ६–७ रेजिमेन्ट अवध में है। दो रेजिमेन्ट सुल्तान-पुर और सीतापुर में थीं। लखनऊ में एक अतिरिक्त पैदल सेना है। कम्पनी सेना पर केवल ६–७ लाख रुपया वार्षिक खर्च होता था.... "अवध से हमको १८०१ की संधि के अनुसार बादशाह को भीतरी आक्रमणों से बचाने के लिए अवध का जो भाग मिला था उससे हमको २ करोड़ १२ लाख रुपये वार्षिक से कम नहीं मिलते...हमको अपनी सेना बढ़ानी चाहिए..." यह बात स्लीमन लिखते हैं। वे नवाब की—कप्तान मैगनेसी की मातहती में ४०० घुड़सवारों सहित सेना की बड़ी प्रशंसा करते हैं। पर बुराई करने के लिए भी वे लिखते हैं कि "इलाक़ा सोती में

१. अफ़ज़लुत्तवारीख़—"तमन्ना"।
२. स्लीमन की डायरी भाग १, पृष्ठ १२३

नाज़िम के पास दो नजीब पल्टनें हैं। एक में ९५५ व्यक्ति तथा दूसरे में ८३० व्यक्ति हैं। १४ तोपें व घुड़सवार भी हैं। पर इस सेना के कप्तान गवैये या हींजड़े हैं। जितने लोगों को वेतन मिलता है उनमें से आधे मौजूद हैं। आधे लोगों की तनख्वाह अफ़सरों के पेट में जाती है। जो आधे यहां हैं भी उनमें से आधे लड़ नहीं सकते। जो आधे लड़ सकते हैं उनमें से आधे लड़ेंगे नहीं। सिपाही का वेतन चार रुपया माहवार है। केवल लड़ाई के समय इनको मुफ़्त में बारूद मिलती है। पोशाक पर अपना रुपया खर्च करना पड़ता है। १४ तोपों में से १२ ख़राब पड़ी हैं। बैलों के लिए डेढ़ सेर आटा रोज़ सरकार देती है पर उनको मिलता नहीं ....लड़ाई के बाद सिपाहियों को मजबूरन छुट्टी पर भेज दिया जाता है ताकि आधा वेतन देना पड़े। ब्रिटिश सेना में सूबेदार को ६७ रुपया मासिक वेतन, छुट्टी के समय ५२ रुपया मासिक, जमादार को क्रमशः २४ तथा १७ रुपया, हवलदार को १४ रुपया तथा छुट्टी पर ९ रुपया, नायक को इसी प्रकार १२ तथा ७ रुपया और सिपाही को ७ रुपया तथा छुट्टी पर साढ़े पांच रुपया मिलता है....तेलिंगा पल्टन के इमदादहुसेन ने मुझसे कहा कि सन् १८१७ में जब लार्ड हेस्टिंग्स आये थे तब से पल्टन को वर्दी नहीं मिली थी। समय-समय पर स्लीमन ने ऊपर लिखित सम्मति शाही सेना पर दी थी।

उनकी हां में हां मिलाते हुए मिर्ज़ा ज़ायर लिखते हैं कि पल्टन में ऊंची जाति के सिपाही होते थे। नियुक्तियों में रिश्वतें चलने लगीं। जफ़रुद्दौला के बड़े बेटे इक़बालुद्दौला सहायक सेनापति नियुक्त हुए थे। वे ऐश में पड़े रहते थे। उन्होंने अपना सब काम ग़ुलाम मुर्त्तज़ा के ज़िम्मे कर दिया। सेना के अफ़सर सेना का रुपया ग़ैर-सरकारी खर्च में लगाते थे। पर यह सब होते हुए भी भारतीय सैनिक ब्रिटिश पल्टन से नवाब की पल्टनों में रहना अधिक क्यों पसन्द करते थे? स्लीमन लिखते हैं—

"ऐसा प्रतीत होता था कि सिपाहियों में अपने यूरोपियन अफ़सरों के प्रति आस्था घटती जा रही थी।"[१]

वास्तव में बात यह थी कि कम्पनी सरकार कदापि नहीं चाहती थी कि बादशाह की सेना सुसज्जित हो। जब नवाब शुजाउद्दौला ने अपनी सेना ब्रिटिश ढंग पर संगठित की तो कम्पनी को ईर्ष्या हुई और उसने सन् १७६८ की संधि द्वारा

१. डायरी, पृष्ठ २९०

उनकी सेना ३५,००० करा दी।[१] जब कभी नवाबी सेना कुछ तरक्क़ी करती तो रेसिडेन्ट आदेश देता था कि ख़बरदार ३५,००० से ज़्यादा आदमी न करना। हम तो तुम्हारी हिफ़ाज़त के लिए तैयार हैं। बादशाह वाजिदअली शाह ने बड़े दर्दनाक शब्दों में लिखा है कि "हमने अपनी सेना को पुनः संगठित करना चाहा तो हमें ऐसा नहीं करने दिया गया है।" इस संबंध में हम लिख आये हैं कि बादशाह के सैनिक संगठन की नीति-रीति को किस प्रकार षड्यन्त्र करके समाप्त किया गया था।

लगान और उसकी वसूली के तरीक़ों के बारे में हम स्थान-स्थान पर काफ़ी लिख आये हैं। अवध में लगान वसूल करने के लिए "इज़ारा" प्रणाली थी यानी ठेके पर वसूली होती थी और वसूली में से एक निश्चित रकम नरेश की इच्छानु-सार ठेकेदार या इज़ारादार को "नानकार" के लिए, परवरिश के लिए मिलती थी। बादशाह गाज़ीउद्दीन हैदर ने तत्कालीन रेसिडेन्ट के कहने से लगान वसूली इज़ारा से बदल कर "अमानी" कर दिया। यानी बादशाह के कर्मचारी स्वयं लगान वसूल करते थे। हुज़ूर तहसीलें क़ायम हुईं जिनमें बादशाह के मुलाज़िम लगान वसूल करते थे। सरकारी यानी ख़ालसा ज़मीनों का यानी सरकारी ज़मीनों का हिसाब-किताब ठीक हुआ। पर लार्ड डलहौजी के कथनानुसार अमानी प्रथा से गाजीउद्दीन की आमदनी दो साल में ही काफ़ी कम हो गयी। उस समय कर्नल बेली रेसिडेन्ट थे। पुनः इज़ारा से वसूली शुरू करनी पड़ी। बादशाह नासिरु-द्दीन हैदर के समय उनके वज़ीर हमीम मेंहदी ने रेसिडेन्ट मैडोक के कहने से पुनः अमानी प्रथा चालू की। वे भी असफल रहे और अमानी प्रथा तोड़नी पड़ी। बादशाह मुहम्मदअली शाह के समय रेसिडेन्ट कोलफील्ड और कर्नल लो के ज़माने में ३५ लाख की वसूली अमानी पर कर दी गयी। वज़ीर शर्फ़ुद्दौला ने बड़े परिश्रम से इसका प्रबंध किया, जब वे कामयाब होने लगे तो रेसिडेन्ट ने ही बादशाह से कहकर उन्हें काम से हटवा दिया था।

इज़ारा प्रथा का कोई समर्थन नहीं करेगा पर रेसिडेन्ट किसी प्रथा में सुधार नहीं चाहते थे, वे किसी सुधार कार्य को सफल होते देखकर उसे विफल करना चाहते थे। जिस तरह से वे बादशाह का सैनिक संगठन नहीं सहन कर सकते थे, उसी प्रकार

१. **लार्ड हार्डिंग के सेक्रेटरी इलियट द्वारा लिखित**—Garden of India.

लगान संबंधी सुधारों में भी हस्तक्षेप करते थे। बादशाह ने स्वयं लिखा है कि "हमने अमानी पर वसूली शुरू की, इज़ारा को बंद किया पर रोज़-रोज़ लगान की दर बदली नहीं जा सकती थी। कम से कम सात वर्ष तो एक प्रबंध चलना ही चाहिए।" लगान से आमदनी कभी-कभी इसलिए कम हो जाती थी कि बादशाह अपनी उदारता में प्रार्थना करने पर अक्सर लगान माफ़ भी कर दिया करते थे। इन प्रथाओं में दोष भी थे पर किसान को उतना कष्ट नहीं था जितना कि साबित करने की चेष्टा की गयी है। किसान अपनी ज़मीन पर रोज़ क़ाबिज़ या बेदख़ल नहीं होता रहता था।

इसके विपरीत, कम्पनी के शासन में किसानों की कहीं अधिक दुर्गति थी। आगरा प्रदेश या उत्तरी-पश्चिमी सूबा के एक देशी सरकारी कर्मचारी ने उस समय एक लेख गुमनाम छपवाया था। लेखक के कथनानुसार "झूठ बोलने के लिए पटवारी मशहूर है। किसान किसी अन्य सरकारी कर्मचारी यानी अमला से बढ़कर पटवारी से डरता है। उनका इनदराज सुप्रीम कोर्ट की डिग्री से बढ़कर अकाट्य होता है। दीवानी में कोई मुकद्दमा दायर हो तो उसमें रियाया की सुनवाई हो सकती है पर कलक्टरी में बिना अमला को और चपरासी को घूस दिये साहब के सामने दर्ख़्वास्त दे नहीं सकते। प्रार्थना पत्र लिखाकर देने के लिए मुख़्तार और मुहर्रिर को फ़ीस दीजिए। डिप्टी साहब हर अर्ज़ी को तहसीलदार के पास तहक़ीक़ात के लिए भेज देते हैं। तहसीलदार वही रिपोर्ट देगा जो पटवारी कहेगा। क्या इसे न्याय कहते हैं। ग़रीब किसान कहां जाय ?"[१]

सांस्कृतिक तथा सामाजिक सेवा

ब्रिटिश सरकार के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण बादशाह को राजनैतिक

१. The Friend of India—**अप्रैल, १६, १८५७, पृष्ठ ३७०-७१ में उद्धृत सारांश हैं। वास्तव में यह उद्धरण उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित"** Freedom Struggle in Uttar Pradesh"–Editor S. A. A. Rizvi **और** M. L. Bhargawa – **के प्रथम संस्करण पृष्ठ सं० १९५, १९६ से है। इन पृष्ठों में बादशाहत के बाद कम्पनी सरकार ने बन्दोबस्त के समय किस धांधली से मालगुज़ारी तय की थी, इसका बड़ा सूचनापूर्ण प्रमाण दिया है।**

सफलता न मिली। पर, वे कर्मठ तथा बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होंने सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अपने देश की काफ़ी सेवा की। हम पिछले अध्यायों में उनकी ऐसी सेवाओं का बार-बार ज़िक्र करते आये हैं। गान-विद्या-वादन कला को काफ़ी विकसित किया और लखनऊ भारतवर्ष के प्रसिद्ध गायक-वादक वर्ग का प्रश्रय-स्थल तथा केन्द्र बन गया। सांस्कृतिक दृष्टि से उस समय लखनऊ भारत की राजधानी था। दिल्ली का दरबार अधमरा हो चुका था। अन्य सभी बड़े राज्य अंग्रेज़ों के दास बन चुके थे। लखनऊ तहज़ीब, संस्कृति, राजशाही भाषा, कला, चित्रकला, साहित्य आदि में सबसे आगे बढ़ा हुआ था। गायन, वादन के अतिरिक्त नाटक तथा रामलीला की भी चलन फैली। कृष्ण की रासलीला को बादशाह ने कला तथा मनोरंजन का ऊंचा साधन बना दिया। रईस लोग नाटक में भाग लेने वालों को नीची निगाह से देखते थे। बादशाह ने स्वयं "इन्द्रसभा" लिखा। उसे खेलते थे। स्वयं इन्द्र वनते थे। बड़े-बड़े रईस उसमें शरीक़ होते थे, भाग लेते थे। काव्य-साहित्य भी बहुत ऊंचे उठ गया। शायरों के लिए दरबार से बड़ा सहारा था। बादशाह भी बड़े अच्छे साहित्यकार थे। उन्होंने ४० ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अलावा ६ दीवान गजलों के, कई मसनवियां, प्रेम की कहानियां जिनमें बहुत सी आपबीती हैं। इनके विख्यात ग्रन्थों में इश्क़नामा, रिसाला ईमान, दफ्तरे परीशां, दस्तूर वाजिदी, दुल्हन इत्यादि उल्लेखनीय हैं। बहुत अच्छे गाने भी बनाते थे। उनकी ठुमरियां आज भी सबके मन में रस तथा संगीत के स्वाद का संचार कर देती हैं। कहते हैं कि प्रसिद्ध ठुमरी "बालम मोरा नैहर छूटो जाय" बादशाह को बहुत पसन्द थी। वे उसे बहुत अच्छा गाते भी थे। कव्वाली गाने वालों को उनसे नयी स्फूर्ति तथा प्रोत्साहन मिला। उस वक़्त के मुहम्मद खां कव्वाल जैसा बढ़िया कव्वाल बिरला ही पैदा होगा।

बादशाह के शासनकाल में पत्रकारिता की कला ने भी ख़ूब उन्नति की। अपने राज्य की परिस्थिति से पूर्णतः परिचित रहने के लिए वे अख़बारनवीस रखते थे। इनकी संख्या ६६० थी। वे समाचार संकलित कर बादशाह को भेजते थे। एक अफ़सर उन समाचारों का सम्पादन करता था। अख़बारनवीसों का वेतन ४ रुपये माहवार से १५ रुपये माहवार तक होता था। स्लीमन का कहना है कि ये "सम्वाद दाता" बहुत भ्रष्ट तथा दुष्ट थे। बादशाह के पास झूठे सम्वाद पहुंचाने का भय दिखाकर ज़मींदारों तथा दरबारियों से ख़ूब रुपया लूटते थे। इसीलिए यदि इन पर ३१९४ रुपया मासिक शाही ख़र्च होता था तो अपनी लाभदायक नौकरी बरक़रार

रखने के लिए वे लोग १,५०,००० रुपया साल बड़े दरबारियों को घूस देते थे।[१]

बादशाह की रुचि का अनुमान तो उन हिदायतों से मिलता है जो उन्होंने बेगमों के नाम जारी की थी। उन्हें हरेक चीज़ में सफ़ाई पसंद थी। छोटी गोली का यानी मछलीदार रुपया चांदी का होता था। हर साल चेष्टा की जाती थी कि टकसाल में पुराने सिक्के गला दिये जायं और नये सिक्के तथा अशर्फ़ियां ढलती थीं।[२] बादशाह संस्थाओं को दान भी क़ाफी देते थे। ख़ज़ाने से ढाई फ़ीसदी ज़क़ात ग़रीबों को खिलाने के लिए दी जाती थी। मुज़तहिद यानी मुस्तहिदुल-अस्र ही ख़ैरात का रुपया तक़सीम करते थे। स्लीमन लिखते हैं कि यह ख़ैरात सुन्नी मुसलमानों को नहीं, केवल शिया मुसलमानों को मिलती थी। पर तारीख़े अवध, अफ़ज़लुत्-तवारीख़ आदि से ऐसे किसी भेदभाव का पता नहीं चलता है। हिन्दू पंडितों, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों को भी सरकार से काफ़ी सहायता मिलती थी। बादशाह संस्कृत पाठशालाओं की सहायता करते थे। मुसलिम तथा हिन्दू पाठशालाओं को सरकार से सहायता मिलती थी। कुछ मक़तब सरकारी भी थे। कोई फ़ीस नहीं ली जाती थी। धार्मिक कार्यों में, धार्मिक पर्वों में, विशेषकर होली तथा मुहर्रम के अवसर पर बादशाह खूब दान करते थे। उनकी दानशीलता से लोगों ने अनुचित लाभ भी उठाया। आशा से कम रुपया मिलने पर लोगों के मुंह फूल जाते थे। मिसाल के लिए मई १८५४ में लखनऊ निवासी सय्यद मेंहदी-हसन २० वर्ष कर्बला में रहने के बाद लखनऊ वापस आये तो वहां से एक ज़रीह यानी बहुत सजा हुआ ताज़िया ले आये। लखनऊ में दियानतुद्दौला की कर्बला में उतरे। लोगों ने बादशाह से कहा कि आपके इक़बाल से यह ज़रीह आयी है। हुक्म हुआ कि सब लोग काला कपड़ा पहन कर ज़रीह का स्वागत करें। वली

१. स्लीमन के कथनानुसार राजमाता मल्का किश्वर भी दरबारियों से १२,००० रुपया साल घूस लेती थीं।

२. टकसाल के मुहक्मे को बैतुज्ज़र कहते थे। बादशाह के मुहक्मों के नाम भी सुनने में रोचक और अच्छे मालूम होते हैं जैसे सरिश्तये नज़ूल, सरिश्तये गंजियात व परमठ, सरिश्तय दवाब (यातायात तोपख़ाना, तानात सवारियां, वग़ैरः) तथा सरिश्तये आबकारी (शराब बेचने वालों को टैक्स देना पड़ता था। रईस अपने घर पर शराब तैयार कर सकते थे)।

अहद वग़ैरः सब स्वागत में गये। आधी रात को ज़रीह शाही महल पहुंचा। बादशाह ने दरवाज़े तक आकर उसका स्वागत किया। ज़रीह क़ैसरबाग़ की बारादरी में रखवा दिया गया। दोशाला, रूमाल और ७०० रुपया इनाम दिया गया। सबकी निगाह में "यह इनाम काफ़ी कम था।"

लखनऊ में एक वेधशाला थी जिसमें १७०० रुपये माहवार वेतन पर मि० हर्बर्ट नियुक्त थे। अमजदअली शाह ने उसे बन्द करवा दिया था। वाजिदअली शाह ने साढ़े चार लाख रुपया ख़र्च कर उसे फिर से क़ायम किया। ५०,००० रुपये का पत्थर भवन के लिए मिर्ज़ापुर से मंगाया गया। एक लाख रुपया का सामान ब्रिटिश वेधशाला ग्रीनविच से आया। एक अफ़सर भवन बनने का काम २०० रुपये माहवार पर देखता रहा। श्री विलकाक्स उसके प्रधान बनाये गये। घड़ीसाज़ बा० रसिकमोहन बंगाली थे। समय बतलाने के लिए यहां से तोप दगती थी। गणित तथा ज्योतिष संबंधी अनुसंधान कार्य होता था। इन विषयों पर २१ अंग्रेज़ी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराया गया। इसके साथ ही एक वेधशाला मेकनातीन यानी चुम्बक पत्थर की लगायी गयी। इसको ६००० रुपया सालाना ख़र्च तथा २०० रुपया माहवारी वेतन बादशाह से मिलता था। विलकाक्स की रेसिडेन्ट से पटरी नहीं बैठती थी। वे अपने विभाग में कोई हस्तक्षेप नहीं चाहते थे। वे कलकत्ता चले गये और २५ अक्टूबर को वहीं मर गये। उनके मरने पर कोई सुयोग्य व्यक्ति न मिलने तथा रेसिडेन्ट के हस्तक्षेप के एक साधन को समाप्त करने के लिए २० जनवरी, १८४९ को बादशाह ने वेधशाला बन्द कर दी और उसका क़ीमती सामान अपने यहां मंगवा लिया। तब तक वेधशाला पर मुहम्मदअली शाह के समय से लेकर १९ लाख रुपया ख़र्च हो चुका था। स्लीमन के कहने से बादशाह ने उसे फिर से चालू करा दिया।

प्रजा के साधारण सुख-दुःख का भी राजा को काफ़ी ख़्याल रहता था। नवाबी शासन में चारों ओर देहातों में मुसाफ़िरों को ठहरने के लिए सरायें तथा उनकी रक्षा के लिए पुलिस चौकियां बनायी गयी थीं। यह निर्माण कार्य बादशाह या नवाब अपनी जेब से कराते थे। वाजिदअली शाह ने भी ऐसी कई सरायें बनवायीं। देश का जो भाग "कम्पनी की हुकूमत में चला गया वहां की सब सरायें गिर-पड़ गयी हैं। पर शाही हुकूमत में हर गांव में एक अच्छी सुव्यवस्थित सराय मिलेगी......मौजूदा बादशाह तथा पिछले बादशाहों ने कुल मिलाकर कम से कम एक लाख कुएं अपने व्यय से राज्य भर में खदवाये होंगे।"

शासन का अन्त

वाजिदअली शाह कितने ही योग्य तथा कुशल शासक रहे हों, पर अंग्रेज़ों को भारत में एक स्वतंत्र अवध स्वीकार नहीं था। लार्ड डलहौज़ी के दुर्भाग्य से बादशाह मर भी नहीं रहे थे। उनकी जायज़ सन्तान भी मौजूद थी अतएव गोद लेने का भी प्रश्न नहीं था कि गवर्नर जेनरल दख़ल देता। अतएव उन्होंने एक स्मृतिपत्र (मिनट) तैयार किया जिसमें १८३७ की संधि को ठुकराते हुए सन् १८०१ की संधि की तहत में प्रस्ताव किया कि बादशाह से दीवानी तथा सैनिक शासन पूर्णतया ले लिया जाय और राज्य की आमदनी से जो भी रक़म बच रहे वही उन्हें गुज़ारे के लिए दी जाय। बादशाह को गद्दी से उतारा न जाय, वे तांजौर के नरेश की तरह से बेकार कर दिये जायं।[१] सन् १८३७ की संधि को ठुकरा देने का कम्पनी को कोई अधिकार नहीं था। ब्रिटेन के एक प्रसिद्ध वकील, जिनसे पदच्युत होने के बाद बादशाह की ओर से मश्विरा लिया गया था, इस संबंध में लिखा है कि "मैंने इन सब बातों पर विचार कर लिया है और मैं इस नतीज़े पर पहुंचा हूं कि सपरिषद् गवर्नर जेनरल को राष्ट्रों के लिए लागू क़ानूनों के अनुसार ऐसा कोई अधिकार नहीं था कि १८३७ की संधि को ठुकराकर सन् १८०१ की संधि को ही अवध नरेश तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के संबंध में लागू समझें।"[२]

अस्तु, डलहौज़ी का प्रस्ताव ईस्ट इंडिया कम्पनी की "सुप्रीम कौंसिल" में पेश हुआ। बैठक में मि० बोरिन की राय थी कि बादशाह से उनका पद तथा उसका सम्मान छीन लिया जाय। मि० ग्रान्ट की राय थी कि बादशाह राज़ी हों या न हों, हमको जो करना है, वह कर डालें।[३] केवल एक वकील सदस्य पीकॉक की सलाह थी कि बादशाह की बादशाहत बनी रहे और अवध से जो अतिरिक्त आमदनी बचे वह अवध की जनता के ही काम में लगायी जाय। सारांश यह कि बहुमत इस पक्ष में था कि बादशाह को पद से ही हटा दिया जाय। ३ जुलाई, १८५५ को लार्ड डलहौज़ी ने कम्पनी के बोर्ड आव डायरेक्टर्स को पत्र लिखा कि

१. Oude Blue Book, पृष्ठ १८८, १८९।

२. Oude Papers पृष्ठ १४९, और Opinion of Dr. Travers Twiss, Feb., 27, 1857.

३. Oude Blue Book पृष्ठ १९१.

"मैं अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए तैयार हूं।" २१ नवम्बर, १८५५ को बोर्ड की तरफ़ से गवर्नर जेनरल को डायरेक्टरों के विचार भेजे गये और पत्र में लिखा गया कि "हम यह समूचा भार आप पर छोड़ते हैं। हम यह नहीं चाहते कि आपके निर्णय में कोई बन्धन लगायें।"

और, लार्ड डलहौज़ी ने निश्चय किया कि बादशाह को गद्दी से उतार दिया जाय। १८५५ का साल समाप्त होते-होते कानपुर को आदेश पहुंच गया कि कानपुर में एक बड़ी ब्रिटिश पल्टन एकत्र करो। कानपुर में जो टुकड़ी थी, उसके अतिरिक्त १३,००० सिपाही और जमा हो गये। रेसिडेन्ट को आदेश दिया गया कि जब वे सैनिक प्रबंध से संतुष्ट हो जायँ तो सूचना दें। जनवरी के प्रथम सप्ताह में रेसिडेन्ट जेनरल आउट्रम को कलकत्ता आने का आदेश मिला। ३० जनवरी, १८५६ को कलकत्ता से सब आदेश प्राप्त कर आउट्रम लखनऊ वापस आये। उनका स्वागत करने कप्तान हेज़ तथा वज़ीर नक़ी ख़ां गये थे।

गद्दी छोड़ने का आदेश

यह सब हो रहा था और अवध दरबार को कुछ पता नहीं था। चूंकि उसे कलकत्ता में अपना वकील रखने की मनाही थी अतएव उनकी जानकारी का कोई साधन नहीं था। पर नवम्बर, १८५५ में उनको कुछ कुछ इत्तला मिलने लगी। बादशाह ने स्थानापन्न रेसिडेन्ट कप्तान हेज़ से पूछा कि कानपुर में इतनी बड़ी पल्टन क्यों इकट्ठी कर रखी है तो उन्हें जवाब दिया गया कि नैपाल के महाराजा राणा जंगबहादुर अपनी सेना सहित अयोध्या का दर्शन करने आ रहे हैं। नैपाल से आक्रमण का भी ख़तरा है। प्रजा का सन्देह मिटाने के लिए तथा उसका ध्यान बंटाने के लिए कुछ जंगली जानवरों की लड़ाई, हाथियों की लड़ाई आदि के खेल करवाये गये। कानपुर में मुनादी करवा दी गयी कि जो यह कहते सुना जावेगा कि सेना अवध पर आक्रमण करेगी, उसे दंड मिलेगा। फिर भी अफ़वाहें उड़ती रहीं।

आउट्रम के आते ही लखनऊ में अफवाह उड़ी कि ज़ब्ती करने आ रहे हैं। यह भी कहा जाने लगा कि ब्रिटिश पार्लमिन्ट ने फ़ैसला कर लिया है। यह बातें बादशाह से किसी ने कहीं तो उन्होंने समझा कि मज़ाक़ है।

अस्तु, वज़ीर अली नक़ी ख़ां आउट्रम का स्वागत करने दिन में १२ बजे के बाद गये थे। ३ बजे रेसिडेन्सी में दाखिल हुए। वज़ीर नक़ी खां से आउट्रम ने कहा कि कल यानी ३१ जनवरी को १० बजे दिन में मुझसे रेसिडेन्सी में मिलो। गुरुवार ३१ जनवरी को दिन में १० बजे नक़ी ख़ां आउट्रम के पास पहुंचे। उनको बहुत

कुछ मालूम था, यह तो समूचे दास्तान से प्रकट होता है, यद्यपि मिर्जा जायर ने यह साबित करने की चेष्टा की है कि उनको ३१ जनवरी को ही सब कुछ पता चला। जो हो, आउट्रम ने नक़ी खां से साफ़ कह दिया "कि बोर्ड आव डायरेक्टर्स ने हुकूमत अपने हाथों में लेने का फ़ैसला कर लिया है। बादशाह को १२ लाख रुपया साल पेंशन, ३ लाख रुपया घर ख़र्च तथा शाही परिवार की पेंशनें कम्पनी देगी। उन्हें गद्दी छोड़नी पड़ेगी और मुल्क़ का इन्तज़ाम कम्पनी करेगी। उनका ख़िताब वग़ैरः ज्यों का त्यों रहेगा और उनके उत्तराधिकारी को प्राप्त होगा। इस आशय का पत्र बादशाह के पास भेजा जा रहा है। उन्हें रज़ामन्दी देनी चाहिए। तुम उनसे स्वीकृति दिला दो। हम तुमको अपना शुभचिन्तक समझते हैं और समझते रहेंगे। तुम्हारी क़स्बा मछरहटा की एक लाख रुपये की जागीर क़ायम रहेगी। यदि बादशाह से स्वीकृति न दिलाओगे तो ब्रिटिश सरकार तुमको दोषी समझेगी।"

आउट्रम से वज़ीर की क्या बातें हुईं, यह वे दोनों ही जानें।[1] बादशाह की रज़ामन्दी का एक मस्विदा रेसिडेन्ट ने दिया था। उसे लेकर वे दोपहर बाद बादशाह के पास पहुंचे और उनसे सब हाल कहा। महाराजा बालकृष्ण ने अपनी ओर से राज़ीनामे का एक मस्विदा तैयार किया और बादशाह को सुना रहे थे कि उसी वक़्त जव्वादअली शाह यानी जेनरल मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत आ गये और राज़ीनामा का मश्विरा देने वालों को बुरा-भला कहने लगे। राजमाता मलका किश्वर भी आ गयी थीं। अब कुछ नहीं हो सकता था। दूसरे दिन, ४ फ़रवरी को रेसिडेन्ट स्वयं बादशाह से मिलने आये।

गवर्नर जेनरल ने आउट्रम को कलकत्ता बुलाकर जो आदेश दिया था, वह बादशाह के लिए काफ़ी कठोर था। उनका आदेश था कि :—

(१) बादशाह तथा उनके निजी कर्मचारियों के लिए १५ लाख रुपया सालाना पेंशन मिलेगी। (२) अगर बादशाह ख़ुशी से आत्मसमर्पण नहीं करते हैं तो उनसे जवाब तलब किया जाय। (३) उनका तोपख़ाना पहले जब्त किया जाय। (४) वे चाहें तो दिल्ली या आगरा में रह सकते हैं लेकिन जहां भी कहीं रहें, शहर में रहें जहां ज़िले के कलक्टर का दफ़्तर हो। (५) अगर वे ग्वालियर जाना चाहें

१. जेनरल आउट्रम ने वज़ीर तथा बादशाह से अपनी भेंट के सम्बंध में जो नोट कलकत्ता भेजे थे वे Freedom Struggle in U. P. में पृष्ठ ९६ से १०६ पर दिये गये हैं।

तो सोचकर जवाब दिया जायगा। (६) उनके रिश्तेदार और दोस्तों को बादशाह के साथ जाने की इजाज़त है पर शहर छोड़ देना होगा। (७) अवध में दो साल फ़ौजी क़ानून यानी मार्शल ला रहेगा। (८) दो बरस तक बादशाह के रिश्तेदारों को कम्पनी की हुंडियों में लगे हुए रुपये या उससे आमदनी की अदायगी नहीं की जायगी। (९) लखनऊ के व्यापारी केवल ब्रिटिश राज में ही व्यापार कर सकेंगे। (१०) सभी प्रमुख सरकारी कर्मचारी (अवध सरकार के) गिरफ़्तार कर लिये जायँ (११)अवध से इस समय जो भी आमदनी हो उससे पहले फ़ौज की तनख्वाह अदा की जाय (१२) अच्छे सरकारी कर्मचारी काम से न हटाये जायं।(१३) बादशाह जहां रहना चाहें, दो महीने में अपना सामान उठा ले जायं। (१४) बादशाह के रिश्तेदारों की नानकार यानी छोटी जागीरें ले ली जायं। (१५) सब ज़मींदार दो साल तक अपनी ज़मींदारी से बेदखल कर दिये जायं। (१६) तहसीलदारों चकलेदारों (हाकिम परगना) से ज़मानत लेकर काम पर रखा जाय।[1]

आउट्रम ने बादशाह के पास आकर उनको समझाना शुरू किया। उनसे कहा कि दिल्ली के बादशाह को हम सिर्फ १ लाख रुपया साल पेंशन दे रहे हैं। पर आपको १२ लाख रुपया सालाना और ३ लाख रुपया नौकरों का खर्च दे रहे हैं। आप दिलकुशा की कोठी में रहें। आपको सात मकान दे रहे हैं। शाह मंज़िल, मुबारक़ मंज़िल, ख़ुरशीद मंज़िल, सिकन्दर बाग़, बादशाह बाग़, रमना कोठी और दिलकुशा। आपके ख़ान्दान की तनख्वाह कम्पनी अपने ऊपर ले रही है। जब तक आप जिन्दा रहेंगे आपको बादशाह का ख़िताब रहेगा। उसके बाद यह ख़िताब समाप्त हो जायगा। आपके उत्तराधिकारी को सिर्फ़ १२ लाख रुपया सालाना पेंशन रहेगी। ३ लाख रुपया नौकरों वाला नहीं मिलेगा। आपकी हुकूमत मौज़ा बीबीपुर पर रहेगी पर फांसी की सज़ा नहीं दे सकेंगे।[2]

बादशाह बड़े रप्त-ज़प्त से सब बातें सुनते रहे और बोले[3]—"मैं ऐसे जब्र ज़ुल्मसरी पर राज़ी न हूंगा। अगर मुलाज़िमों ने गड़बड़ की है तो उनको बदल सकते हैं। ताज्जुब है कि जो गड़बड़ी बाप-दादा के समय से होती चली आ रही है, वह मेरे सर पर लादी जा रही है। मैंने कभी कोई पक्षपात नहीं किया. . . .आपने

१. ऐसी १९ हिदायतें थीं—तारीखे अवध।
२. तारीखे अवध ३. सलातीने अवध अध्याय ६२

आसफ़ुद्दौला से २२ लाख रुपया का मुल्क बनारस, जौनपुर, गाज़ीपुर वग़ैरः लिया था....अमीरुद्दौला हैदरबेग कलकत्ता गये तो रियासत का आधा आधा करा लिया...वालिद से इक़रारनामा लेकर ६ठीं मद उसमें वढ़ा दी....फ़ौज का छः लाख रुपया हम पर लाद दिया...हमने कभी कोई ऐतराज़ नहीं किया।"

चिलमन की ओट से बैठी हुई मलका किश्वर बोलीं—"हमने वफ़ादारी की तो हमको यह इनाम मिल रहा है। इस तरह हाल के हीले से घर छीन लेना कहां तक मुनासिब है।"[1]

जेनरल आउट्रम ने उत्तर दिया कि हम किसी प्रतिशोध या मुआवज़े के लिए यह सब नहीं कर रहे हैं। मल्का किश्वर ने कहा कि हम मलका विक्टोरिया से अपील करेंगे। आउट्रम ने जवाब दिया कि यदि आपको इज़ाज़त मिल जाय तो आप लन्दन जा सकती हैं। मल्का ने पुनः फ़रमाया कि अगर आप लोग वाजिद-अली शाह से नाराज़ हैं तो उनके स्थान पर जेनरल सिकन्दर हश्मत या वली अहद को गद्दी पर बिठा दो। एक ने सलाह दी कि मुस्तफ़ाअली शाह के लड़के को गद्दी पर बिठाइए, इस पर आउट्रम ने पूछा कि आपको क्या फ़ायदा होगा। मल्का बोलीं कि हमारी बदनामी तो जाती रहेगी कि हमने अवध की हुकूमत ख़त्म करा दी।

इस भेंट का कोई फल नहीं निकला। बादशाह न रेसिडेंट को एक लम्बा ख़त लिखकर ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी वफ़ादारियों का बयान किया। रेसिडेन्ट नें इस मामले में किसी से बहस करना या बातचीत करना भी अस्वीकार कर दिया। उलटे उन्होंने मलका किश्वर को घूस देकर मिलाना चाहा। उनको लालच दी गयी कि यदि बादशाह से दस्तख़त करा दें तो आउट्रम की आज्ञा से १ लाख रुपया साल पेंशन हो जायगी।[2] मलका ने अस्वीकार कर दिया। बादशाह ने अंग्रेज़ों के दोस्त नवाब इब्राहीम ख़ां, और सर्फ़ुद्दौला को बुला भेजा। इनका ज़िक्र मिर्ज़ा वसीहअली के सिलसिले में हम कर आये हैं। इन्होंने भी बादशाह को सलाह दी कि राज़ीनामा पर मुहर करने से इनकार कर दिया है तो उस पर क़ायम रहें।[3] नवाब मुहसनिद्दौला और मुनवरुद्दौला की भी यही राय थी कि

१. वही पृष्ठ १३२
२. Oude Blue Book पृष्ठ २९१
३. सलातीने अवध।

बादशाह अपनी बात पर कायम रहें। वज़ीर नक़ी खां ने सलाह दी कि अंग्रेज़ों को खुश करने के लिए फ़ौज को निरस्त्र कर दिया जाय।[१] तोपें चर्ख़ से गिरा दी जायं। गारद के सिपाही अपने हथियार गोदामों में दाख़िल कर दें। और हुआ भी ऐसा ही। बादशाह की ओर से स्वयं अपनी सेना को इस प्रकार निरस्त्र कर दिया गया है, इसकी न तो आशा थी और न रेसिडेन्सी को इसकी ख़बर दी। ४ फ़रवरी को जेनरल आउट्रम अपने सहायक कप्तान हेज़ तथा प्रधान सेनापति के साथ, बड़ी सावधानी से तथा सैनिक संरक्षण में आये और महल के फाटक पर बादशाह के पहरेदारों ने लाठी से सलामी दी तब उनको पता चला कि क्या बात हुई है। क्योंकि कम्पनी की ओर से शहर में दो अंग्रेज़ी बटालियन आ गये थे। उनके साथ तुर्क घुड़सवार तथा हिन्दुस्तानी बटालियन और १२ बड़ी तोपें भी थीं। आलमबाग़ में वे ठहरे हुए थे। इनको हर तरह की लालच भी दी गयी थी तथा कह दिया गया था कि ३ घंटे तक शहर की लूटमार की इजाज़त दी जायगी।

सेना को निरस्त्र करने के शाही निर्णय से जेनरल आउट्रम बहुत परेशान हो गये थे। ४ फ़रवरी को जब वे बादशाह से मिलने गये और उन्होंने देखा कि बादशाह ने पूर्ववत् शिष्टाचार से उनका स्वागत किया पर राजमहल सूना हो रहा था, प्रहरी निरस्त्र सलामी दे रहे हैं, तो उन्हें पता चला कि सेना निरस्त्र कर दी गयी है। ५ फ़रवरी, १८५६ को उन्होंने कलकत्ता पत्र भेजा कि बादशाह ने ३ फ़रवरी को ही पल्टन का पूरा वेतन चुका कर सेना तोड़ देने का आदेश दे दिया है। नाकों से पुलिस हटा ली गयी। चूंकि वेतन का भुगतान न हो सका अतः सेना तोड़ नहीं दी गयी पर निरस्त्र हो गयी है। आउट्रम ने बादशाह से कहला भेजा कि "सेना के हटने से नगर में लूटमार हो सकती है. . . .शहर में कुछ हो जायगा तो वे ज़िम्मेदार होंगे। पर वे सेना तोड़ने पर आमादा थे. . . .उन्होंने कहला भेजा है कि सेना टूट गयी तो क्या, पुलिस ज्यों की त्यों है और नगर की रक्षा कर रही है।"

प्रजा में अशान्ति

बादशाह अगर लड़ना चाहते तो उनकी प्रजा उनका पूरा साथ देने को तैयार थी।

१. यह बात कई प्रमाणों से साबित हो चुकी है कि बादशाह की फ़ौज को निरस्त्र कराकर वज़ीर नक़ी ने अंग्रेज़ों की बड़ी मदद की।

कम से कम ५०,००० युवक नागरिक उनके लिए प्राण देने को तैयार थे।[१] उनकी सेना "अपने सम्राट के लिए प्राण निछावर करने पर वचनबद्ध थी, और हिन्दुस्तानी सिपाही ज़बान पर मर मिटना जानते थे"[२]। पर, वज़ीर नक़ी खां ने यही नहीं किया कि स्वयं तथा अपने साथियों से बादशाह की सेना को निरस्त्र करा दिया बल्कि बादशाह की ओर से जनता को भी शान्त रहने की हिदायत भेज दी गयी। अंग्रेजों का यह कहना झूठ है कि सेना का वेतन बाक़ी था, अतएव वह कभी न लड़ती। जब कम्पनी की हुकूमत हो गयी और शाही सेना को तोड़ दिया गया और उसे लालच दी गयी कि जो लोग कम्पनी की सेना में भरती हो जायंगे उनकी बक़ाया तनख्वाह भी दे दी जायगी और वे कम्पनी के सिपाही बन जायेंगे तो अत्यधिक सिपाहियों ने एक स्वर से अस्वीकार कर दिया और घोषणा की कि "हमारा वेतन कुछ भी बाक़ी नहीं है।" एक सूबेदार ने कहा—"मैंने ४० वर्ष तक बादशाह की सेवा की है। मेरा उनके ऊपर कुछ भी बक़ाया नहीं है।"[३] नागरिकों को इतना क्षोभ तथा रोष था कि शहर भर में हलचल मची हुई थी। शहर कोतवाल आज्ञानुसार रेसिडेंसी में मौजूद थे। बेलीगारद तक नागरिकों की भीड़ जमा थी। यह वाजिदअली शाह के व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि न तो कोई उपद्रव हुआ और न एक अंग्रेज़ के शरीर पर आंच आयी। लोग रो रहे थे, मातम मना रहे थे।[४] तीन दिन तक किसी के घर चूल्हा नहीं जला था। समूचा नगर दुःखी था। वह अपने बादशाह को तथा "अवध की देशी हूकूमत" को चाहता था।

तीन दिन में

४ फ़रवरी, १८५६ को जेनरल आउट्रम जब सुबह ८ बजे बादशाह के सामने ज़र्द कोठी महल पहुंचे, उद्वेग तथा मानसिक वेदना से शाह की तबियत ख़राब थी। आउट्रम ने घोषणा की कि "सन् १८०१ की संधि समाप्त हो गयी और ७ दफ़ाओं की एक नयी संधि हाज़िर है। इसके अनुसार बादशाह को १२ लाख रुपया, नौकर-चाकर के लिए तीन लाख रुपया, सात मकान वग़ैरः मिलेंगे। धारा १ के अनुसार "समूचा दीवानी तथा सैनिक शासन सदैव के लिए ऑनरेबिल ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दिया जायगा।"[५]

१. सलातीने अवध। २. मेजर बर्ड। ३. सलातीने अवध। ४. तारीखे अवध।

५. "Sole and exclusive administration of the civil and

इस "राज़ीनामे" या "सुलहनामे" के साथ गवर्नर जेनरल का एक पत्र बादशाह के नाम था। वह निहायत बदतमीज़ी से भरा हुआ ख़त था। इसे पढ़कर बादशाह ने ठंडी आह खींची और आसमान की ओर मुंह करके कहा—

"हे ख़ुदावन्द, तू शाहिदे हाल है कि यह मुझ पर जफ़ा और जब्रे सरीह[1] है। और, हीलये इन्तज़ाम से मेरा घर मुझसे छीना जा रहा है। मैं कभी गवारा न करूंगा कि यह आबरू रेज़ी ख़ानदाने सलतनत की मेरी जेहद से हो।"

इस पर रेसिडेन्ट ने उत्तर दिया:—

"हम नहीं चाहते कि आपको ऐसे सदमये रुहानी में देखें। जब जनाव गवर्नर जेनरल साहब ने यह हुक्म निकाला था, मेरा भी अजीव हाल हुआ था। बहरहाल, राज़ीनामा अंग्रेज़ी व फ़ारसी दोनों ज़बानों में हाज़िर है। ब-रज़ा व रग़ाबत इस पर मुहर फ़रमाइए कि मैंने तफ़वीज़[2] मुमालिक मौरूसा सरकार कम्पनी अंग्रेज़ बहादुर को किया और मुशाहिरा मुजव्विज़ा बतौबे ख़ातिर बिला इकराह कबूल किया।"

बादशाह ने उत्तर दिया—"अगर हुक्मे सदर निस्बत वदअमली व बेइंतज़ामी और अदम ज़रे तहसील है तो तफ़वीज़े मुल्क मुज़ायक़ा नहीं। बगरना अज़राहे जब्र व तरद्दुद नहीं हो सकता।" राज़ीनामा या संधि के विषय में बादशाह ने कहा कि—"संधि बराबर वालों में होती है। मैं कौन हूं जो ब्रिटिश सरकार के साथ संधि करूं। सौ बरस तक हमने अवध पर हुकूमत की. . . .अंग्रेज़ इसे चाहें बना, बिगाड़, बढ़ा या घटा सकते हैं। उनकी लेशमात्र भी आज्ञा का पालन होगा। मैं और मेरी प्रजा ब्रिटिश सरकार के सेवक हैं।"[3]

रेसिडेन्ट—"सात मकान वसीहा उनके नाम हैं. . . .बाक़ी हमारे इख़्तयार में। उनमें अदालतें हमारी क़ायम होंगी। आज से तीन दिन तक आपको अख़्तयार है। बाद इसके हमारे अहकाम जारी होंगे।"

बादशाह—"तीन दिन की क्या बात है। आपको हर वक्त अख़्तयार है।

military Gevernments of the territory of Oude should henceforth be invested for ever in East India Company-"

१. (सलातीने अवध से) साफ़।

२. सुपुर्द।

३. कम्पनी के नाम जेनरल आउट्रम के नोट से

इक़रारनामे पर जो मुहर है वह बादशाह की ज़रूर है पर मेरी मुहर कैसे लगी यह हमें मालूम भी नहीं है"।[१]

रेसिडेन्ट—"अगर मेरा कहना मानकर चलो तो ठीक है, वरना लखनऊ के अलावा फ़ैज़ाबाद में रहना होगा।"

मलका किश्वर—"इस घर की जो ख़राबी आपकी वदौलत होनी थी, वह तो हो चुकी। इससे बदतर और क्या होगा। अब इस शहर का क़याम या दूसरे का, जो चाहो, दोनों बराबर हैं।"

आउट्रम ने बड़ी चेष्टा की कि बादशाह संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दें और स्वयं राज्य छोड़ दें ताकि संसार के सामने ब्रिटिश नैतिकता का ऊंचा आदर्श बना रहे। पर, वे असफल रहे। ६ फ़रवरी को वज़ीर नक़ी ख़ां को बुलाकर आउट्रम ने ख़ूब डराया-धमकाया, पर वज़ीर भी अपना सब प्रयत्न कर चुके थे।[२] बिना अनुमति के संधि पत्र पर बादशाह की मुहर तक लगा चुके थे। आउट्रम ने मलका किश्वर से अलग भेंट की और उन्हें लालच दी कि एक लाख रुपये साल की पेंशन अलग से दी जायगी। वे बादशाह का हस्ताक्षर प्राप्त कर लें। पर मलका भी अपने निश्चय से न हटीं। आउट्रम का ख़याल था कि बादशाह को भड़काने वालों में "ब्रैंडेन नामक एक शरारती अंग्रेज़ व्यापारी है जिसने उन्हें समझा दिया है कि इंगलैंड जाकर गद्दी वापस ले आयेगा।" ब्रैंडन के समाचार पत्र "सेन्ट्रल स्टार" ने भी संधि पर हस्ताक्षर न करने का बादशाह के निर्णय का स्वागत किया था।

आउट्रम को हिदायत थी (गवर्नर जेनरल के आदेश पत्र, धारा १४ के अनुसार) कि यदि बादशाह १२ लाख रुपये की पेंशन पर राज़ी न हों तो उसकी रक़म बढ़ा कर १५ लाख कर दी जाय। पर आउट्रम को आश्चर्य हो रहा था कि बादशाह ने एक बार भी रक़म की कमी-बेशी की बात नहीं की। आउट्रम लिखते हैं—"उनके दिमाग़ में चापलूसों ने यह भर दिया था कि जब वे लखनऊ छोड़कर चलेंगे तो

१. अधिकांश वार्त्तालाप सलातीने अवध से ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिये गये हैं।

२. वज़ीर नक़ी खां की यही सबसे बड़ी "दुष्टता" कही जाती है। अंग्रेज़ों के डर से या अपनी जान बचाने के लिए या अंग्रेज़ों को ख़ुश करने के लिए बादशाह की मुहर इक़रारनामे पर लगा दी थी।

पूरा शहर उनके पीछे-पीछे चलेगा तथा शहर ही ख़ाली हो जायगा।"[1] पर बादशाह के मन में ऐसी कोई इच्छा होती तो वे स्वयं यह आदेश न जारी करते कि उनके लखनऊ छोड़ने पर कोई भी उनका अनुकरण न करे।

अस्तु, ७ फरवरी को सबेरे ८ बजे आउट्रम के पास बादशाह का एक संक्षिप्त पत्र पहुंचा कि वे संधि पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। उन्होंने दो घोषणाएं एक के बाद दूसरी प्रसारित कीं। पहली घोषणा में था कि "सबको मालूम होना चाहिए कि ब्रिटिश सरकार की आज्ञानुसार उनके कर्मचारी अवध का शासन करेंगे अतएव हरेक को इत्तला दी जाती है कि उनके सब आदेशों को मानें, लगान आदि उनको दें तथा उनकी वफ़ादार प्रजा बनें। किसी भी दशा में सेना को विद्रोह नहीं करना चाहिए वरना ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी उन्हें दंड दे सकते हैं।

जब बादशाह सलामत अपना मामला गवर्नर जेनरल के सामने पेश करने के लिए कलकत्ता जायं और मलका मुअज्जमा के सामने पेश करने के लिए इंगलैन्ड जायं, तो कोई भी व्यक्ति उनके साथ चलने या अनुकरण करने की चेष्टा न करे।"[2]

दूसरी घोषणा सेना के अफ़सरों के नाम है। उनको आदेश दिया गया है कि "तुम अपनी जगह पर तैनात रहोगे और पूर्ववत् अपने काम को करते रहोगे। किसी भी दशा में तुम हिंसात्मक या ग़ैर क़ानूनी कार्य नहीं करोगे या कोई ऐसा काम नहीं करोगे जो सिपाही के आचरण के प्रतिकूल हो। तुम्हारा बक़ाया वेतन पेशगी दी हुई रक़म बाद करके, ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार अदा कर देगी। कोई भी आदमी अपना काम न छोड़े। हरेक को इन हिदायतों पर ध्यान देना चाहिए।"

संसार के इतिहास में, इस प्रकार शान्ति तथा उदारता, दृढ़ता तथा निष्ठा, प्रजा के हितचिन्तन तथा आत्म-समर्पण की भावना से किसी भी नरेश ने अपना राज्य नहीं छोड़ा होगा पर कम्पनी के कर्मचारियों के मन में बादशाह के हस्ताक्षर न करने पर इतना क्रोध था कि उन्हें उनका प्रत्येक कार्य शंकाजनक मालूम होता था।

६ फ़रवरी, १८५६ की शाम को ४ बजे रेसिडेन्ट ने जब वज़ीर नक़ी खां को बुला भेजा था और उन्हें विश्वास दिलाया था कि यह ख़बर झूठ है कि उनको गिरफ़्तार किया जायगा। वज़ीर ने कहा कि मैं काफ़ी चेष्टा कर रहा हूं कि बादशाह

१. कलकत्ता को प्रेषित आउट्रम की रिपोर्ट, ७ फरवरी, १८५६।
२. इस आदेश-पत्र पर जमादुल अव्वल, १२७२ हिजरी दिया है।

राज़ीनामा पर हस्ताक्षर कर दें और इसी चेष्टा के कारण दरबार में उनके बहुत ज़्यादा शत्रु पैदा हो गये हैं। "उनको अपनी जान व माल का ख़तरा है।" रेसिडेन्ट ने वज़ीर की सराहना की और कहा कि वे जानते हैं कि किस कठिनाई से काम कर रहे हैं। पर लाज़िम है कि ७ ता० के ९ बजे दिन तक जवाब मिल जाय।[1]

अधिकार-ग्रहण

७ फ़रवरी को ८ बजे दिन को जब बादशाह का उत्तर प्राप्त हो गया तो रेसिडेंट ने १२ बजे दिन को बादशाह के उच्च कर्मचारियों को बुला भेजा। महाराजा बालकृष्ण, सर्फ़ुद्दौला, ग़ुलामरज़ा खां (राय जगन्नाथ)—मिर्ज़ा अलीरज़ा, कोतवाल शहर, मीर नादिम हुसेन, मुहतमिम रौंद (गश्त), वन्देअली खां, दियानतुद्दौला, अहसनुद्दौला, आज़मअली बेग़ वग़ैरः सभी आये। रेसिडेन्ट ने घोषणा की कि अवध

१. Freedom Struggle in Uttar Pradesh, पृष्ठ १०४। सलातीने अवध में लिखा है कि जेनरल आउट्रम ने वज़ीर से कहा कि दस्तख़त करा कर लाओ वरना तुम्हारी शान किरकिरी कर दूंगा। वे बादशाह के पास गये और राज़ीनामा सामने रखकर और करौली निकाल कर कहा कि या तो दस्तख़त कर दीजिए या मेरा सर काट लीजिए। पहरेवाली ने करौली देखी तो समझा कि या तो वज़ीर खुदकशी कर रहे हैं या बादशाह पर हमला कर रहे हैं। वह चिल्ला पड़ी तो शोर सुनकर महलात से बेगमें भागती हुई आयीं। सब वज़ीर को गालियां देने लगीं। बादशाह ने उनको वज़ीर को गाली देने से रोका। जेनरल सिकन्दर हश्मत इतने निराश थे कि एक दिन बोले कि "ज़िल्लत बर्दाश्त नहीं होती। इससे बेहतर है कि कर्बला जाकर झाड़ू लगायें।" बादशाह ने जेनरल तथा राजमाता को सब अधिकार सौंप दिया और कहा कि कभी मुहर न करूंगा। मुहर रखने वाले मिफ़्ला-उद्दौला को आदेश हुआ कि मैं भी मांगू तो मुहर न देना। उन्होंने कहा कि जब तक जान है, ऐसा न होगा। और यह कहकर मल्का किश्वर को मुहर सौंप दी। मुहर ख़ास सन्दूक में रखकर उस पर दूसरी मुहर लगाकर जेनरल सिकन्दर तथा वली अहद के दस्तख़त हुए। जेनरल आउट्रम से कहला भेजा गया कि हम कलकत्ता जायंगे। आउट्रम ने कलकत्ता तार भेजा तो वहां से उत्तर आया कि वे आ सकते हैं और कम्पनी की अमलदारी में बाज़ाप्ता व बाक़ायदा अगर पैर रखें तो मैजिस्ट्रेट उनका स्वागत करें, २१ तोपों की सलामी दें।

की हुकूमत कम्पनी सरकार ने ग्रहण कर ली है। सभी उच्च कर्मचारियों की ज़मानतें ले ली गयीं। उनके घर पर पहरा बिठा दिया गया। एक प्रकार से घर-क़ैद हो गये। दूसरी श्रेणी के कर्मचारियों को आदेश हुआ कि वे अपना काम यथावत करते रहें। कम्पनी सरकार के आदेश के विपरीत यदि कुछ करेंगे तो दंड के पात्र होंगे। शाह के सभी उच्च कर्मचारियों ने कम्पनी सरकार के प्रति अपनी "वफ़ादारी का इज़हार" किया। वित्तमंत्री महाराजा बालकृष्ण को लगान का हिसाब तथा भूमि संबंधी सभी आंकड़े प्रस्तुत करने का आदेश हुआ। गवर्नर जेनरल के आदेश के अनुसार, जिनका हम ऊपर ज़िक्र कर आये हैं, बादशाह की सलामी ज़ब्त कर ली गयी, उनका गवर्नर जेनरल से एकान्त में मिलना बन्द हो गया, उनका लखनऊ में रहना मना हो गया, उनके अमले का वेतन तथा वक़ाया भी उन्हें देना पड़ेगा, ज़मींदारों की नानकार तथा सीर ज़ब्त हो गयी।

गवर्नर जेनरल का ख़ास आदेश यह था कि जो भी प्रबंध हो, वह धीरे-धीरे हो ताकि कोई बलवा न हो। जेनरल आउट्रम प्रथम चीफ़ कमिश्नर अवध नियुक्त हुए, उनका वेतन पूर्ववत् रहा। उनके सेक्रेटरी श्री आर० कूपर तथा सैनिक सेक्रेटरी कप्तान हेज़ नियुक्त हुए। ख़ैराबाद मुहम्मदी, लखनऊ, बहराइच तथा फ़ैज़ाबाद की चार कमिश्नरियां एक-एक कमिश्नर के ज़िम्मे की गयीं। ज़िला अलग किये गये और ज़िले का हाकिम डिस्ट्रिक्ट "डिप्टी कमिश्नर" के नाम से नियुक्त हुआ। डिप्टी कलक्टर-परगना हाकिम को असिस्टेंन्ट कमिश्नर का नाम दिया गया। दो केन्द्रीय कमिश्नर नियुक्त हुए——न्याय शासन के प्रबंधक यानी जुडिशल कमिश्नर श्री एम० सी० ओमानी तथा वित्तमंत्री यानी माल विभाग के कमिश्नर श्री गबिंस बनाये गये। लखनऊ के कमिश्नर मेजर बैंक्स, उनके सहायक कप्तान वेस्टन तथा सिटी मैजिस्ट्रेट कप्तान कार्नेगी हुए। शहर भर में तथा अवध भर में दो वर्ष के लिए मार्शल-ला, फ़ौजी क़ानून लागू हो गया। कमिश्नरों का वेतन ३५०० रुपया मासिक, डिप्टी कमिश्नर का १५०० से १००० रुपये तक, तीन श्रेणियां बनीं। असिस्टेन्ट कमिश्नर की भी तीन श्रेणियां बनीं ६०० रुपये से, ४५० रुपये तथा २५० रुपये मासिक की।

महाराजा बालकृष्ण ने तहसीलों यानी चकलों का नीचे लिखा नक़्शा पेश किया—

नाम इलाक़ा	परगना	सरकारी आय, रुपये में
१. ख़ैराबाद-बाड़ी-बिसवां	११	२,८४,९५२
संडीला-बांगरमऊ	११	७,१०,१००
शाहाबाद	१२	८४,४३२
ख़ैराबाद ख़ास	२२	८,९३,९२०
रामपुर कलां	१	१४,३२३
महमूदाबाद	१	१,१५,१५२
२. लखनऊ ख़ास—		
हरदोई	३०	५५,२२६
रसूलाबाद	२	२,९८,२७४
लखनऊ देहात	१	१,०२,८५६
३. बहराइच—		
गोंडा बहराइच	१	४,८२,९५१
बहराइच	१	१,२९,५९६
तुलसीपुर	१	८२०
४. फ़ैज़ाबाद—		
दलमऊ	१	२,४७,०४३
सलोन	११	६,९१,३४३
सुलतानपुर	२३	१६,७१,२००

२३ फ़रवरी, १८५६ ताल्लुक़ेदारों को आदेश हो गया कि एक महीना के भीतर अपने काग़ज़ात तथा सनदें (अतीये) लाकर दिखायें ताकि निश्चय हो सके कि उनकी भावी सम्पत्ति किस प्रकार रह सकेगी। कम्पनी के कर्मचारियों ने मनमाना बन्दोबस्त शुरू कर दिया। आमदनी बढ़ाने के लिए आदेश हुआ कि पिछले ५ साल के लगान को भी न देखकर, रबी की फ़स्ल से ही लगान तय कर लें। महाराजा बालकृष्ण ने जो नक़्शा तैयार किया था उसे माल कमिश्नर मि० गबिंस ने पसन्द किया था। ख़ैराबाद के ज़िलाधीश श्री क्रिश्चियन तथा गबिंस, दोनों चाहते थे कि

धीरे-धीरे पूरी जांच करके तब लगान तय किया जाय। गबिंस तो चाहते थे कि हिजरी १२६४ से १२६६ तक की वसूली तथा रबी की फ़स्ल दोनों को देखकर अलग-अलग अनुमान लगाया जाय। चीफ़ कमिश्नर ने किसान के साथ न्याय करने के लिए अवध नहीं लिया था। अवध में बादशाही शासन में किसान प्रसन्न थे, खुशहाल थे। "बंगाल के तथा समूचे ब्रिटिश शासित प्रदेशों के किसानों से अधिक भू-संबंधी सुरक्षा अवध के किसानों को प्राप्त थी।"[1] पर चीफ़ कमिश्नर के कार्यालय को अपना बन्दोबस्त करना था इसीलिए भारत सरकार को चीफ़ कमिश्नर की ओर से ४ जुलाई, १८५६ को मि० गबिंस के आलस्य तथा मि० क्रिश्चियन की शरारत के विरुद्ध शिकायती पत्र भेजा गया था। ताल्लुकेदारों तथा ज़मींदारों के पास बक़ाया लगान में कितनी रक़म "मुजरा" करनी थी, उनको वापस करनी थी, इसकी सूची महाराजा बालकृष्ण ने तैयार करा कर श्री गबिंस को दी थी। गबिंस ने "मुजरा" करने का काम बालकृष्ण के ही ज़िम्मे किया। यह बात चीफ़ कमिश्नर को अनुचित प्रतीत हुई।[2]

कम्पनी के कर्मचारियों ने रईसों-राजाओं को लूटना शुरू कर दिया। बादशाह की प्रजा दुःख से व्याकुल थी। तीन दिन से लोगों ने खाना-पीना बन्द कर दिया था। बादशाह के चिड़ियाघर में जानवरों ने भी खाना बंद कर दिया था। आउट्रम को यह समाचार मिला तो उन्होंने बादशाह के यहां कहला भेजा कि जो जानवर रखना चाहें रख सकते हैं। बेगमों ने जवाब भेजा कि "हैवानों पर रहम आयी, इंसानों पर नहीं।"[3] रमना की कोठी में शाही जानवर नीलाम होने लगे। मिर्ज़ा अली रज़ा कोतवाल ने बहुत से कबूतर इस उम्मीद में ख़रीद लिए कि इन्हें बादशाह को उनके लखनऊ वापस आने पर भेंट देंगे। हाथियों ने खाना छोड़ दिया था। रोने से उनके नेत्र लाल हो गये थे। ख़रीदार लाल नेत्र देखकर उन्हें मोल नहीं ले रहे थे। हाथी अपनी सूंड़ों से बदन पर ख़ाक़ उड़ा रहे थे। ज़मानत देने पर वे बिके। १५०० रुपये के घोड़े १५० रुपये में निकल गये। बादशाह का सामान पानी के मोल बिक रहा था। शाही जानवरों पर १२०० रुपये रोज़ से ख़र्च घटाकर

१. Hindu Patriot, April 30, 1857—पृष्ठ १४०-४१।

२. Freedom Struggle in U. P.—पृष्ठ २२२—इस सम्बन्ध में यानी लगान के मामले में इस पुस्तक के पृष्ठ १८३ से २३२ बड़े महत्वपूर्ण हैं।

३. सलातीने अवध।

९० रुपया रोज़ कर दिया गया। जब इसकी रिपोर्ट बादशाह के यहां भेजी गयी तो नवाब ख़ास महल ने जवाब भेजा कि "बक़ीया दवाब को ख़ैरात कर डालो। हमारे किस काम का।"

रेसिडेन्ट ने बादशाह के निजी कर्ज़ों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर रिपोर्टें दी थीं। पर जब उनका हिसाब किया गया तो पता चला कि शर्फ़ुद्दौला ग़ुलाम रज़ा खां के द्वारा बादशाह पर सिर्फ़ २,३५,८४२ रुपया ७ आना ३ पाई ऋण था जिसे साहूकार लोग १,७१,६१० रुपया ८ आना पर भुगतान करने को तैयार थे।[१] ताल्लुकेदारों ने भी घबड़ाकर बक़ीया मालगुज़ारी ज़मा करनी शुरू कर दी और एक महीने के भीतर ६६ लाख रुपया जमा हो गया। ताल्लुक़ेदारों के क़िले या गढ़ियां गिरा दिये गये। गढ़ियों की संख्या १५६९ थी।[२] मि० ओमानी, जुडिशल कमिश्नर के १६ अगस्त, १८५६ के पत्र के अनुसार मुहम्मदी इलाक़े को छोड़कर राज्य में ५७४ क़िले थे। उन्होंने हरेक ज़िले के क़िलों की संख्या अलग-अलग दे दी है। रईस निरस्त्र कर दिये गये। बक़ाया का हिसाब होने लगा। १,३५,००० रुपया एकरामुद्दौला पर निकला। राजा मानसिंह के पास ५७७ गांव थे, दो लाख रुपये साल की वसूली थी। उनसे सब छिन गया, ६ गांव तथा २९०० रुपया साल की वसूली रह गयी। उन पर ३५,००० रुपया बक़ाया निकला। पकड़ने के डर से वे साधु का वेष धारण कर काशी भाग गये। कम्पनी सरकार ने ७२० तोपें, १,९२,३०६ बन्दूक़ें तथा तमंचे, ५,७९,५५४ तलवारें तथा ६,९४,०६० फुटकर हथियार छीन लिये। वसूली की सख़्ती इतनी थी कि बादशाह के साथ ख़ान एतमादुद्दौला तथा मिर्ज़ा हुसेन खां इकरामुद्दौला कानपुर चले गये थे। बादशाह के बार-बार विरोध करने तथा पत्र लिखने पर भी वे कानपुर से पकड़वा मंगाये गये। चीफ़ कमिश्नर के यहां से बादशाह को पत्र गया था कि यदि "आप उनको रखना चाहें तो आज्ञा दें कि आपकी १२ लाख रुपये की पेंशन में से उन दोनों के नाम बक़ाया की ज़मानत में ५०,००० रुपया काट लिया जाय।"[३]

शाही फ़ौज़ को आज्ञा हो गयी कि जो कम्पनी की सेवा में आना चाहे वह शामिल हो जाय। उसका बक़ाया वेतन कम्पनी देगी पर ४० लाख रुपया से

१. Freedom Struggle in Uttar Pradesh—पृष्ठ २२३। **कितनी कम रक़म है। २. यह संख्या सलातीने अवध की है।**

३. Freedom Struggle in U. P.—पृष्ठ १११-११२।

ऊपर के बक़ाये के जिम्मेदार बादशाह होंगे। ३० वर्ष की उम्र के ऊपर सिपाही तीन माह का वेतन तथा पेंशन देकर काम से अलग किये गये। अन्य सरकारी नौकरियों में ४९ वर्ष की उम्र के सभी लोग काम से हटा दिये गये। लखनऊ में १८०० घुड़सवार तथा तीन रिसाले रह गये। तीन छावनियां मुक़र्रर हुईं। १०० बड़ी तथा १००० अन्य तोपें रख ली गयीं। हज़ारहा मन बारूद पानी में बहा दिया गया। बेली गारद——जहां बादशाह परेड कराते थे, वह गिरा दिया गया, आसफ़ुद्दौला के महल में छावनी, तोपखाना वग़ैरः, दियानुतुद्दौला के अस्तबल में अस्पताल खुला; हज़रतगंज का दोनों दरवाजा तोड़ने का हुक्म हुआ। बेगमों के विरोध करने पर एक ही दरवाज़ा तोड़ा गया। सिटी मैजिस्ट्रेट मेजर कार्नेगी कोतवाली चबूतरा, चौक आये और उन्होंने वहीं कचहरी की। कर्मचारियों ने नवाबी ढंग से उनके सामने नज़रें पेश कीं। बारादरी, चौक में कचहरी मुक़र्रर हुई। कम्पनी की सेना की एक टुकड़ी यहां लगा दी गयी। शहर कोतवाल मिर्ज़ा अलीरज़ा ख़ां ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया पर उनका त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया गया। उन्हें २०० रुपया माहवार वेतन वृद्धि की गयी। शहर के ५२ थाने, "छः कमान अफ़सर" तथा २००० कांस्टेबुलों को हुक्म हुआ कि हर वक़्त तैयार रहें। सुबह शाम दोनों वक़्त थानों पर रिपोर्ट दें। बेगमात की जायदादों की छानबीन के लिए विशेष अफ़सर नियुक्त हुए।

शाही फ़ौज के सिपाहियों को हुक्म हुआ कि ३० वर्ष की उम्र के ऊपर वाले सिपाही एक माह से तीन माह तक का वेतन तथा पेंशन लेकर काम से अवकाश प्राप्त करें। फ़ौज के बक़ाया वेतन मद में ४० लाख रुपये की ज़िम्मेदारी कम्पनी ने अपने ऊपर ली तथा ऐलान कर दिया कि इससे अधिक वेतन यदि बाकी रहा तो बादशाह का सामान नीलाम करके अदा करेंगे। शाही फ़ौज के जो लोग कम्पनी की सेना में सम्मिलित हो गये उनका बक़ाया मिल गया।[1] लखनऊ में १८०० घड़सवार तथा ३० रिसाला पल्टन रह गयीं। १०० बड़ी तथा १००० अन्य तोपें रख ली गयीं। बाक़ी गिरा दी गयीं। आहनी गोले व बारूद दस आने सेर बाज़ार में बिके।[2] हज़ारों मन बारूद पानी में बहा दी गयी।

१. कुछ इतिहासकार जैसे तारीख़े अवध के अनुसार अधिकांश शाही सिपाहियों ने कम्पनी की फ़ौज में भर्ती होना अस्वीकार कर दिया। मिर्ज़ा जायर इसके विपरीत कहते हैं। २. सलातीने अवध के अनुसार।

शाही परिवार की दुर्गति

१४ वर्ष से एक ही मकान में रहने के आदी, बादशाह के बड़े भाई मुस्तफ़ा अली शाह को दो महीने के लिए मंडियाहू की छावनी में क़ैद कर दिया गया।[1] फिर, वे १०० रुपये मासिक पेंशन देकर छोड़े गये। प्रायः सभी बेगमों की जागीरें ज़ब्त कर ली गयीं। नवम्बर, १८५६ से मार्च, १८५७ के बीच में इस संबंध की कार्यवाहियों के कागज़ात अब प्रकाशित हो गये हैं। नवाब सुलतानजहां महल, हज़रत महल, शैदा महल, फर्खुन्दा महल, निशात महल, खुर्द महल आदि की जो दुर्गति हुई, उनकी जागीरें जिस प्रकार छिनीं, उसकी रोचक कहानी है[2]। सबसे पहली खोज या तलाश बादशाह की सम्पत्ति की थी।[3] अंग्रेज़ों का ख़याल था कि यह सम्पत्ति बेगमों के यहां ही छिपी पड़ी थी। इसीलिए छेड़छाड़ भी काफ़ी हुई। २३ अगस्त, १८५६ को चार घंटों में पूरा छत्तरमंजिल ख़ाली करा लिया गया। बादशाह की अधिकांश बेगमात इसी में रहती थीं। अंग्रेज़ों ने छत्तरमंज़िल बादशाह को दे रखा था। पर अंग्रेज़ अपनी लालच से मजबूर थे। १८ फ़रवरी, १८५६ को जेनरल आउट्रम ने यह आदेश जारी किया था कि बादशाह की निजी सम्पत्ति पर कोई हाथ न लगाये पर मेजर बैंक्स और कार्नेगी ने मनमानी कर ही डाली। कुछ लोगों ने चीफ़ कमिश्नर को एक अर्ज़ी[4] देकर सूचित किया कि सेहतुद्दौला बहादुर ने महलात (बेगमात) को इत्तला दी कि "आप छत्तरमंजिल का मुआयना करने आयेंगे, ताकि उसे ख़ाली कराया जाय. . . .बेगमात ने प्रार्थना की कि यह भवन बादशाह की

१. ३१ मार्च, १८६५ को कलकत्ता से इनके नाम आदेश जारी हुआ था कि यदि ज़रा भी संदेह होगा तो देश से निकाल दिया जायगा।

२. ३ जनवरी, १८५७ से २३ मई, १८५७ के बीच की कार्यवाहियां।

३. बादशाह की अधिकतर सम्पत्ति क़ैसरबाग में रखी थी। वहीं बेगमें भी रहने के लिए गयीं। बेगम अमीर महल, उमराव महल और सरदार महल ने तलाक़ ले लिया। उनका 'मेहर' अदा कर दिया गया।

४. इस प्रार्थनापत्र पर अमीर हैदरअली, कायमअली, मीर वाजिदअली, असग़रअली, आजमअली, बुद्धू खां, मियां अक़ीक अली, बक्स और मियां याकूत के हस्ताक्षर हैं।

सम्पत्ति है, वे बाहर गये हैं. . . .बरसात में दूसरा मकान खोजना मुश्किल है. . . हम शाही ख़ानदान की परेशानी आपकी जानकारी में लाना चाहते हैं. . . .'' पर चीफ़ कमिश्नर ने बिना पढ़े ही अर्ज़ी वापस कर दी।

१४ मुहर्रम, १२७३ हिजरी, यानी १४ सितम्बर, १८५६ को बादशाह ने बेगमात की इस दुर्गति पर, कलकत्ता में गवर्नर जेनरल को पत्र लिखा—''बिना किसी अतिशयोक्ति के मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि मेरे परिवार की तथा मेरे प्रति जो अशिष्टता बरती गयी है उससे मुझे इतना दुःख हुआ कि मैंने तीन दिन से खाना छोड़ दिया है। आपने लखनऊ में अधिकारियों से इन लज्जाजनक कार्यों के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए लिखा है। पर, कुछ प्रतिकार होने के बजाय मुझे सूचना मिली है कि मेरे अफ़सरों से १०,००० रुपये की हरेक से ज़मानत ले ली गयी है कि वे शहर छोड़कर बाहर नहीं जा सकते। उनको हिदायत दी गयी है कि वे सब गोदाम, ख़ज़ाना, जवाहरात आदि का हिसाब दें। मि० कार्नेगी ने पहरा बिठा दिया है। हमारे अफ़सरों से पूछा गया कि महलात का ख़र्च कैसे चल रहा है। अफ़सरों ने बतलाया कि बादशाह लखनऊ छोड़ते वक़्त कुछ हज़ार रुपये तथा स्वर्ण मुहरें दे गये हैं। इस पर उन्हें हुक्म दिया गया है कि ''बिना हमसे पूछे तुम एक कौड़ी भी नहीं दे सकते।'' इससे साफ़ है कि मेरा परिवार दाने-दाने का मुहताज हो जायगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस ब्रिटिश सरकार के प्रति मैं इतना वफ़ादार रहा हूँ, जिसके साथ मेरी तथा मेरे बुज़ुर्गों की गहरी दोस्ती रही है, जो हर मौक़े पर हमेशा काम आया है, उसके साथ ऐसा व्यवहार तो कभी न हुआ होगा. . .''[१]

बादशाह ने गवर्नर जेनरल को पुनः एक पत्र लिखा जिसमें शिकायत की कि जितना अत्याचार मेरे तथा मेरे परिवार पर हो रहा है वैसा किसी शत्रु के साथ भी नहीं किया गया होगा। ''मेरा सामान फ़राबक्स की कोठी से उठाकर कोठी लाल बारादरी में ढेर का ढेर लाद दिया गया है।'' एक दूसरे पत्र में बादशाह ने लिखा—''मेरे अहल्कारों ने मुझे इत्तला दी है कि छत्तरमंजिल से मेरी औरतें तथा बच्चे घसीट कर, बड़ी बेइज्ज़ती के साथ निकाल बाहर किये गये।'' अन्त में,

१. इस सम्बन्ध में बादशाह ने ३० अगस्त, १८५६ तथा १३ नवम्बर, १८५६, फिर ६ सितम्बर, १८५६ को गवर्नर जेनरल को पत्र लिखा था। ६ सितम्बर के पत्र के बाद इन बातों ''जांच करने'' का आश्वासन मिला था।

बादशाह के बहुत अधिक पत्र आने पर मजबूर होकर गवर्नर जेनरल को उत्तर देना पड़ा। प्रायः सभी आक्षेप स्वीकार कर लिये गये पर हरेक की सफ़ाई दे दी गयी—१०,००० रुपये की ज़मानत का कारण, छत्तरमंजिल का ख़ाली कराना क्यों ज़रूरी था, इत्यादि।

अपने प्रति लगाये गये अभियोगों का उत्तर देते हुए बादशाह ने ऊपर लिखी बातों का भी ज़िक्र किया है। वे लिखते हैं—"१८०१ की संधि की धारा ३ के अनुसार कम्पनी ने नवाब के मुल्क की रक्षा की ज़िम्मेदारी ली थी और धारा ६ के अनुसार नवाब के पास जो राज्य बचा रहेगा उस पर शासन की पूरी ज़िम्मेदारी नवाब की होगी। उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता था। जून, १८५५ को लार्ड लूसी ने भी इसी व्याख्या को स्वीकार किया था....हमने तो अपने सिपाहियों के हथियार रखवा दिये हैं। तोपें उतरवा दीं। लखनऊ कोतवाली में २००० सिपाही इन्तज़ाम के लिए नौकर थे। कम्पनी सरकार ने उनसे महीने भर काम लिया। फिर उनको तनख़्वाह नहीं दी। जब उन्होंने वेतन मांगा तो उनसे हथियार रखवाने के लिए फ़ौज भेज दी। हमने हुक्म भेजा कि बिना हमारे हुक्म के कोई कुछ न करे, वरना ख़ून हो जाता...जब कानपुर से फ़ौज आयी और हमने सबब पूछा तो कहला दिया गया कि जो कहेगा कि फ़ौज अवध के लिए है वह सज़ा पायेगा। यह **तरीक़ा डाका का है**....हमारा सब सामान लूट लिया गया। लाख रुपये क़ीमत की चीज़ एक रुपया में बिकी।[1] नवाब सआदतअली का ख़ास दरवाजा खुदवा डाला गया....सब मकानों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया....बारहदरी में तख़्त की जगह घोड़े कुत्ते बंधवा दिये गये....छत्तरमंजिल चार घंटे में ख़ाली करा लिया गया.."[2]

बादशाह ने सिपाहियों से हथियार रखवाने की घटना का ज़िक्र किया है, वह इस प्रकार है कि एक महीना उनसे काम लेने के बाद एक दिन यकायक कोतवाल अलीरज़ा ख़ां को हुक्म हुआ कि सब सिपाहियों को लेकर आसफ़ुद्दौला के इमामबाड़े में हाज़िर हो। सिर्फ़ ४०० सिपाही हाज़िर हुए। बहुत से भाग गये। बहुत से इमामबाड़े में पहुंच कर यह देखकर कि ब्रिटिश फ़ौज बन्दूक ताने खड़ी है, चहारदीवारी से छलांग मारकर भाग गये। जो सिपाही मौजूद थे, उन्हें हथियार

१. १५०० रुपए के घोड़े १५० रुपए में बिके—सलातीने अवध।

२. कम्पनी को बादशाह का उत्तर। बादशाह ने यह भी लिखा है कि कम्पनी सरकार ने उनका निजी सामान नीलाम कर उन्हें ३ लाख रुपया मात्र भेजा था।

रख देने का हुक्म हुआ। कोतवाल ने अपनी पगड़ी उतार कर सबके सामने रख दी और हथियार रख देने की अपील की। उन्होंने पहले अपनी तलवार रख दी और रोने लगे। कप्तान हेज़ ने सबसे हथियार रखवा लिया। एक घंटे तक सिपाही वहीं खड़े रहे। बाद में हथियार वापस दिया गया। शहर के ५२ थाने तोड़कर १० कर दिये गये। सिपाहियों की संख्या १४०० (बर्कन्दाज़) हो गयी। वेतन ४ रुपया मासिक। थानेदार का ५० रुपया मासिक। कांस्टेबुलों को सुबह-शाम क़वायद का हुक्म हुआ। कोतवाल अपने पद से हटाये गये। उनके स्थान पर लाहौर के भूतपूर्व कोतवाल, नजीबाबाद के रहने वाले महमूद ख़ां नियुक्त हुए।[1]

बादशाह ने अपनी सम्पत्ति के दुरुपयोग तथा नीलाम करने का ज़िक्र किया है। अंग्रेज़ उनका सब कुछ ले लेना चाहते थे। शाही तथा सरकारी सम्पत्ति के पुराने प्रबंधक (मुहाफ़िज़ या दारोग़ा) कप्तान फ़तेहअली के तीनों लड़के मुज़्दउद्दौला, इक़बालुद्दौला तथा मिफ़्तउद्दौला बादशाह वाजिदअली का सामान, तोशख़ाना, गोदाम आदि की देखभाल कर रहे थे। इनके अतिरिक्त सेहतुद्दौला मुतवस्सिल भी इसी काम में लगे थे। अंग्रेज़ों ने इनकी जान संकट में कर रखी थी। इनके ज़ाती मुचलके तथा ज़मानतें करा ली गयी थीं। इनसे बार-बार सब हिसाब तथा फ़ेहरिस्त मांगी जा रही थी। जुडिशियल कमिश्नर श्री ओमानी को संदेह था कि वज़ीर नक़ी ख़ां के गुरग़े मुहम्मद हुसेन, वज़ीर ख़ां, गुरु-सहाय और चण्डी सहाय ने सब फेहरिस्त लापता कर दी है।[2] ओमानी ने यह भी शिकायत की कि बादशाह के नौकरों ने सब सामान इधर-उधर हटा दिया है। अंग्रेज़ों के हाथ एक काग़ज़ लगा जिसमें बादशाह अमजदअली के देहान्त पर, बादशाह वाजिदअली के लिए तैयार किये गये सामानों की फ़ेहरिस्त थी। बादशाह ने अपनी ख़ास नौकरानी फ़ीरोज़ा अंजुमुद्दौला को आदेश दिया था कि सब सामान मिफ़्तुद्दौला वग़ैरः के जिम्मे कर दिया जाय। एक फ़ेहरिस्त इम्तयाजुलनिसा के पास तथा एक बीबन बीबी के यहां से बरामद हुई। बस, पहले चांद ख़ां की कोठी का सामान ज़ब्त करके नीलाम किया गया। मोतीमहल, फ़रहबख़्श मंजिल, टेढ़ी कोठी, सब मय सामान के ज़ब्त कर लिये गये और उनमें भरे हुए क़ीमती

१. सन् ५७ की क्रान्ति में वे मारे गये थे।

२. ओमानी का चीफ़ कमिश्नर के नाम २ सितम्बर, १८५६ का पत्र।

सामानों को किस प्रकार नष्ट किया गया, बेचा गया इत्यादि—इसकी दर्दनाक कहानी जानने से अब क्या लाभ होगा।

रईसों की दुर्गति

बादशाह के परिवार के साथ ही रईस, ताल्लुक़ेदार तथा राजाओं की शक्ति भी नष्ट कर दी गयी। बादशाह के फूफा तथा लखनऊ में मुख़्तार आम हिसामुद्दौला को पकड़ लिया गया और बहुत तंग किया गया। वज़ीर अली नक़ी खां लखनऊ में नज़रक़ैद हो गये।[१] गोंडा के राजा किशनदत्त सनौली, मकसूदी के ताल्लुक़ेदार, राजा ईसानगर, महमूदाबाद के राजा नवाबअली ख़ां, रामनगर धमीरा के राजा गुरुबख्शसिंह, मलीहाबाद के सभी ज़मींदार—एक बड़ी लम्बी सूची है—एक के बाद दूसरे तबाह कर दिये गये। जो राजा-रईस अंग्रेज़ों का साथ दे रहे थे, उनकी तारीफ़ की गयी, उन्हें विदेशियों से आदर भी प्राप्त हुआ। ऐसे प्रशंसित लोगों में सुलतानपुर ज़िले के अमेठी राज्य के स्वामी राजा माधोसिंह थे। बड़े लाट से उन्हें ख़ास ख़िलअत देने की सिफ़ारिश की गयी थी।

चीफ़ कमिश्नर ने भारत सरकार[२] को ३ सितम्बर, १८५६ को लिखा था कि "भूमि के नये बन्दोबस्त में हमने ज़मींदारों तथा ताल्लुकेदारों की शक्ति को नष्ट कर दिया है फिर भी उनसे हथियार रखा लेना चाहिए।" १ अक्टूबर, १८५६ से अवध भर में हरेक को बिना सरकार से लैसेंस प्राप्त किये हथियार रखने की मनाही कर दी गयी। आदेश हो गया कि सब लोग अपने-अपने हथियार सरकारी गोदाम में जमा कर दें। जिन राजा-रईस ने तुरत हथियार नहीं जमा किया, उनसे जवाब तलब हो गया। किसी प्रकार का हथियार या बारूद बनाने की मनाही अप्रैल, १८५६ में ही हो गयी थी। उसी महीने में फ़ैजाबाद तथा लखनऊ में हथियार बांध कर चलने की मनाही कर दी गयी।[३] सम्पत्ति तथा हथियार सभी कुछ छिन जाने के बाद ज़मींदारवर्ग तबाह हो गया।

१. भारत सरकार का आदेश सं० २१९५, अप्रैल, २४, १८५६—"उन्हें तब तक लखनऊ में रोके रहो जब तक आवश्यक हो।"

२. भारत सरकार के सेक्रेटरी श्री एडमौंस्टन के नाम चीफ़ कमिश्नर के सेक्रेटरी श्री कूपर का पत्र।

३. श्री ओमानी का पत्र, Freedom Struggle in U. P. पृष्ठ १२०।

कम्पनी सरकार की भूख

ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार को भारत या अवध के साथ न्याय नहीं करना था। उसे रुपयों की आवश्यकता थी। उनका एकमात्र लक्ष्य था—"हमारे लिए जितना रुपया इकट्ठा कर सको, करो। बाक़ी बातें तुम जानो। हमको परेशान मत करो।"[१] चारों ओर ख़ूब बेगार ली जा रही थी। कुलियों को, किसानों को, हरेक को बेगारी के कारण बड़ा कष्ट था। कम्पनी के कर्मचारी कुछ सुनते नहीं थे। प्रति वर्ष १,५०,००,००० रुपया यानी १० लाख पौंड इंगलैण्ड से कम्पनी सरकार द्वारा ख़रीदी सामग्री के मद में तथा ४,५०,००,००० यानी ३० लाख पौंड ब्रिटेन स्थित गोरे भारतीय कर्मचारियों के वेतन, पेंशन, भत्ता, सिपाहियों की तनख़्वाह आदि के मद में ग्रेट ब्रिटेन जाता था। इतना ही यानी साढ़े ४ करोड़ रुपया भारत में काम करने वाले गोरे अपने परिवार के ख़र्च के लिए हर साल भेजते थे। इस प्रकार लगभग २० करोड़ रुपया हर साल भारत से ग्रेट ब्रिटेन जाता था जिसके बदले में भारतवर्ष को एक पाई नहीं मिलता था—एक तिल भी सामान नहीं मिलता। सन् १८३३ से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का तिजारती रूप समाप्त हो गया था। कम्पनी की पूंजी ९ करोड़ रुपया ही थी।[२]

ऐसी दृष्टि से शासन करने वाली कम्पनी यदि अवध को अपने अधिकार में करने के लिए नैतिकता को तिलांजलि देकर काम करे तो आश्चर्य ही क्या है। अवध को ज़ब्त करने की चर्चा १८५३-५४ में ही कलकत्ता में चल निकली थी। "इंडियन पोलिटिकल" इसका प्रचार कर रहा था। उस समय राजा राममोहन राय के निर्भीक पत्र "हिन्दू पैट्रियट" ने २४ अगस्त, १८५४ को लिखा था—"कहते हैं कि अवध में कुशासन है, उसे ज़ब्त कर लो। हैदराबाद में कुशासन है, उसे ज़ब्त कर लो। यदि यही तर्क रहा तो किसी भी राज्य की स्वाधीनता सन्देहजनक वस्तु बन जायगी. . . .यदि अवध में कुशासन है तो दोष किसका है? क्या हमारी सरकार ने संधि की शरायतों के अनुसार कभी भी ईमानदारी या सच्चाई से उसे शासन-सुधार में सहायता दिया है। मदद पहुंचायी है। संधि के अनुसार हम अवध

१. "Englishman," **सोमवार, ५ अक्टूबर, १८५७**—Freedom Struggle—**पृष्ठ २७० से उद्धृत**

२. Freedom Struggle in U P. **पृष्ठ २७०**

के किसी भी कुशासित भाग को अपने अधिकार में ले सकते थे. . . .अवध पर ऐसा कोई भी अभियोग नहीं है कि हमने उसे कोई सलाह दी हो और उसने उसे नहीं माना हो. . .जो बात फल चुराने वाले के लिए कही जा सकती है, वही अवध के अपहरण के सम्बन्ध में भी. . ."

एक दूसरी सम्मति है :—"एक भूतपूर्व गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने अवध सरकार से प्राप्त "ऋण" के विषय में कहा है कि हमारी शक्ति के भय से जर्बदस्ती दी गयी रक़म है. . . .हमारी सहायक सेना के बारे में लार्ड डलहौज़ी कहते हैं कि यदि अवध में वह तैनात न होती तो अपनी रक्षा के लिए अवधवासी कभी विद्रोह कर चुके होते—एक थैली सोना लूट लेने वाले डाकू तथा किसी राज्य को छीन लेने वाले में यही अन्तर है कि डाकू अपने नाजायज़ कार्य की सफ़ाई में पाखंडपूर्ण बहानेबाज़ी नहीं करता है. . . ."[१]

और, अवध की प्रजा के प्रति न्याय के नाम पर कम्पनी के उन कर्मचारियों के हाथ में शासन आ गया जिनके चरित्र के विषय में अति निन्दनीय बातें लिखी गयी हैं, जो भारतीय महिलाओं के सतीत्व का कोई मूल्य नहीं समझते थे, जिन्होंने अपने यहां "परिस्तान" बना रखा था। कम्पनी का शासन आते ही अवध की दुर्दशा होने लगी। भोजन सामग्री बहुत महंगी हो गयी। पहले किसान खेत से ग़ल्ला काटकर सीधे बाज़ार में लाकर बेचता था। अब सरकार थोक ख़रीदार ठेकेदार तैनात करती थी जो दलाली खाता था। फलतः बाज़ार में गेहूं एक रुपये में १४-१५ सेर का बिकने लगा।[२] कम्पनी के कर्मचारी काम पर नहीं जाते थे। आराम में पड़े रहते थे—और जब काम पर गये तो ५०-६० मुक़द्दमे एक दिन में फ़ैसला कर देते थे। न्याय की आशा ही नहीं रह गयी थी।[३] कुछ लोगों ने बड़े लाट के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि लखनऊ-कानपुर सड़क पर लगातार डाका तथा हत्याएं होने लगी हैं।[४] लखनऊ में चोरियों का ठिकाना नहीं रहा. . .ब्रिटिश कर्मचारियों के मुंह-

१. Freedom Struggle in U. P. **से उद्धृत**—The Hindu Intelligence **४ मई, १८५७, पृष्ठ १३९**

२. २ मई, १८५७ को यहियागंज, लखनऊ के श्रीसालिगराम का प्रार्थना-पत्र।

३. १२ जनवरी १८५६ का दिलजोरसिंह बर्कन्दाज़ का प्रार्थनापत्र।

४. कर्नल स्लीमन बादशाह के शासनकाल में लखनऊ-कानपुर सड़क की सुरक्षा की बड़ी प्रशंसा कर चुके हैं।

लगे जिसे चाहते गिरफ़्तार करा देते। बादशाह के कर्मचारी राय जगन्नाथ, जो जाति के वैश्य थे, मुसलमान हो गये थे। इनका नाम गुलाम रज़ा खां तथा एक ख़िताब सर्फ़ुद्दौला भी था। ब्रिटिश कर्मचारियों से मिलकर लाखों रुपया लूट रहे थे।[१]

रेसिडेन्सी का दफ़्तर समाप्त कर दिया गया था। उसके कर्मचारी या तो अवकाश पर भेज दिये गये थे या उनको अन्य ज़िले में भेज दिया गया। लखनऊ में नये कर्मचारी, नये लोग—किसी का किसी से सम्बन्ध भी नहीं था। ऐसी दशा में निर्द्वन्द्व उच्छृंखलता बढ़ती जा रही थी।

अब हम पुनः इस इतिहास की शृंखला स्थापित करते हैं—अपनी कथा को फिर से ब्यौरेवार लिख देना चाहते हैं। जब यह निश्चित हो गया कि बादशाह "राज़ीनामा" पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे तो कम्पनी सरकार ने अपना घोषणापत्र जारी किया। बादशाह से आउट्रम की जो भेंट ४ फ़रवरी को हुई थी उसकी रिपोर्ट उन्होंने कलकत्ता भेजी थी। वे स्वयं लिखते हैं कि "बादशाह की आंखों में आंसू भर आये थे। बड़े दर्द भरे शब्दों में उन्होंने कहा कि दोस्ती या संधि बराबर वालों से होती है. . ."पर बादशाह के सौजन्य का कम्पनी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

जो "इश्तहार" मुल्क ज़ब्ती का ७ फ़रवरी, १८५६ को शहर भर में लगाया गया तथा जिसकी मुनादी करायी गयी, उसकी भाषा से ही कम्पनी की मर्यादाहीनता का अनुमान लगेगा :—

इश्तहार

नवाब गवर्नर जेनरल साहब के हुक्म से जारी हुआ—७ फ़रवरी १८५६ बमूजिव उस अहदनामे के जो सन् १८०१ में मुनक्क़िद[२] हुआ. . .हिफ़ाज़त बक़ीया मुल्क अवध के . . .कम्पनी सरकार ने अपने ज़िम्मे क़बूल करके. . .गोकि हम ख़ुद लड़ाइयों में फंसे हुए थे पर हमने अहद किया कि अवध में किसी दुश्मन को दाख़िल न होने देंगे. . . .बावजूद इस अहदनामे के जुमला वालियाने मुल्के अवध की जानिब से वर अक्स इसके अहल इत्तिसाल बिलकुल्लिया तसारह व तग़ाफ़ुल[३]

१. २८ मार्च, १८५७ का प्रार्थनापत्र–रामनाथ, किशनलाल, हरनारायण, मिश्रीदास आदि का।

२. Ratified—**स्वीकृत** ३. **सुस्ती व लापरवाही**

होता चला आया. . .लार्ड विलियम बैंटिक ने सनद की तम्बीह की. . .व-हयात तम्बीह को आठ साल का अर्सा गुजरा कि लार्ड हार्डिंग ने दुहराया. . .यह बात मशहूर है कि शाहे अवध मिस्ल अक्सर वालियाने पेशीन[1] मालिक मजकूर के इस मुल्क की मुहिम्मात के इन्तजाम में कमायम्बगी[2] मदाख़िला नहीं करते। तमाम मुल्क अवध में अख़्तियारे हुकूमत उमूमन या मुफ़रिबाने कमीन[3] या असख़ासे जाबिर व ख़ायन[4] जो कारगुज़ारी में नालायक़ व ऐतबार से साकित है, तफ़वीज़[5] होता है . . .उनको तनख्वाह नहीं मिलती है, वे देहातों को लूटते हैं। बादशाह वाजिदअली शाह को नसीहत की गयी. . .बादशाह ने इनकार किया. . .इश्तहार किया जाता है कि आज के दिन से नज्मो नस्क[6] मुमालिक अवध बिला शिरकत ग़ैर दवाम ब मुस्तराम ब क़ब्ज़े अख़्तयार कम्पनी अंग्रेज बहादुर आ गया है। सब आमिल व नाजिम व चकलेदार व जुम्ला नौकराने दरबार और सब अल्हकारान जो माली व मुल्की व पर्चा दीवानी व फ़ौजदारी और सब सिपाहियाने दरबार और जुम्ला साकिनाने अवध को लाजिम है कि आइन्दा कम्पनी अंग्रेज़ बहादुर अहल्कारों की इताअत व फ़र्माबरदारी कुल्ली करते रहें। अगर कोई ऐतराज करे . . .मजाहमत पहुंचाये, तो शरके मजकूर[7] मुफ़सिद[8] गिना जायेगा और मुक़य्यद[9] भी किया जायगा और ज़ागीर या आराज़ी उसकी ज़ब्त सरकार होगी।"[10]

लखनऊ छोड़ने की तैयारी

अंग्रेज़ चाहते थे कि किसी प्रकार बादशाह राज़ीनामा पर हस्ताक्षर कर दें तो संसार के सामने उनकी नैतिकता को आंच न पहुंचे। जब नक़ी खां चेष्टा करके हार गये तो जेनरल आउट्रम ने अमीनुद्दौला को बुला भेजा। वे भी बादशाह को समझाने गये पर सामने जाकर कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। घर वापस पहुंचे तो उन पर लकवा गिरा—कुछ महीने खाट से लगे रहे और चल बसे। सय्यद इनायतअली को भी आउट्रम ने इसी काम के लिए बुला भेजा पर वे गोल रह गये। उधर बादशाह भी अंग्रेज़ों के दोस्तों को बुला-बुला कर उनके पास पैग़ाम भेजते थे। ताजुद्दीन हुसेन खां व ऐहसान ख़ां बुलाये गये। कलकत्ता में वकालत करने

१. पूर्ववर्त्ती—बादशाहों की तरह २. जैसा कि चाहिए ३. कमीने। ४. जुल्म व खयानत करने वाले। ५. सुपुर्द। ६. शासन-प्रबंध। ७. व्यक्ति। ८. फ़साद करने वाला ९. क़ैदखाना की सजा १०. सलातीने अवध से उद्धृत।

वाले अबुलहसन को कलकत्ता भेजा गया पर वे मुर्शिदाबाद पहुंचते-पहुंचते मर गये। आगरा के प्रसिद्ध वकील ग़ुलाम जिलानी गवर्नर जेनरल के सेक्रेटरी मि० इलियट से परिचित थे। जिलानी कलकत्ता भेजे गये पर इलियट ने उनको अपने कमरे से निकाल दिया। बड़े लाट के दफ़्तर में मौलवी मसीहुद्दीन अच्छे पद पर थे पर उनके विचारों से अप्रसन्न होकर सेक्रेटरी ने उन्हें हटा दिया था। वे लखनऊ आ गये थे। बादशाह ने उनको ७०० रुपए माहवार पर अपना कर्मचारी रख लिया और २००० रुपया मार्ग-व्यय देकर कलकत्ता भेजा। बादशाह ने निश्चय कर लिया था कि वे स्वयं कलकत्ता जाकर अपनी फरियाद सुनायेंगे और वहां भी सफलता न मिली तो लंदन जायँगे। अतएव मसीहुद्दीन को कलकत्ता में सब प्रबंध करने के लिए भेजा गया। मेजर बर्ड कम्पनी की नौकरी छोड़कर बादशाह की सेवा में आ गये। लंदन में बादशाह की ओर से वकालत करने के लिए उन्हें नियुक्त किया गया। १,५०,००० रुपया मेहनताना तथा मार्ग-व्यय अलग से निश्चित हुआ।

बादशाह के प्रायः सभी सलाहकारों की राय थी कि कलकत्ता तथा लंदन जाना ज़रूरी है। मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत को एक दिन भी लखनऊ रहना बुरा लगता था। जनाबे आलिया मल्का किश्वर, मुक़द्दरे उज़मा नवाब ख़ास महल, सबकी राय थी कि लखनऊ छोड़ दिया जाय, बादशाह बहुत उदास थे। ज़ब्ती के आदेश की जानकारी होने के बाद से ही उन्होंने सबसे मिलना-जुलना बंद कर दिया था। कुछ ख़ास लोगों से मिलते थे। बेगमात से मिलना एकदम बन्द था। दो दिन बाद यानी १० फ़रवरी को नवाब ख़ास महल पर्दा छोड़कर ख़ुद उनके पास आयीं। बीबी हुज़ूर पहली बार ड्योढ़ी पार करके आयी थीं।

बहुत कुछ लिखा-पढ़ी के बाद बादशाह को लखनऊ छोड़ने की अनुमति मिली। पर वे अपने साथ ५०० व्यक्तियों से अधिक नहीं ले जा सकते थे। मार्ग में हर ज़िलाधीश को हुक्म हुआ कि उनका स्वागत करे और ज़िले के बेहतरीन मकान में ठहराये। बादशाह लखनऊ छोड़ने की तैयारी करने लगे।

६ मार्च, १८५६ को लार्ड डलहौज़ी भारत से लन्दन के लिए रवाना हो गये। उनके स्थान पर लाड कैनिंग गवर्नर जेनरल हुए। उन्होंने बादशाह के पास मित्रता का पत्र भेजा। इधर जेनरल आउट्रम को लकवा मार गया। २२ अप्रैल, १८५६ को सायं ५ वजे वे कलकत्ता के लिए रवाना हो गये। एक ख़ुशामदी ने उनकी यात्रा के समय उनके हाथ में शगुन के लिए अशर्फ़ियां बांधीं। आउट्रम कलकत्ता

से लन्दन चले गये। ८ मई, १८५६ को उनके स्थान पर चार्ली जैक्सन आगरा से आये। पर वे थोड़े दिन रहे। उनकी जगह जेनरल लारेंस ने ली।[१]

वज़ीर की दुर्गति

पर अवध की जनता अपने बादशाह के लिए व्याकुल थी। वह वज़ीर नक़ी खां को समूची विपत्ति का कारण समझती थी। उसे उनसे बड़ी घृणा थी। वज़ीर को बादशाह ने कानपुर से हुक्म भेजा कि जो शाही महल तुमको बहैसियत वज़ीर के रहने के लिए दिया गया था, उसे ख़ाली कर दो। अपने निजी मकान में चले जाओ। लोगों को वज़ीर का मकान ख़ाली करने का कार्यक्रम मालूम हो गया। चुप-चाप कुछ लोगों ने शहर में इश्तहार लगा दिया कि ९ बजे दिन में एक अजीब तमाशा होगा। कभी आंख से देखा न होगा। फिर क्या था, निर्दिष्ट स्थान पर भीड़ जमा हो गयी। ८ अप्रैल, १८५६ को ९ बजे दिन में अपनी वज़ारत की पगड़ी पहने नक़ी ख़ां अपनी बेटी नवाब अख़्तर महल[२] के साथ, मुमताजुद्दौला की दो घोड़ों की बन्द गाड़ी में, झिलमिली भी बन्द करके, शाही महल से बाहर निकले। चीफ़ कमिश्नर के चोबदार और कई सवार साथ में थे। अपने घर तहसीनगंज की ओर चले। लखनऊ निवासी गाड़ी के पीछे वज़ीर को भद्दी-भद्दी गालियां देते हुए चले। पुलिस न होती तो लोग गाड़ी पर पत्थर फेंकते। वज़ीर की बेगमें इस बेइज़्ज़ती की शिकायत करने बादशाह के पास कानपुर पहुंचीं। उन्होंने कुछ न सुना। जब कानपुर से लखनऊ वापस आयीं तो रास्ते भर गालियां सुनती रहीं।

जब नवाब मुनवरुद्दौला कलकत्ता से लखनऊ वापस आ गये तथा मौलवी मसीहुद्दीन मलका किश्वर के साथ लन्दन गये तो मुसाहिबों ने बादशाह को ज़ोर

१. चीफ़ कमिश्नर जेनरल लारेंस रेसिडेंसी में रहते थे। सेक्रेटरी कूपर इन्हें एक दिन कागज़ात दिखा रहे थे। बाहर बैठा कुली पंखा खींच रहा था। एक गोला कुली के सर के ऊपर से होता हुआ लारेंस का पैर छीलता कमरे के बाहर गिरा। लारेंस घायल हो गये और तीन दिन बाद ११ जुलाई, १८५७ को मर गये।

२. बादशाह वज़ीर नक़ी ख़ां को अपने साथ ले जाना चाहते थे पर कम्पनी ने आज्ञा न दी। वे १३ मार्च को कानपुर के लिये रवाना होने के पहले आउट्रम को एक पत्र भेजते गये कि "बिना वज़ीर के मुझे बड़ी असुविधा होगी। मैं अपनी बेगम अख़्तर महल भी उनके पास छोड़े जाता हूं।"

देकर वज़ीर नक़ी ख़ां को कलकत्ता बुलाने के लिए राज़ी कर लिया। नक़ी ख़ां ने कलकत्ता जाने की इजाज़त चीफ़ कमिश्नर से मांगी पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब गवर्नर जेनरल से अपील की गयी। उन्होंने अनुमति दी। १५ जुलाई, १८५६ को १९ घोड़ा-गाड़ी व २० बैलगाड़ी पर समान तथा परिवार के लोगों को लेकर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। ५० रुपया शहर के कुछ बदमाशों को मुंह बन्द रखने के लिए घूस भी दिया, पर, सवारी के पीछे लोग लग गये और आवाज़ें कसते रहे। गालियां देते रहे। इलाहाबाद में वहां के लोग गाड़ी के सामने आकर खड़े हो गये और वज़ीर को गालियां देने लगे। २९ जुलाई, १८५६ को नक़ी ख़ां कलकत्ता पहुंचे। मरने के पहले वे लखनऊ वापस आ गये थे। वहां पर उनकी क़ब्र के सामने जाकर भी लोग बुरा-भला कहते रहे। लखनऊ निवासी अपने बादशाह के लिए इतने व्याकुल थे कि उन्हें लखनऊ वापस लाने के लिए सैकड़ों आदमी कानपुर गये। पर, बादशाह ने लौटना अस्वीकार कर किया। अंग्रेज़ सरकार बादशाह से मिलने जाने वालों पर कड़ी निगाह रखती थी। मिसाहुद्दौला शाह से मिलने कानपुर गये थे। इसी अपराध में उनकी पेंशन बन्द कर दी गयी। फिर भी लोग बादशाह का साथ दे रहे थे। जुमा नौचन्दी यानी गुरुवार की रात को ख़ुदाबख़्श की कर्बला में लोग जमा थे। मुस्तहिद ने कहा कि दुआ करो कि बादशाह को मुल्क वापस मिले। सब लोगों ने एक चित्त होकर भगवान से प्रार्थना की। यह घटना १ मार्च, १८५६ की है। उस साल लोगों ने मुहर्रम भी नहीं मनाया।[१]

अस्तु, बादशाह ने निश्चय कर लिया था कि लखनऊ नहीं रहेंगे। बेगमों को हुक्म हुआ कि जो चाहे वापस चली जायं। कई बेगमें चली गयीं। उनके लिए १०० रुपया माहवार पेंशन मुक़र्रर कर दी गयी। कई ने पेंशन भी क़बूल नहीं की। बहुत सी बेगमों ने अपना ख़र्च कम कर दिया। सैकड़ों नौकर-चाकर निकाल दिये गये। लखनऊ में हज़ारों आदमी-औरतें बेकार घूमने लगे। कम्पनी सरकार ने सुलतानपुर के नाज़िम आग़ाअली ख़ां को क़ैद कर लिया। वे बड़ी कठिनाई से ज़मानत पर छूटे। सलोन के नाज़िम सय्यद मेंहदी हसन ४ महीने क़ैद में पड़े रहे। उनसे एक लाख रुपये की ज़मानत मांगी गयी पर न दे सके। ७०,००० रुपये जमा भी कर चुके थे। ३०,००० रुपये के लिए रोके गये थे। शाहज़ादों को हुक्म हुआ

१. बनारस में बादशाह का स्वागत करने के बाद काशी नरेश ने उस साल कोई त्यौहार नहीं मनाया था।

कि बढ़िया हिन्दुस्तानी जूता न पहन कर सादा जूता पहनें। कुछ को पेंशन भी न मिली। कुछ को १०० रुपया माहवार मिला। सरकारी मदरसों के सब मास्टर हटा दिये गये। केवल तीन को रखा गया।

लखनऊ से बिदा

बादशाह ने अपने फूफा हिसामुद्दौला को, जो मल्का गेती के दामाद थे, लखनऊ में अपना मुख़्तार मुक़र्रर किया। कोठी-ख़ज़ाना मितफ़उद्दौला के जिम्मे कर दिया गया। १३ मार्च, १८५६, शनिवार को रात्रि में ८-९ बजे[1] के लगभग बादशाह ने सवारी मंगायी। सवारी पर सवार होने चले कि रास्ते में ठोकर लगी। एक गाड़ी पर बादशाह और मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत बैठे—जैसे दो सितारे एक साथ चलें।[2] कोचबक्स पर राजा यूसुफ़अली खां बैठे। इस यात्रा की तैयारी बहुत गुप्त ढंग से की गयी थी फिर भी लोगों को मालूम हो गया। पहले तो लोगों ने समझा कि कैसरबाग़ जा रहे हैं। दोनों ओर वशीरुद्दौला और एहसानुद्दौला घोड़े पर सवार थे। तुर्क सवार भी साथ थे जिनको थोड़ी दूर जाकर बादशाह ने वापस कर दिया। बादशाह की गाड़ी[3] के पीछे नवाब माशूक़ महल की गाड़ी थी। उसके बाद अन्य लोगों की। साथ में मसीहुद्दौला सफ़ीरशाही यानी सरकार वकील, राजा कुन्दनलाल के वंशज मुं० दौलतराय "शौक़" जवाब-नवीस, आदि कुल मिलाकर ३००० व्यक्ति थे। पहर रात रहे उन्नाव पहुंचे और पौ फटते गंगा पार कर कानपुर पहुंच गये और अपने वफ़ादार मित्र व्यापारी ब्रैंडन (जिसे स्लीमन ने लखनऊ से निकाल था) के बंगले में ठहरे। दूसरे दिन जनाब आलिया नवाब मुख़द्दरेउज़्मा मल्का किश्वर, वली अहद, बेगम ताहिरु अस्मत मआब नवाब ख़ासमहल आदि पहुंच गयीं।

कानपुर में बादशाह को इस बात का बहुत अधिक मानसिक कष्ट था कि उनके ऊपर कड़ी निगाह रखी जाती थी। श्री मार्टिन ने अपनी पुस्तक "इंडियन इम्पायर" में लिखा है कि "१४ मार्च, १८५६ को कलकत्ता जाने के मार्ग में अवध के बादशाह कानपुर पहुंचे।[3] उसी दिन हिदायतअली वहां पहुंचे। छः दिन तक वह वहीं

१. मिर्ज़ा जायर तथा अन्य लेखकों ने यही समय दिया है। २. मिर्ज़ा जायर
३. सलातीने अवध के अनुसार बादशाह २ मार्च को लखनऊ से रवाना हुए पर तारीखे अवध, क़ैसरुत तवारीख़ आदि के अनुसार १३ मार्च को।

रुका रहा और बादशाह के वकील, दरबारी तथा नौकरों से मिलता रहा। कानपुर में बहुत से ख़ास-ख़ास लोग, वहां की हमारी पल्टन के बहुत से अफ़सर तथा सिपाही उनसे आकर मिलते रहे। सभी उनके पदच्युत होने से बड़े अप्रसन्न थे। नाना साहब के वकील भी मिलने आये और उन्होंने बतलाया कि नाना साहब इस बात से कितने दुःखी हैं। यानी वे सभी उत्तेजना बढ़ा रहे थे। इसके बाद ही हिदायत अली अपनी पल्टन में लाहौर जा पहुंचे और फिर वहां से बंगाल आये.."

बादशाह के कानपुर पहुंचने पर[1] कम्पनी की फ़ौज परेड के मैदान में सलामी के लिए इकट्ठा हुई। पर वे सलामी लेने खुद नहीं गये। इनाम भेज दिया। कानपुर में वे किसी से नहीं मिलते थे। सिर्फ़ मेजर बर्ड और नवाब मुनव्वरुद्दौला को आने की इजाज़त थी। बादशाह कानपुर एक महीने ठहरे। मेजर बर्ड को कलकत्ता रवाना कर दिया। अब बादशाह का दर्दनाक बयान उन्हीं की ज़बानी सुनिए :—

दिला तर्क कर अपने ग़म का बयां।[2]
सुना अपनी अव्वल से तू दास्तां॥
वो क़िस्से सुना जिससे आये नवां।[3]
मिटे रुस्तमो साम[4] की दास्तां॥
वो क़िस्सा सुना जो सरासर हो सच।
न अपनी तरफ़ हो न ग़ैरों की पच॥
वो क़िस्सा सुना जो गवाही रहे।
फ़क़ीरी में भी बादशाही रहे॥

१. बादशाह की सवारी के घोड़ों की रास ब्रैंडन ने पकड़ी थी। इस अंग्रेज को कलकत्ता तक के सफ़र के प्रबंध के लिए बादशाह ने ७०,०००रुपया दिया था। इस यात्रा में १००गाड़ियां कानपुर गयीं। लखनऊ से इतने अधिक लोग कानपुर गये कि कानपुर का घोड़ागाड़ी का किराया १२ रुपया फ़ी व्यक्ति से बढ़कर ६० रुपया हो गया था। शाह को भोजन कराने के लिए मशहूर नानबाई महमूद खां भी कानपुर पहुंचे।

२. हुज्ने अख़्तर से।

३. ताक़त, ४. साम पहलवान।

अजब वक़्त यह दास्तां है लिखी।
कि था क़ैद में बख़्ते बद मुख़्तफ़ी ॥[1]
क़लम ना सियाही न काग़ज़ दवात।
कि नायाब हो जैसे आबे हयात ॥[2]
ये वाजिदअली इब्ने अमजदअली।
सुनाता है अब दास्तां रंज की ॥
कि जब दस बरस सल्तनत को हुए।
जो ताले[3] थे बेदार सोने लगे ॥
ज़फ़ाकश का शाहे अवध नाम है।
हुकूमत का आख़िर ये अन्जाम है ॥
जो वो लार्ड डलहौज़ी उस वक़्त थे।
मज़ामीन उन्होंने ये ख़त में लिखे ॥
"रियाया बहुत तुमसे नाराज़ है।
तुम्हारी रियासत है बदनाम शय ॥
रियाया न देखेंगे हर्गिज़ तबाह।
फ़क़त नाम के तुम रहो बादशाह ॥
महीना हरेक माह एक लाख का।
मिलेगा तुम्हें कुछ नहीं शक ज़रा ॥

× × ×

हुआ घर में कोहराम सुनकर यह बात।
वो दिन दोपहर हो गयी सारी रात ॥
ये बन्दा बहुत उन दिनों था अलील।
कहा दिल ने क्या सोचूं इसकी शबील ॥
अलीये नक़ी ख़ां मेरे थे वज़ीर।
वही मेरे हर काम में थे मुशीर ॥

१. छिपा हुआ।

२. अंग्रेज़ों ने बादशाह को कलकत्ते के क़ैदखाने में क़लम दावात भी नहीं दिया था।

३. क़िस्मत।

मेरे दिल में आता था हर वक्त ख़्याल।
जो होना था वो हो चुका क्या मलाल।।
करो मोहर तुम राज़ीनामे पै अब।
गयी सलतनत तो गयी बे सबब।।
मगर सारे घर ने न छोड़ा मुझे।
दबाया, डराया, झिंझोड़ा मुझे।।
रियाया यह सब कहती थी बाह बाह।
किया हमको इस बादशाह ने तबाह।।
ये जाये जो फरियाद को ख़ूब है।
ये नाहक जो राजी हो मायूब[1] है।।
अलीए नक़ीखां को दहला दिया।
कि सब आबे ताना में नहला दिया।।
कोई कहता था है नमक बा हराम।
नहीं करता फ़रियाद यह नेकनाम।।
ख़सूसन मेरा हाल यह था किया।
कि पहरा हरेक सिम्त पर था खड़ा।।
जो आ जाये कोई न थी ये मजाल।
मुझे जिन्दगी हो गयी थी वबाल।।

× × ×

बुलाकर अज़ीज़ों को मैंने कहा।
कि रुख़सत मैं होता हूँ हाफ़िज़ ख़ुदा।।[2]
चलेंगे हम इस शहर से अब ज़रूर।
न है कुछ रियासत न है कुछ ग़रूर।।

१. ऐब की बात। २. ८ बजे रात को, १३ मार्च, १८५६, शनिवार को बादशाह जब लखनऊ छोड़ने लगे तो उन्होंने उपस्थित लोगों से कहा:—

"मैंने दस बरस हुकूमत की है। जो कुछ तकलीफ़ व रंज तुम पर पहुंचा हो, उसे बख़ुशी माफ़ करना। इस वक्त मैं माज़ूल (गद्दी से उतारा हुआ) हूँ। ख़ुदा जाने जिन्दगी में फिर मुलाक़ात हो या न हो।"

लिखे मैंने फ़रमान उम्माल को।
कि अंग्रेज़ी में भेजना माल को॥
किया मैंने सब शहर का बन्दोबस्त।
हुआ हौसला सब जवानी का पस्त॥

अपनी यात्रा तथा विपत्ति के सम्बन्ध में नवाब ख़ासमहल ने शैहदा (शैदा) बेगम को लखनऊ एक पत्र भेजा था[1]—"२७ तारीख़ १२७१ हिजरी जुमेरात के दिन जेनरल आउट्रम ने सुलताने आलम को बाप-दादा की सलतनत छोड़ने और हुकूमत से अलग होने का हुक्म दिया। हम महलात में मातम करते हुए सुलताने आलम के साथ रवाना हुए..उस समय जाने आलम का यह कहना कि "तुम पर दस वर्ष तक हमने राज किया। उस वक्त जो कुछ दुःख तुमको हमारी तरफ़ से पहुंचा हो उसे बख़ुशी माफ़ करो, इस वक्त मैं माजूल हूं। तुमसे छूटता हूं। ख़ुदा जाने ज़िन्दगी में फिर मिलें या न मिलें।" इन अलफ़ाजों ने मजमे को मजलिसे मातम बना दिया था। हुज़ूर मलका किश्वर, आरा बेगम साहिबा और यहिया हश्मत और लख़्तजिगर, नूरेनज़र वली अहद बहादुर सल्लामहू, मैं और चार सरकार की नौकरानियां साथ थीं। जब की पांचवीं को लखनऊ से चले, शाबान की पहली को कानपुर पहुंचे। पहली को इलाहाबाद के लिए रुख़सत हुए और आठ दिन में बनारस पहुंचे। राजा ने अच्छी ख़िदमत की। रानियां हर वक्त हाथ बांधे चाकरी में खड़ी रहती थीं। रमज़ान की २७ को कलकत्ता हमारा क़ाफ़ला पहुँचा...."[2]

बादशाह जिस वक़्त लखनऊ से चले, सवारी पर बैठने के पहले उन्होंने एक बार चारो ओर देखा और फिर यह पंक्तियां पढ़ीं :—

दरो दीवार पर हसरत से नज़र करते हैं।
ख़ुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं॥

उस समय एक गवैया दर्दनाक शब्दों में गाने लगा और लोग रोने लगे—

बालम मोरा नैहर छूटा जाय॥

१. कुछ नज़्में हमने बीच में छोड़ दी हैं। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वयं बादशाह लखनऊ छोड़ने या राजीनामा पर हस्ताक्षर न करने के निर्णय से प्रसन्न नहीं थे।

२. बेगमात अवध के ख़ुतूत-सम्पादक मुफ़्ती इन्तज़ामुल्ला शहाबी, पृष्ठ १३

उस कठिन अवसर के सम्बंध में शायर सग़ीर[1] ने लिखा है :—

यह सरकश दमे गिरियां नाले हुए।
कि लबरेज़ अश्कों से प्याले हुए॥
दरे बाग़ तक आये अह्ले हरम।
बहाते हुए चश्म से अश्के ग़म॥

वादशाह अपनी शाहंशाहाना तबीयत लेकर कानपुर गये थे। कानपुर में ही नौरोज़ यानी शिया नव-वर्ष पड़ा। बादशाह शर्बत बंटवाना चाहते थे। कानपुर भर में केवल १८ मन शक्कर मिली।

१. शेख़ ग़ुलाम हैदर सग़ीर शायर थे। बादशाह के मुसाहब थे। कलकत्ता में भी उनके साथ थे।

अध्याय ५

अवध का पतन

कम्पनी सरकार ने बादशाह के स्वागत-सत्कार के सम्बंध में जो वादे किये थे, सब झूठे निकले। बादशाह को हर जगह अपने ठहरने का प्रबंध करना पड़ा। लखनऊ के ऐश्वर्य के बाद ब्रैंडन सौदागर की कोठी में उन्हें कष्ट होना स्वाभाविक ही था। सबसे बड़ी तकलीफ़ उन्हें यह थी कि अंग्रेज़ी ढंग के पॉलिश किये हुए फ़र्श पर चलने का अभ्यास नहीं था, न बेगमों को, इसलिए बारबार डर लगा रहता था कि अब गिरे और तब गिरे। जो हो, कानपुर में रुककर आगे की यात्रा का सब प्रबंध करना था। इसलिए ४ मार्च से ६ अप्रैल तक वहाँ रुके रहे और ७ अप्रैल को बादशाह प्रयाग के लिए रवाना हुए। इलाहाबाद के मैजिस्ट्रेट ने ठहरने का भी प्रबंध नहीं किया था। वहां होटल में ठहरे और उसके मालिक ने २४०० रुपया किराया मांगा। बातचीत तूल पकड़ गयी तो उसने बदतमीज़ी से सवारी रोकने के लिए सड़क पर रस्सी बाँध दी। उसे मुंहमांगा किराया देकर आगे बढ़ना पड़ा। यह था "हमारे मित्र" बादशाह का सम्मान?

काशी में सत्कार

१६ अप्रैल को बनारस पहुंचे। काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह का निमंत्रण आ चुका था। सिकरोल मुहल्ले में महाराजा की नंदेसर की कोठी में उनके ठहरने का इन्तज़ाम था। कोठी में खसखाने वग़ैरह भी बनाये गये थे ताकि बादशाह को गर्मी में ज़रा भी कष्ट न हो। राजा मय अपने भाई व कर्मचारियों के, सफ़ेद पोशाक में नवाब मुनवरुद्दौला के पास आये और वहां से बादशाह के पास गये। बादशाह को ७००० रुपया नज़राना व ५०० रुपया ख़ैरात के लिए भेंट किया। मलका किश्वर को १०१ अशर्फ़ियां तथा कई किश्ती बनारसी माल की भेंट करायी। मुनवरुद्दौला को शिकार खेलने चकिया लिवा ले गये। उन्हें भी एक घोड़ी भेंट की गयी। सारांश यह कि काशी नरेश ने बड़े सौजन्य के साथ बादशाह का वैसा ही स्वागत किया जैसा कि एक नरेश अपने सम्राट् का करता

है।[१] वे सम्राट् के सम्मान में एक बड़ा भोज करना चाहते थे पर बादशाह ने मना कर दिया। मेजर बर्ड[२] कलकत्ता से वापस आ गये और वहीं काशी में बादशाह से मिले। एकान्त में घंटों तक उनसे बातें करते रहे।

२५ अप्रैल को बादशाह "मैकलॉयड" स्टीमर से गंगा नदी के मार्ग से कलकत्ता के लिए रवाना हुए और उनके साथ ११० व्यक्ति स्टीमर पर थे।[३] दूसरे दिन मलका किश्वर व नवाब ख़ास महल वग़ैरहः डाक गाड़ी से रवाना हुईं। ६ मई को मलका रानीगंज पहुंचीं और वहां से ८ घंटे ट्रेन की यात्रा कर कलकत्ता के बेलगाछिया (बाग़ कटरा राजा वर्दबान) पहुंचीं और वहां पर पहले ५०० रुपया माहवार पर एक कोठी ली। फिर एक कोठी शहर से छः मील दूर २००० रुपया माहवार पर गार्डनरीच—मटियाबुर्ज (मोचीटोला में) महाराजा बर्दबान की कोठी किराये पर ली गयी। मौलवी मसीहुद्दीन सब प्रबंध कर रहे थे। १३ मई, १८५६ को बादशाह अपनी कोठी में दाखिल हुए। स्टीमर की यात्रा में उनको इतना कष्ट हुआ कि उन्होंने लंदन जाने का विचार ही छोड़ दिया। उनको समुद्र यात्रा की हिम्मत न पड़ी। बादशाह के दल के कुछ लोग बनारस से वापस चले गये थे। कुछ कलकत्ता से वापस लौट गये जिनमें मिर्ज़ा अमजदअली, साहबज़ादे हकीम मीर मुहम्मद तथा मीरअली प्रमुख थे। बादशाह के कलकत्ता पहुंचने के दूसरे दिन कम्पनी सरकार ने तोपों की सलामी दी।

इन्हीं दिनों कम्पनी के लन्दन के दफ़्तर में पार्लमेन्ट के लिए अवध का हिसाब तैयार किया गया। उनके हिसाब से सन् १८०१ से १८५५ तक कम्पनी ने अवध सरकार से कुल ४ करोड़ ७३ लाख रुपया क़र्ज़ लिया था, जिसमें से १ करोड़ रुपये का भुगतान नैपाल की सरहद का इलाक़ा देकर हो गया था; १,९३,८३,७६५ रुपया नक़द वापस किया गया था; १,८०,०७,२३५ रुपया क़र्ज़ बाक़ी रह गया था जो अवध का राज्य ज़ब्त हो जाने के कारण अब देना नहीं रहा।[४] जो नक़द

१. काशी नरेश ने बादशाह का बड़ा सुन्दर स्वागत किया। सड़क पर केवड़ा व गुलाबजल छिड़का गया था। शाह की सवारी के साथ काशी नरेश पैदल चले। २. बादशाह ने मेजर बर्ड को अपना वकील मुक़र्रर कर लिया था। उनसे लन्दन के काम तक १,५०,००० रुपये का ठीका था। इस रक़म में से सरकारी रसूम के नाम पर २०,००० रुपया नवाब ख़ासमहल ने काट लिया था। ३. कुछ का लिखना है कि १४० व्यक्ति स्टीमर पर थे। चार-पांच बेगमें भी थीं। ४. सलातीने अवध, अध्याय ६९।

रक़म की वापसी दिखलायी गयी थी उसमें से वास्तव में एक पाई भी नक़द नहीं मिला था। रेसिडेन्ट ने सेना ख़र्च आदि की मदों में इधर-उधर हिसाव वना कर जोड़ लिया था।

परिवार में मतभेद

कलकत्ता आकर अवध परिवार के आपसी मतभेद फिर उभड़ पड़े। नवाब ख़ास महल ने बादशाह से हिसाब-किताव, ख़र्च आदि सब अपने ज़िम्मे ले लिया था। ख़र्च के मामले में ही उनकी अपने देवर जेनरल सिकन्दर हश्मत से पटरी न बैठी। मल्का किश्वर व नवाव ख़ास महल में इतना मतभेद हुआ कि बोलचाल वन्द हो गयी। उधर लन्दन जाने की तैयारी होने लगी। नवाब ख़ास महल ने वली अहद को जाने की इजाज़त न दी पर बादशाह ने इज़ाज़त दी।[1] मलका किश्वर, जेनरल हश्मत, वली अहद तथा मौलवी मसीहुद्दीन (सरकारी वकील) ७०० रुपये माहवार पर, मुंशी मीर मुहम्मद रफ़ी ३०० रुपये माहवार पर, नमाज़ पढ़ाने के लिए हाजी मुहम्मद अली २०० रुपये माहवार पर, कुल मिलाकर १२० व्यक्ति साथ चले। यात्रा के प्रबंधक मि० ब्रैंडन बनाये गये। उनको "जलीसुद्दौला" का ख़िताब मिला और वली अहद के मुसाहब मुक़र्रर हुए। उन्हें १०,००,००० रुपया मार्ग-व्यय दिया गया। मलका विक्टोरिया के लिए बादशाह की ओर से भेंट देने के लिए ३०,००० रुपया नक़द ख़र्च कर और घर से एक हार अलमाश यानी जवाहिरों का, एक हार याकूत व जमुर्रद का, एक कंघी जवाहिरातों की, मोती की माला, हर क़िस्म की अंगूठियां व पोशाक वग़ैरह तैयार हुआ। "बंगाल" नामक जहाज़ से यात्रा निश्चित हुई। प्रथम श्रेणी का किराया, मय भोजन के १२६० रुपया, द्वितीय श्रेणी का ४०० रुपया तय हुआ। बादशाह मुनवरुद्दौला को भेजना चाहते थे पर वे जाना नहीं चाहते थे। गोटी निकाली गयी जो उनके न जाने के पक्ष में आयी। वे नहीं गये पर मलका के रवाना होने के बाद नवाब ख़ास महल से उनकी पटरी न वैठी और २७ सितम्बर, १८५६ को लखनऊ वापस पहुंच गये।

अस्तु, बादशाह ने इस भय से कि कहीं गवर्नर जेनरल यह यात्रा रोक न दें, गवर्नर जेनरल को सूचना भी नहीं दी। १६ जून, १८५६ को जब मलका का जहाज़

१. लोगों ने नवाब मुर्शिदाबाद की मिसाल देकर भड़का दिया था कि लन्दन गये, फिर वापस न आये; मां ने भी बुला भेजा पर नाहीं कर दी।

रवाना हो गया तो उन्हें इत्तला मिली। उन्होंने इस सूचना के न मिलने की बादशाह से शिकायत भी की। मलका रात को १२ बजे रवाना हुईं। जाने के समय महल में बड़ा कुहराम मचा। मलका और नवाब ख़ासमहल में बोलचाल बन्द थी। वे स्वयं अपनी बहू से मिलने गयीं और फिर तो दोनों एक दूसरे के गले से चिपट कर ख़ूब रोयीं। बादशाह ने भी नेत्रों में आंसू भर कर "ख़ुदा हाफ़िज़" कहकर बिदा किया। वे बरामदे में खड़े रो रहे थे।

डलहौज़ी का स्वागत

१४ मई, १८५७ को लार्ड डलहौजी लन्दन पहुंचे। डलहौजी ने अपने शासन-काल में भारत में बड़ा काम किया था। कम्पनी सरकार को डेढ़ करोड़ रुपये साल की आमदनी का पंजाब का सूबा, सत्ताईस लाख रुपया साल का पेगू का इलाक़ा यानी बर्मा, इकतालीस लाख का नागपुर का राज्य यानी आधा मध्यप्रदेश; १,४५,००,००० का अवध यानी हैदराबाद वग़ैरह मिलाकर ४ करोड़ रुपये की आमदनी बढ़ा दी थी। कम्पनी सरकार की सालाना आमदनी २६ करोड़ वार्षिक से बढ़कर ३० करोड़ रुपया वार्षिक कर दी थी।

उन्होंने शासन-सुधार के भी कार्य किये थे। सन् १८५३ में कलकत्ता में पहला तार घर बना। ब्रिटिश हुकूमत में हर सूबे में ३० से ५० मील तक तार लगे। १८५५ की पहली फ़रवरी तक पूरा ब्रिटिश क्षेत्र तार देने के योग्य हो गया। अप्रैल, १८५४ में गंगा के ऊपरी भाग की नहर[1] खोदनी शुरू हुई। डलहौजी के शासनकाल में पंजाब में ४६५ मील लम्बी नहर खोदी गयी। उन्हीं के शासनकाल में रेलवे लाइनें बिछीं और थोड़ी दूर तक रेलगाड़ियां चलने लगीं। इसलिए जब वे लन्दन पहुंचे तो कम्पनी के बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स ने उनके स्वागत में विशेष भोज दिया। बोर्ड के चैयरमैन लेफ्टेनेन्ट कर्नल जैक्सन ने उनकी बड़ी तारीफ़ की। लार्ड डलहौज़ी ने बादशाह अवध की काफ़ी निन्दा की। लार्ड साहब को ५०,००० रुपया साल कम्पनी की ओर से पेंशन देना तय हुआ।

२९ जुलाई, १८५६ का कई स्टीमर व बजरे गोमती नदी के मार्ग से बादशाह का सामान लेकर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। अंग्रेज़ों ने रास्ते में तलाशी ली। जब यह काफ़िला कलकत्ता पहुंचा तो वहां पर ५००० रुपया घूस देकर तब सामान

१. Upper Ganges Canal.

उतर पाया। कम्पनी ने हज़रत अब्बास की दरगाह (लखनऊ) का चांदी-सोने का सामान ज़ब्त करना चाहा पर किसी प्रकार बचा रह गया।

मलका किश्वर की विदेश यात्रा

"सग़ीर" ने मलका की यात्रा के निश्चय के सम्बन्ध में (बादशाह के कलकत्ता पहुंचने से लेकर और यात्रा के निश्चय के सम्बंध में) नीचे लिखी पंक्तियां लिखी हैं :—

किया बाग़ में शाह ने जब क़याम।
हुई हद्दे सहरानावर्दी[1] तमाम॥
पये मुल्क तदबीर होने लगी।
हरेक सिम्त तहरीर होने लगी॥
चिरागे रहे अक़्ल रौशन किया।
पये कामे दिल अज़्में लन्दन किया॥[2]

× × ×

अब आगे इरादा न हज़रत करें।[3]
वली अहद वो मां को रुख़सत करें॥
जो होना है मतलब तो हो जायगा।
हुमा दामे इक़बाल में आयेगा॥

१९ जून, १८५६ को जहाज़ ने गार्डन रीच से लंगर उठाया। मिस्र तक का पूरी पार्टी का किराया ७,००० रुपये में तय हुआ था। मलका के साथ ५०० संदूक़ों में सामान और १० लाख रुपया नक़द था। उस वक़्त तक स्वेज़ नहर नहीं बनी थी। मिस्र में स्वेज़ के किनारे उतर कर ३० कोस सिकन्दरिया तक पृथ्वी के मार्ग से यात्रा करनी पड़ती थी। मिस्र में जहाज़ से उतरते समय जवाहरात का एक बक्स जिसमें २०-३० अदद ज़ेवरात, मालियत एक करोड़ रुपये की थी, कहीं गुम हो गया। गोताख़ोरों ने पानी में ख़ूब तलाश किया पर पता न चला। स्वेज़ के "पञ्चघर" (होटल) में ठहरे। पचास रुपया रोज़ किराया था। अंग्रेज़ों के डर के मारे मिस्र के बादशाह ने मलका के दल से भेंट करना ही अस्वीकार नहीं कर दिया

१. जंगल जंगल भटकना। २. लन्दन जाने का इरादा। ३. लोगों ने बादशाह को मना किया।

वल्कि उनके स्वागत-सत्कार का भी कोई प्रबंध नहीं किया। ब्रिटिश रेसिडेन्ट भी उनसे नहीं मिला। मिस्र में दस दिन क़याम रहा।

२७ जून को जहाज़ लंका पहुंचा था। वहां उसी कम्पनी का दूसरा जहाज़ मिला। सामान उतार कर दूसरे जहाज़ पर आना पड़ा। १२ जुलाई को अदन पहुंचे। सिकन्दरिया में फिर दूसरा जहाज़ "इन्डस" मिला और उससे यात्रा शुरू हुई। भूमध्य सागर में भयंकर तूफ़ान आदि से मलका के वृद्ध शरीर तथा वली अहद के कोमल शरीर को बड़ा कष्ट हुआ। मार्ग में ही, १६ अगस्त, १८५६ को मुंशी मीर रफ़ी जिब्राल्टर में ही मर गये। २० अगस्त १८५६ को जहाज़ इंगलैण्ड के सौथैम्पटन बन्दर पर पहुंचा। वहां पर मेजर बर्ड ने मलका के स्वागत की वड़ी तैयारियां कर रखी थीं। वन्दरगाह में कालीनें बिछा दी गयीं। दोनों ओर कनातें लगी थीं। मलका अपने ज़नानख़ाने के साथ पर्दे में उतरीं। यह तमाशा देखने के लिए बड़ी भीड़ लग गयी थी। इस भीड़ का फ़ायदा उठाकर मेजर बर्ड ने एक ओजस्वी व्याख्यान द्वारा बादशाह के साथ अन्याय का वर्णन किया। उन्होंने भीड़ से पूछा—"क्या तुम यह पसन्द करोगे कि तुम्हारे नगर पर किसी दूसरे का क़ब्ज़ा हो जाय।" जनता चिल्ला उठी "कदापि नहीं।" उस समय तो भीड़ की उत्तेजना से ऐसा प्रकट होता था कि ब्रिटिश जनसमूह की पूरी सहानुभूति वाजिद-अली शाह के साथ है।[१]

मलका ३० अगस्त को ट्रेन से लन्दन के लिए रवाना हुईं। सौथैम्पटन में वे रायल पार्क होटल में ठहरी थीं। १२,००० रुपया किराया देना पड़ा था। इस नगर में उनसे मिलने बड़े-बड़े लार्ड आये थे, जो जेनरल हश्मत से मिले। तीसरे पहर ३ बजे, २० अगस्त को, उनके आने के एक घंटे के बाद ३० वड़ी सम्भ्रान्त महिलाएं मलका से मिलने आयीं। सब प्रबंध मि० ब्रैंडन देख रहे थे। वे इस यात्रा में साथ-साथ आये थे। मेजर बर्ड पहले से पहुंच गये थे।

लंदन में ५००० रुपये मासिक पर हार्ली हाउस किराये पर लिया गया था। ३१ अगस्त को यह दल लन्दन पहुंचा। यहां ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई पूछने वाला भी नहीं था। मलका की सहायता के लिए लन्दन निवासी मुसलिम वकील तथा व्यापारी उपस्थित हुए। उनमें सूरत के मीर जाफ़र अली, मद्रास के मुंशी हैदरजंग, नागपुर के मौलाना ग़ुलाम ख़ां वकील आदि उल्लेखनीय हैं। लन्दन में बादशाह

१. बर्ड की स्पीच रायल पार्क होटल के बरामदे से हुई थी।

की ओर से फर्ज़न्दअली, हार्मुसजी पारसी आदि भी भेजे गये। यहीं पर मलका को कम्पनी द्वारा तैयार की गयी बादशाह के विरुद्ध अभियोग पुस्तिका यानी ब्लू बुक[1] दी गयी। उन्होंने उसे कलकत्ता भेजा। बादशाह ने उसका उत्तर छपवाकर ३०० प्रतियां तथा ४ लाख रुपया और मलका के पास भेजा। बादशाह ने महारानी विक्टोरिया तथा कम्पनी के नाम पत्र भी भेजा।

मेजर बर्ड ने कम्पनी के डायरेक्टरों के यहां दौड़-धूप शुरू की। यहीं पता चला कि कर्नल स्लीमन ने बादशाह के विरुद्ध एक सौ से अधिक पत्र लन्दन भेजे थे और एक पत्र में यह प्रस्ताव किया था कि बादशाह को ५ लाख रुपया सालाना पेंशन व लखनऊ की जागीर दे दी जाय। लखनऊ शहर उनके पास रहने दिया जाय। अस्तु, १६ जनवरी १८५७ को जेनरल हश्मत व वली अहद—जो देखने में बहुत सुन्दर और १८ वर्ष के युवक मालूम होते थे—कम्पनी के डायरेक्टरों से मिलने गये। २१ जनवरी, १८५७ को बोर्ड के डायरेक्टरान जेनरल हश्मत तथा वली अहद से मिलने हार्ली हाउस आये। ११ अक्टूबर, १८५७ को ही १ बजे दिन में जेनरल हश्मत तथा वली अहद ८ गाड़ियों में अपने दरबारियों के साथ सिडेनहेम भवन में मलका विक्टोरिया से मिलने गये थे। उनके साथ रामपुर के नवाब मेंहदी अली ख़ां भी थे।[2] विक्टोरिया हर आठवें दिन लन्दन में दरबार करती थीं। मलका किश्वर से उनकी भेंट एक ख़ास ज़नाना दरबार करके ४ जुलाई, १८५७ को पौने ९ बजे सुबह हुई। किसी बाहर से आने वाले के लिए ब्रिटिश सम्राट के लिए उन्नीसवीं सदी का यह अंतिम विशेष दरबार था। इसके बाद महात्मा गांधी से भेंट करने के लिए १९३२ में जार्ज पञ्चम ने विशेष दरबार किया था।

विक्टोरिया के दरबार में ८ महिलाएं हिन्दुस्तानी ज़बान से वाक़िफ़ थीं। मलका ने विक्टोरिया को भेंट भेंट की। विक्टोरिया उनसे केवल समुद्र की यात्रा तथा बाल-बच्चों का हाल पूछती रहीं। राजकुमार एडवर्ड को बुलाकर मल्का के सामने पेश किया गया। उस समय एडवर्ड १३ वर्ष के थे। किश्वर ने उन्हें गोद में बिठा लिया। प्यार से चूमा और अपने गले का क़ीमती हार उतार कर पहना दिया। कोई ख़ास बात नहीं हुई। विक्टोरिया ने कहा कि ८ दिन बाद मिलकर विस्तार से बातें करेंगे। भेंट के तीसरे दिन जेनरल हश्मत तथा वली अहद और मौलवी

१. Oude Blue Book.

२. **इनको लन्दन में ही किसी ने ज़हर दे दिया था, पर बच गये।**

मसीहुद्दीन को विक्टोरिया ने दोपहर के भोजन पर बुलाया। किन्तु यह सब कोरा शिष्टाचार था। कुछ लाभ होता नज़र नहीं आ रहा था। मेजर बर्ड भी पैरवी करते-करते थक गये थे। मि० ब्रैंडन भी बादशाह से काफ़ी कमा चुके थे। वे भी थक कर बैठ रहे। मसीहुद्दीन इकेले-से पड़ गये। पर वे काफ़ी दौड़धूप कर रहे थे और बादशाह को पूरी रिपोर्ट बराबर भेजते जाते थे।

अवध के दरबार का भीतरी षड्यंत्र यहां भी न छूटा। आपस में फूट पड़ गयी। जलीसुद्दौला (ब्रैंडन) काम से हटा दिये गये। मसीहुद्दीन लन्दन में ९० रुपया माहवार पर एक कमरा लेकर अलग रहने लगे। हाजी तवक्कुल ख्वाजासरा कलकत्ता वापस आ गये। विक्टोरिया से आठ दिन बाद मिलने की बात थी पर उन्हीं दिनों भारत में ५७ की क्रान्ति का समाचार लन्दन पहुंचा। कानपुर में अंग्रेज़ों के क़त्ल की सूचना पहुंची। ब्रिटिश जनता उत्तेजित हो उठी। लन्दन की सड़कों पर हिन्दुस्तानियों का चलना ख़तरे से ख़ाली न रहा। उनको खुलेआम घूमने की मनाही कर दी गयी।

इधर और भी भयंकर समाचार भारत से आये। बादशाह फ़ोर्ट विलियम में क़ैद हो गये। राजमाता किश्वर पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। एक तो उनका स्वास्थ्य यों ही लन्दन में ख़राब रहता था। उनको मासिक धर्म (इस्तहादा) का रोग भी था। लन्दन रहना बेकार समझ कर वे फ्रांस, मिस्र आदि के मार्ग से स्वदेश के लिये रवाना हो गयीं। मौलवी मसीहुद्दीन अपने काम में डटे रहे। बादशाह की गिरफ़्तारी का समाचार पाकर वे २३ अगस्त, १८५७ को ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों के यहां भागे गये। "इंडिया हाउस" पहुंच कर उन्होंने बादशाह की ओर से काफ़ी वकालत की। अन्त में वहां से कलकत्ता आदेश भेजा गया कि बादशाह को खुली जगह में तथा शिथिल बंधन में रखो। मसीहुद्दीन की सफलता का एक और कारण था। इन्हीं दिनों ब्रिटेन की सरकार बदल गयी। अनुदार दल के स्थान पर उदार यानी नर्म दल, लिबरल पार्टी का मंत्रिमंडल बना। लार्ड स्टैनली भारत-सचिव बनाये गये। उन्होंने भारत के प्रति नर्म नीति अपनाने की घोषणा की।

मलका किश्वर की मृत्यु

२१ जनवरी, १८५८ को १ बजे दिन में मलका किश्वर लन्दन से पेरिस के लिए रवाना हुईं। जिन दिनों मलका लन्दन पहुंची थीं, मुहर्रम था। पर, लन्दन में मुहर्रम क्या होता। घर में भी मुहर्रम इसी बात पर मच गया था कि वे पहुँचते

ही पहले कम्पनी को ख़त भेजना चाहती थीं पर कुछ लोग मलका विक्टोरिया से ही सम्बंध स्थापित करने पर ज़ोर दे रहे थे। ख़र्च का यह हाल था कि किसी का हाथ रुकता ही नहीं था। जो रुपया साथ आया था, बाद में भी आया, वह सब उड़ गया। एक दिन यहां तक नौबत आयी कि मलका को अपना क़ीमती हार दो लाख रुपयों में बेचकर खर्च पूरा करना पड़ा। मलका के साथ ५० व्यक्ति, जिनमें १८ औरतें थीं, पेरिस आये।

पेरिस पहुंचते-पहुंचते मलका की हालत ख़राब हो गयी। जमादी उस्सानी १२७३ हिजरी,[1] २४ जनवरी, १८५८ को १ बजे दिन में, नर्स पीपी की गोद में, ५४ वर्ष की उम्र में, मलका ने दम तोड़ दिया। भारत से रवाना होने के ठीक ८ माह बाद वे मरी थीं। पर्दे में ही दफ़न हुईं, उस स्थान पर पेरिस की सरकार ने मस्जिद बनवा दी है। मलका को सरकारी तौर पर, सैनिक सम्मान के साथ दफ़नाया गया था। ऐसा ही आदर जेनरल हश्मत को भी प्राप्त हुआ था।

जेनरल की मृत्यु

माता तथा दादी की मृत्यु का समाचार जब जेनरल हश्मत तथा वली अहद को (उम्र १७ वर्ष) लन्दन में मिला तो दोनों भागे हुए पेरिस आये। वली अहद तो अपना दु:ख अपने बचपन के कारण भूल गये। पर जेनरल हश्मत को बड़ा सदमा पहुंचा। वे शोक से बहुत उद्विग्न हो उठे। उन्हें भगंदर का रोग था। नासूर हो गया था, जब बहता रहता था तो आराम मिलता था। उनकी हालत ज्यादा ख़राब हो गयी। मां के मरने के बाद एक महीना बीतते-बीतते वे भी संसार से चल बसे। लन्दन में उनकी मृत्यु हुई। २ मार्च, १८५८ को मौलवी मसीहुद्दीन ने हरेक को जनाज़ा में शरीक़ होने का निमंत्रण भेजा। मुर्दा पेरिस आया और जेनरल हश्मत अपनी मां के बगल में दफ़न हुए। मसीहुद्दीन ने मलका व जेनरल का सब सामान अपने क़ब्ज़े में कर लिया। लंदन में इसी बात पर मौलवी साहब के ख़िलाफ़ वली-अहद के मुसाहिबों ने नालिश कर दी। अदालत ने जेनरल के पास का ३०,०००रु०

१. जिस दिन हज़रत पैग़म्बर साहब मक्का से मदीना गये, हिजरी सन् शुरू हुआ। ईसा मसीह पैगम्बर साहब से ६५० साल पहले पैदा हुए थे। अकबर बादशाह ने लगान का बंदोबस्त कराकर आषाढ़ कृ० १ से फ़सली सम्वत् शुरू किया था।

नक़द व सब सामान वलीअहद को दिला दिया। तब तक बादशाह का हुक्म प्राप्त हो गया कि दोनों स्वर्गीय का सब सामान मसीहुद्दीन के अधिकार में रहे। फिर भी वली अहद ने "एक ताज मुरस्सा, तलवार विलायती और चचा का मोती का लबादा अपने पास रख लिया।" शेष सामान मसीहुद्दीन ने भारत रवाना कर दिया।

वली अहद भारत को

वली अहद का मौलवी मसीहुद्दीन से दादी तथा चचा की सम्पत्ति पर झगड़ा हो ही चुका था। मसीहुद्दीन की तबीयत भी उचट गयी थी। जब से उन्होंने लन्दन में यह सुना कि लन्दन यात्रा की विफलता से घबड़ाकर, अपने ख़र्च से तंग आकर, पास का रुपया समाप्त हो जाने के कारण बादशाह वाजिदअली ने कम्पनी सरकार से १२ लाख रुपया साल पेंशन लेना स्वीकार कर लिया है—तो मसीहुद्दीन का सब हौसला पस्त हो गया। अब उनका लन्दन में रहना जरूरी नहीं था। पर वे राजकुमार को अकेला छोड़ भी नहीं सकते थे। वली अहद को उनके नौकर-चाकर काफ़ी लूट रहे थे। यों, लड़का बड़ा होनहार तथा सच्चरित्र था। उसने लन्दन प्रवास में अपने चरित्र पर आंच नहीं आने दी। वली अहद ने वहां के प्रवास में सुअर के मांस से बचने के लिए किसी प्रकार का मांस नहीं खाया था। परिश्रम करके अंग्रेजी भाषा में भी अच्छा अभ्यास प्राप्त कर लिया था। उन्होंने लन्दन छोड़ने का निश्चय किया। भारत के लिये रवाना हो गये पर बादशाह का पत्र आया कि अभी देश की हालत ठीक नहीं है, कुछ दिन मिस्र में रुके रहो। नवाब मेंहदीअली कर्बला चले गये। कुछ दिन मिस्र में रहकर वलीअहद, तथा मसीहुद्दीन आदि २९ सितम्बर, १८५९ को कलकत्ता पहुंचे। बन्दरगाह पर कलकत्ता की जनता उनके स्वागत में उमड़ पड़ी थी।[1] बहुतों ने बन्दरगाह पर ही नजरें भेंट कीं। घर आये तो बादशाह नवाब ख़ास महल के पास बैठे हुए मिले। पिता-माता से एक ही स्थान पर भेंट हुई।

१. मिर्जा जायर लिखते हैं कि "सही गये सलामत आये। मसीहत मेजदी में किसी को दख़ल नहीं है।" जायर यह भी लिखते हैं कि "लखनऊ से सबसे पहले लन्दन जाने वाले मीर हसन अली थे।. . .लन्दन की यात्रा एक महीने की रह गयी थी. . .राजा राममोहन राय १२ जुबानें जानते थे। मुहम्मद अकबरशाह के वकील बनकर लन्दन गये थे। फ्रांस में मर गये।"

वली अहद वास्तव में बड़े होनहार नवयुवक थे। उनमें काम करने का बड़ा उत्साह था। पर कुछ कमज़ोरियां भी थीं। मसीहुद्दीन से लन्दन में ही मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत की सम्पत्ति के बारे में विरोध हो गया था। उन्हें यह भी विदित था कि अंग्रेज़ मौलवी साहब के विरोधी हैं अतएव कलकत्ता आकर उन्होंने मौलवी मसीहुद्दीन को लखनऊ वापस करा दिया। कुछ दिनों बाद मौलवी साहब भी मर गये। उनके स्थान पर अकबर ख़ां शीराजी मुख़्तार-आम नियुक्त हुए।

जब वली अहद को यह पता चला कि बादशाह को अंग्रेज़ १२ लाख रुपया ही पेंशन देते हैं तथा पहले के पन्द्रह लाख रुपया देने के वादे से मुकर गये हैं तो वे बड़े नाराज़ हुए। उन्होंने तय किया कि दुबारा लन्दन जाकर ब्रिटिश सरकार पर १५ करोड़ रुपये का दावा करेंगे जिसका वार्षिक सूद ही ६ लाख रुपया साल होता है। पर, लन्दन से वापस आने के कुछ ही महीने बाद इस होनहार सच्चरित्र नवयुवक का देहान्त हो गया।

बादशाह बिरजीस क़दर

बादशाह वाजिदअली शाह का कलकत्ता का समाचार देने के पूर्व यही उचित होगा कि उनके दूसरे उत्तराधिकारी बिरजीस क़दर का वर्णन कर दिया जाय। बिरजीस क़दर[1] अवध परिवार के दर्जनों राजकुमारों की तरह से इतिहास के लिए अनजान बने रहते यदि सन् ५७ की क्रान्ति ने उन्हें अनायास प्रमुख स्थान पर न बिठा दिया होता। क्रान्ति तथा उसके कारणों पर प्रकाश डालना हमारा विषय नहीं है। यह इतना बड़ा विषय है कि इस पुस्तक का उससे पूरा सम्बन्ध होते हुए भी हम उसे बचा जाना चाहते हैं। सन् ५७ की क्रान्ति के अनेक कारणों में से वाजिदअली शाह का गद्दी से हटाया जाना भी था। अवध की प्रजा विदेशी शासन नहीं चाहती थी और शासन भी कैसा जिसने आते ही भूख, बेकारी, दुराचार तथा हत्या, डकैती आदि में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी हो। यों तो क्रान्ति का श्री गणेश २९ मार्च, १८५७ में बारकपुर में मंगल पांडे के विद्रोह से समझा जाता है पर वास्तव में अवध ने इसकी शुरूआत की। १४ फ़रवरी, १८५७ को फ़ज्लअली ने तुलसीपुर (गोंडा) में कम्पनी सरकार की सम्पत्ति लूटी, कर्मचारियों को मारा और नैपाल भाग गये। विद्रोह की आग धधकती रही। ३० मई की रात को लखनऊ में तोप छूटी और ७१

१. इनका पूरा नाम था मुहम्मद रमजान अली बिरजीस क़दर।

नम्बर की पल्टन ने बग़ावत शुरू की।[1] लखनऊ में वास्तव में क्रान्ति २७ जून को शुरू हुई। २९ जून को चिनहट पर हमला हुआ। अंग्रेज़ बेली गारद व किला मच्छी भवन भागे। क्रान्तिकारियों ने यह क़िला ही उड़ा दिया। पहले बादशाह की पुरानी अख्तरी और नादरी पल्टनें बग़ावत में उतरीं। ९ जून तक फ़ैज़ाबाद आज़ाद हो गया था। ३१ मई को बरेली में क्रान्ति शुरू हुई थी। उसी दिन मुरादाबाद में भी क्रान्ति की आग लगी। मेरठ पर १० मई को ही क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था। २८ जून को कानपुर आज़ाद हुआ।

लखनऊ के भाग्य का निर्णय १६ नवम्बर, १८५७ को ही हो गया था। सिकन्दर बाग़ की लड़ाई में कम्पनी की सेना विजयी हुई। पर उसके सेनापति हैवलाक लड़ाई में मारे गये। लखनऊ के स्वाधीनता-प्रेमी सिकन्दरबाग़ की पराजय से हताश नहीं हुए। १५ जनवरी, १८५८ तक वे बराबर लड़ते रहे। पर, १७ मार्च, १८५८ को बादशाह बिरजीस क़दर अपनी माता हज़रत महल तथा मुग़ल शहज़ादा फ़ीरोज़शाह के साथ लखनऊ से भाग निकले। बेगम हज़रत महल भागते समय अपने साथ पीनस में रखकर चार तोड़े अशर्फ़ियां यानी १०,००० अशर्फ़ियां और क़ीमती जवाहरात ले गयीं। लखनऊ की स्वाधीनता का दीपक वास्तव में १७ मार्च, १८५८ को बुझा।

क्रान्ति का श्रीगणेश होते ही लखनऊ के ताल्लुक़ेदारों में मलीहाबाद के जमींदार लोग, राजा गुरुसहाय, राजा चण्डीसहाय, फ़ैज़ाबाद के अहमदशाह[2], राजा जयलाल, मम्मू खां, क़ासिम ख़ां आदि अगुआ बने। मलीहाबाद में कम्पनी की सेना को हार खानी पड़ी। ३० जून, १८५७ को चिनहट में विजय के बाद विद्रोही सेना ने लखनऊ शहर पर अधिकार कर लिया। विद्रोहियों के नेता राजा ग़ालिब-जंग के पुत्र राजा जयलालसिंह, मम्मू ख़ां इत्यादि ने यह निश्चय किया कि बिना राज्य का प्रधान निर्वाचित किये क्रान्ति का संचालन ठीक से न हो सकेगा। घुड़-सवार सेना ने नवाब सआदत अली ख़ां की सन्तान, मल्का गेती के बेटे रुक्नुद्दौला नवाब मुहम्मद हसन ख़ां से अनुरोध किया। वे डरकर भाग गये और बेली गारद में छिप गये। बादशाह के सौतेले भाई नवाब मिर्ज़ा रज़ाअली दारा सितवत ने भी अस्वीकार कर दिया। तब राजा जयलाल ने वली अहद के बड़े भाई मिर्ज़ा

१. सन सत्तावन की क्रान्ति—प्रकाशक हिन्दी भवन, कालपी—लेखक—परिपूर्णानन्द। २. मौलवी अहमदुल्लाशाह।

नौशेरखां क़दर की तलाश की और आलमआरा बेगम की ड्यौढ़ी पर आवाज़ लगायी। दारोगा ड्यौढ़ी ने जवाब दिया कि मौजूद हैं, लेकिन पागल हैं इसीलिए वली अहद नहीं बनाये गये।

तब मम्मू ख़ां तथा पैदल सेना की बात मानकर लोग बादशाह की बेगम हज़रत महल के पास गये और उनसे अनुरोध किया कि बादशाह की संतान नवाब बिरजीस क़दर को गद्दी पर बैठने की अनुमति दें। बिरजीस क़दर बड़ा सुन्दर, प्यारा, ११ वर्ष का आकर्षक बच्चा था। बेगम के लिए यह कठिन समस्या थी कि क्या करें। उन्हें कई बेगमों ने मना भी किया, कई बेगमें द्वेष से जली-भुनी बैठ रहीं।

५ जुलाई, १८५७ को, सायंकाल, जब मूसलाधार वर्षा हो रही थी, बिरजीस-क़दर का राज्याभिषेक हुआ। लाल बारादरी (मौजूदा मुर्दा अजायबघर) में बिरजीस क़दर आकर नवाब वज़ीर सआदतअली ख़ां की गद्दी पर बैठे। बेगम ने दरबारियों को एक-एक दोशाला व रूमाल इनाम दिया। राय जगन्नाथ उर्फ़ सर्फुद्दौला बाग़ियों से मिल गये थे। उन्होंने बादशाह को पहले भेंट दी। फिर और दरबारियों ने भेंटें दीं। अली रजा ख़ां पुनः कोतवाल मुक़र्रर हुए। शर्फ़ुद्दौला वज़ीर या नायब नियुक्त हुए। बादशाह वाजिदअली शाह के फूफा हिसामुद्दौला "जेनरल" बनाये गये। मम्मू ख़ां दीवानखाने के प्रधान यानी दारोग़ा महल बनाये गये। राजा जयलालसिंह लगान वसूली के प्रधान यानी "कलक्टर" बने। मक़दूमबख्श, घमण्डी सिंह, औसानसिंह, रघुनाथसिंह, मिश्रीसिंह, राजमन तिवारी, गजाधरसिंह, वाहिदअली, शहाब्दी ख़ां आदि ख़ास दरबारी नियुक्त हुए। ७ जुलाई को शहर में ढिंढोरा पिट गया कि सब पुराने सिपाही अपने पद पर बहाल किये जाते हैं।

वादशाह बिरजीस क़दर का दरबार चण्डीवाला बारादरी में नियमित रूप से होने लगा। इसके अलावा तारा कोठी में सप्ताह में तीन बार दरबार होता था, पर जब क्रान्तिकारी नेता फ़ैज़ाबाद के अहमदुल्लाशाह तथा मम्मू ख़ां में मतभेद हो गया तो अधिकांश दरबारी नगीनावाला बारादरी में मम्मू ख़ां तथा शर्फुद्दौला के पास जमा होते थे और थोड़े से व्यक्ति मौलवी के पास तारा कोठी में। विद्रोहियों में उस समय के आंपसी मतभेद ने अपने आन्दोलन को ऐसी क्षति पहुंचायी कि वे क्रान्ति को ही असफल कर बैठे।

बिरजीस क़दर के राज्याभिषेक के विषय में आंखों देखा वर्णन एक बेगम के पत्र से मालूम होता है। वह पत्र हमने आगे दे दिया है। उस ब्यौरे को यहां देने की आवश्यकता नहीं। जब बालक का राज्याभिषेक हो रहा था, लोगों ने यह गाना गाया था :—

ग़ैरते महताब है बिरजीस क़दर।
गौहरे नायाब है बिरजीस क़दर।।[1]

नये बादशाह ने या यों कहिए कि उनकी प्रतिभाशाली माता ने नगर के प्रबंध का भार यूसुफ खां के ऊपर छोड़ा, सेना का भार राजा जयलाल पर तथा तोपख़ाना आदि मीर काज़िम अली पर। गद्दी पर बैठने के १२ दिन बाद यानी २६ जिल हिज्जा, १२७३ हिजरी, १७ जुलाई, १८५७ को बिरजीस क़दर के नाम से घोषणा हुई कि "मैंने पूर्ण निश्चय कर लिया है कि अपने पुश्तैनी राज्य से निर्दय, अभद्र, काफ़िर फिरंगियों को निकाल बाहर करूंगा। इसीलिए मैंने जौनपुर और आज़मगढ़ के इलाक़ों के लिए वीर राजा बेनीमाधोसिंह को आमिल तैनात किया है.... जहां पर भी कहीं फ़िरंगी काफ़िर मिलें, उन्हें तलवार के घाट उतार दो..."

एक दूसरे घोषणापत्र में नये नरेश ने कहा था—

"हरेक हिन्दू और मुसलमान को मालूम है कि चार चीज़ें हरेक इनसान को बड़ी प्रिय होती हैं—धर्म, सम्मान, जीवन तथा सम्पत्ति। पर इन चारों चीज़ों की रक्षा देशी शासन में ही हो सकती है। देशी हुकूमत में पूरी धार्मिक सहिष्णुता रहती है। सभी जाति-पांति के लोग बराबर होते हैं। छोटी जाति के धोबी, चमार, धनुक, सब बराबरी का दावा कर सकते हैं। अंग्रेज़ इन चारों चीज़ों के शत्रु हैं....वे सम्मानित लोगों को फांसी लगा देते हैं। उनके घर की औरतों तथा बच्चों को नष्ट कर देते हैं। उनकी स्त्रियों की इज़्ज़त लूट लेते हैं। सब सामान लूट लेते हैं। मकान खोदकर फेंक देते हैं। बनिया तथा महाजन को जान से ही नहीं मारते, उनकी सम्पत्ति भी लूट लेते हैं तथा औरतों की इज़्ज़त उतार लेते हैं...इसलिए हरेक हिन्दू तथा मुसलमान को चेतावनी दी जाती है कि अगर तुम अपने दीन और ईमान की रक्षा करना चाहते हो तो फिरंगियों के चक्कर में मत पड़ो, उन्हें पनाह मत दो, हमारी सरकार की फ़ौज में शामिल होकर उनसे युद्ध करो।"

बिरजीस क़दर की माता ने अपने पति वाजिदअली शाह के रहते अपने लड़के को बादशाह कहना अस्वीकार कर दिया। बिरजीस क़दर केवल क्रान्ति के नेता तथा गद्दी के "वली" कहलाते थे। वली की ओर से पहला काम हुआ सेना का

१. सलातीने अवध के लेखक ने इस गाने पर व्यंग करते हुए लिखा है—
अध्याय १२३— छूटता है तुमसे अब यह लखनऊ।
जश्ने शादी ख़्वाब है बिरजीस क़दर।।

वेतन बढ़ाना। सिपाहियों को ६ रुपये मासिक वेतन कम्पनी की सरकार देती थी। लगभग ६०,००० सिपाही बेकार घूम रहे थे। सेना में जो भी भर्ती हुआ उसका वेतन १२ रुपया माहवार कर दिया गया।

दिल्ली सम्राट् बहादुरशाह से गद्दी पर बैठने की सनद लेने के लिए तथा क्रान्ति-सम्बन्धी आवश्यक परामर्श के लिए मिर्ज़ा अब्बास विरजीस क़दर को लेकर दिल्ली गये। बहादुरशाह को १२१ स्वर्ण मुहरें तथा सम्राज्ञी ज़ीनत महल को रत्न-जटित हाथ की पहुंची भेंट की। विरज़ीस क़दर को सनद भी मिली और "सफ़ीरुद्दौला" का ख़िताब मिला। पर, उसी दिन ब्रिटिश सेना दिल्ली शहर में घुस आयी और मारकाट शुरू हो गयी। विरजीस क़दर जान बचाकर भागे और लखनऊ वापस आ गये। लखनऊ में ही मुगल शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह, जो बादशाह फरुख़सियर के नाती मिर्ज़ा नाज़िम बख्त के बेटे थे, आ पहुँचे। फीरोज़शाह हज करके वापस आ रहे थे कि इन्दौर में उनको ग़दर की इत्तला मिली। उन्होंने एक लम्बा फ़रमान निकाल कर लोगों से लड़ने की अपील की थी।[१]

बेगम हज़रतमहल बड़ी वीरता के साथ तथा अद्भुत प्रखर बुद्धि से क्रान्ति का संचालन करती रहीं। पर क्रान्ति को असफल करने के लिए हम भारतीयों की आपसी फूट काफ़ी थी। मौलवी अहमदुल्लाशाह तथा मम्मू ख़ां ऐसे धुरन्धर क्रान्तिकारियों में जब दरार पड़ गयी तो क्या होना था। हम उस क्रान्ति का इतिहास यहां नहीं दे रहे हैं। संक्षेप में इतना ही लिखना पर्य्याप्त होगा कि क्रान्ति के सभी नेता तितर बितर हो गये।[२] और १७ मार्च, १८५८ को बेगम हजरत महल अपने नन्हें बच्चे विरजीस क़दर को लेकर मम्मू ख़ां के साथ लखनऊ से बूंदी भाग गयीं।[३] यहां से

१. फीरोजशाह ने अपने फ़रमान में लिखा था कि मेरे साथ १,३०,००० व्यक्ति मरने-कटने को तैयार हैं।

२. अवध की क्रान्ति के दो प्रमुख नेता थे। मौलवी अहमदुल्लाशाह का गला काटकर एक ताल्लुकेदार ने अंग्रेज़ों को भेंट कर दिया। मौलवी साहब ने १६ फ़रवरी, १८५७ को ही फ़ैजाबाद में क्रान्ति का प्रारम्भ कर दिया था। राजा जयलालसिंह को वाजिदअली शाह की फ्रांटियर पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट कप्तान पैट्रिक ऑर की हत्या के अपराध में फांसी की सजा हुई। १ अक्टूबर, १८५९ को उन्होंने अपने हाथों अपने गले में फांसी का फंदा डाला। ३. एक बेगम ने इस पलायन का रोमांचकारी वर्णन किया है। उसे हमने आगे दिया है।

शाहजहांपुर, फिर बरेली। किसी प्रकार वे नैपाल पहुंचीं। फ़ीरोज़शाह काबुल होते हुए रूस चले गये। राणा जंगबहादुर ने पहले तो हज़रत महल तथा बिरजीस क़दर को शरण देना अस्वीकार कर दिया। पर, फिर अनुमति दे दी और उनकी ५०० रुपया माहवार पेंशन निश्चित कर दी। उन पर निगरानी भी रखी जाती थी। अंग्रेज़ों को भी संतोष था कि उनके मित्र राणा की देखरेख में वह "ख़तरनाक" व्यक्ति सुरक्षित है। जब बिरजीस क़दर ने कलकत्ता आना चाहा तो उन्हें न केवल अनुमति मिली बल्कि १५ लाख रुपया पेंशन भी मुक़र्रर हो गयी। इसकी सूचना जब मेजर कारंजी ने बादशाह के महल में दी तो नवाब ख़ास महल ने चिलमन की ओट से कहा—"जो आपके घर आवे वह क़ैद हो, लूटा जाय, सब तरफ़ से बरबाद हो, उसे लाख रुपया माहवार और जो मुक़ाबला करे उसे इस क़दर।" उनको जवाब मिला—"वह साहबे शमशीर है।"[१] अस्तु, बिरजीस क़दर कलकत्ता में ज़्यादा दिन तक जीवित न रह सके। वहाँ पिता-पुत्र की भेंट भी नहीं हुई।

बेगम हज़रत महल बड़ी चतुर स्त्री थीं। जब गवर्नर जेनरल लार्ड कैनिंग ने "शान्ति और सुलह" का पैग़ाम निकाल कर क्रान्तिकारियों से हथियार रखने की अपील की तो बेगम ने एक फ़रमान निकाल कर उस घोषणा की काफ़ी धज्जियां उड़ायी थीं और जनता पर से घोषणा का प्रभाव समाप्त करने का प्रयास किया था। यह बयान भारत में चारों ओर उन शहरों में जहां अंग्रेज़ी अमलदारी क़ायम हो गयी थी, काफ़ी संख्या में बांटा गया था।[२] बेगम ने लिखा था कि—"कुछ मूर्ख तथा दुर्बल हृदय लोग समझते हैं कि उनको माफ़ कर दिया जायगा.... अंग्रेज़ों ने आज तक माफ़ करना कभी सीखा ही नहीं....लोग धोखे में न रहें... भरतपुर के राजा को पुत्रवत मानने का बहाना करके उनका राज्य ले लिया। लाहौर के राजा को लन्दन उठा ले गये....अगर बादशाह वाजिदअली शाह से प्रजा असन्तुष्ट थी तो हमसे क्यों सन्तुष्ट है ? इतनी भक्ति तथा प्रेम प्रजा का हमें प्राप्त है तो फिर हमारा राज्य हमें क्यों नहीं वापस दे देते ? ....इस घोषणा की भाषा से स्पष्ट है कि चाहे दोषी हो या निर्दोष, कोई बच नहीं सकता...."

बेगम हज़रत महल के साथ मम्मू ख़ां भी नैपाल भाग गये थे। बेगम वहां भी

१. सलातीने अवध, अध्याय १७।

२. The History of Indian Mutiny—Charles Ball, vol. II Pages 543–544.

ख़ामोश नहीं बैठी रहीं। उन्होंने मम्मू ख़ां को नैपाल से तुलसीपुर भेज कर विद्रोही सेना इकट्ठा कराने की चेष्टा की थी।[१] मम्मू ख़ां "उत्तर प्रदेश" आने पर बच नहीं सके। वे पकड़े गये और उनको भी फांसी हुई।

बिरजीस क़दर भी शायर थे। साधारण श्रेणी के। उनकी कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं। एक अंग्रेज़ फ़ोटोग्राफर उनसे नैपाल में मिला था। उसने लिखा है कि वे नैपाल में अक्सर लखनऊ के लिए रोया करते थे। उनकी पंक्तियों से भी उनके दु:ख का अनुमान लगता है।

बुलबुल जो हूं हर एक गुले यासमीं[२] से दूर।
बिरजीस[३] हूं मगर बुते जोहरा जबीं से दूर।।
× × ×
होती नहीं असर तेरे दिल में तो संगे दिल।
यां तीर आह गुजरा है अरशे बरीं से दूर।।
है शुक्र किरदेगार उक़ूबात[४] से बचे।
ख़ालिक़ ने कर दिया मुझे ताजो नगीं से दूर।।
× × ×
यूं ख़ाले रुए यार हैं रुख़ से अलाहदा।
रहता है जैसे मुल्के हबश शाहे चीं से दूर।।
× × ×
मिट्टी ख़राब हो गयी नैपाल में तेरी।
रहता है क्यों मजारे इमामे मुबीं से दूर।
मिल लूं शबे विसाल में दिल खोल खोल कर।
या रब तू कर हिजाब बुते शरमगी से दूर।।
क़ौनेन[५] की नजात है बिरजीस सब हुसूल।
क्यों रह मज़ारे ख़ुसरवे दुनियां ओ दीं से दूर।।

बेगमों के पत्र

उन दिनों की घटनाओं के संबंध में कलकत्ता तथा लखनऊ के बीच बेगमों के जो पत्र-व्यवहार हुए थे, वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। कुछ तो ऐतिहासिक महत्व के हैं।

१. Freedom Struggle in Uttar Pradesh—**पृष्ठ ४२४ में प्रकाशित एक बयान से। २. चमेली का फूल, । ३. सितारा। ४. धर-पकड़ ५. त्रैलोक्य**

इनका थोड़ा बहुत संकलन प्रकाशित हो गया है ।[१] कुछ पत्र हम यहां उद्धृत कर रहे हैं :—

नवाब जाने जाँ बेगम का पत्र कलकत्ता से, सरफ़राज़ बेगम को :—[२]

"जनाबे आलिया के साथ मर्द औरत ११० आदमी चुने गये। मौलवी मुहम्मद नसीरुद्दीन खां, उनकी पेशी में मीर मुहम्मद रफ़ी नियुक्त हुए। शेख़ मुहम्मद अली रफ़ीक़ ख़ास जेनरल साहब के व जलीसुद्दौला मुसाहब वली अहद के। १० लाख रुपया खर्च के लिए दिये गये। जनाब मलका मुअज्ज़मा दाम इक़बालहू के लिए एक हार अलमाश का जिसका वज़न तीन सेर, दूसरा हार याकूत का, जमुर्रद की कंघी . . . और पेशवाज़ बहुत तकल्लुफ़ की ३२,००० रुपया की तैयार हुई. . . . १४ शव्वाल मंगल के दिन, १२७२ हिजरी बारह बजे रात को जनाब आलिया सवार हुईं। सुबह जहाज़ ने लंगर उठाया। बादशाह की कोठी के नीचे से गुज़रा।"

बेगम फर्ख़ुन्दा महल का पत्र बादशाह के नाम:—[३]

"रमज़ान की आठवीं तारीख़ को इतवार के दिन दोपहर से अंग्रेज़ी फ़ौज कारतूसों के दिये जाने पर बिगड़ गयी। सब फ़ौज भूसाबाग में ईसाइयों का क़त्ल करने के लिए इकट्ठा हुई। लाख समझाया, उनके ख्याल में न आया। कई सौ गोरे निकाले और शाम को क़त्ल के लिए रवाना किया। ऐशबाग में १५०० आदमी जमा हो चुके थे। उलमा अलम मुहम्मदी उठाने को हैं।"

बादशाह ने कलकत्ता से शैदा बेगम को लिखा:—

"मालूम हुआ कि अवध में कुछ बलवाई लोग जमा हुए हैं। कम्बख़्तों से कहो कि हम चुपचाप चले आये हैं, तुम लोग काहे को चले आये. . . .जब मेरी ग़ुस्ले सेहत का नाच गाना हो रहा था, कोई चार घड़ी रात बाकी थी, गुल पुकार होने लगी। देखा कि अंग्रेजी फ़ौज चारों तरफ़ से आ गयी। पूछने से मालूम हुआ कि अली नक़ी ख़ां क़ैद हो गये। मैं नहा चुका था कि लाट साहब के सेक्रेटरी ऑक्टन साहब हाज़िर हुए और कहने लगे कि मेरे साथ चलिए। मैंने कहा कि आख़िर कुछ सबब तो बतलाओ तो कहा कि गवर्मेन्ट को शुबहा हो गया है। मैंने कहा कि

१. बेगमात अवध के खतूत, सम्पादक मुफ्ती इन्तज़ामुल्ला शहाबी तथा तारीख़ मुमताज आदि से।

२. बेगमात 'अवध' के ख़तूत, पृष्ठ १७।

३. पृष्ठ २३ (वही)।

मैं राज से अलग हो गया हूं। भला अब कलकत्ता में क्या फ़साद करा सकता हूं। अगर इन्तज़ाम करना है तो मेरे ही मकान पर फ़ौज़ तैनात कर दो। उन्होंने कहा कि मुझसे जो कहा गया है वह आपसे कह दिया। मैं और मेरे साथी चलने पर तैयार हो गये। सेक्रेटरी ने कहा कि सिर्फ़ ८ आदमी आपके साथ चल सकते हैं। फूफा मुजाहिदुद्दौला, जिहानतुद्दौला, मैं और सेक्रेटरी साहब एक बग्घी पर बैठे। मेरे साथियों में जुलफ़िकारुद्दौला, फ़तहुद्दौला, ख़ज़ान्ची काज़िमअली, सवार वाकर अली, हैदर खां कौल, सरदार जमालुद्दीन चपरासी, शेख इमामअली हुक्का बरदार, अमीर बेग ख़वास, वली मुहम्मद मेंहतर, मुहम्मद शेर ख़ां गोलन्दाज़, करीमवख्श सक्का, हाजी क़ादिर वख्श कंहार हमारी गाड़ी पोछनेवाला, यह सब ज़बर्दस्ती क़ैदख़ाने में आ गये। राहतुस्सुलतान ख़ासा बरदार, हुसैनी गुलौरी वाली, मुहम्मदी ख़ानम मुगलानी यह भी उठ आयीं। तबीबुद्दौला हकीम भी देखा-देखी आ गया था। मगर जान छुड़ाकर भाग गया। जिसमें हम क़ैद किये गये थे, उसे कुली बाग़ कहते हैं। यह ख़त करबलाई आबख़ासा बरदाई के हाथ भेज रहा हूँ।"

शैदा बेगम ने लखनऊ से बादशाह को लिखा:—[1]

"जब से आप लखनऊ से गये हैं ख़ाना-पीना हराम है। दिन-रात रोते गुज़रती है। मगर मेरी दूसरी साथिनें ख़ुश-ख़ुश इतराती फिरती हैं। आपके जाने के बाद से अंग्रज़ों के ख़िलाफ़ ज़हर उगला जा रहा है। नयी नयी बातें सुनने में आ रही हैं। घासमंडी में मौलवियों का जमाव है। सुना है कि एक सूफ़ी अहमदुल्ला साहब आये हैं। नवाब चीना टीन के बेटे कहलाते हैं। आगरा से आये हैं। उनके बहुत से शागिर्द हैं। पालकी में सवारी निकलती है। पीछे पीछे बड़ा हंगामा रहता है।"

बादशाह ने उत्तर भेजा:—

"हम क़िला विलियम में क़ैदी हैं। लार्ड लिंग साहब का मेरे पास ख़त आया है कि मेरी बेइज्ज़ती नहीं की जायगी। मगर मेरी ज़िन्दगी वबाल हो गयी है। आठ दिन बाद क़िले में एक कोठी है, उसमें उठ आये। २३ आदमी साथ में हैं। परिन्दा तक पर नहीं मार सकता। क़ैदख़ाना के दरवाज़े बन्द कर लिये जाते हैं। हमारा दम घुटता है। मुजाहिदुद्दौला, मिर्ज़ा जैनुलआबदीन, दियानतुद्दौला, मुतादय्यानुल-मुल्क मोहम्मद मोतमुद अली ख़ां, अमानतजंग कुमेदान हर वक़्त

१. ख़तूत, पृष्ठ ३०-३१

परवानावार जा निसार थे। फ़तिहुद्दौला बख्शिउलमुल्क २८ सफ़र १२७३ हिजरी को परलोक सिधार गये। मोहतमिमुद्दौला और जुलफ़िकारुद्दौला, सय्यद मुहम्मद सज्जाद अली खां—रिसालदार ने उकसा-भड़का कर मुझसे जुदा होना शुरू किया। पहले दियानतुद्दौला ने कौंसिल से जियारत पर जाने की आज्ञा मांगी। मिलते ही क़िले से चला गया। मोहतमिमुद्दौला ने पागलपन करके हरेक से झगड़ा करना, गालियां देना, मारपीट करना शुरू किया। आख़िर, क़िले से निकाला गया। मुहम्मद शेर खां गोलन्दाज़ ने वाकरअली की नाक काट ली। उसकी सज़ा हो गयी। वह जेल भेजा गया। करीमबख्श सक्का को तपेदिक़ हो गया।"

लखनऊ से शैदा बेगम ने बादशाह को लिखा :—[१]

"यहां रोज़ नये गुल खिलाये जा रहे हैं। आपकी महबूबा हज़रत महल ने सरकार से जोड़-तोड़ कर लिया और बाग़ियों की सरकार बनी है। नव्वाब मुहम्मद अली खां के बहकावे में आ गयी हैं। षड्यन्त्र रचा रही हैं। देखिए, किस करवट ऊंट बैठता है।"

लखनऊ से सरफ़राज़ बेगम ने जाने जाँ बेगम को लिखा :—[२]

"सुलताने आलम के जाने के बाद लखनऊ बरबाद हो रहा है। कोई घर भरा नहीं है। लखनऊ में तिलंगों ने ऊधम मचा रखी है। फ़ैज़ाबाद से मौलवी अहमदुल्ला शाह ने आकर उनकी लूटपाट बन्द करायी। जगह-जगह पर चौकी पहरे बिठा दिये हैं। उनके साथ बहुत से हमदर्द हैं। मिर्ज़ा दारा सितवत को बादशाह बनाने का सोचा जा रहा था। उनसे तीन लाख रुपया नजराना मांगा था। वे कहने लगे कि नवाब शुजाउद्दौला अंग्रेज़ों का मुक़ाबिला न कर सके तो हम क्या कर सकते हैं। राजा दर्शनसिंह के बेटे राजा जवाहरसिंह नवाब ख़ास महल की ड्योढ़ी पर आकर कहने लगे कि मिर्ज़ा नौशेर खां क़द्र को बादशाह बनाओ। शमशीरुद्दौला दारोग़ा ने कहा कि वह लड़का सब तरह माज़ूर है, और नवाब ख़ास महल और बादशाह की मंज़ूरी के बिना यह काम कैसे हो सकता है। महमूद खां और शेख अहमद हुसेन ने राजा मानसिंह व जवाहरसिंह से मिर्ज़ा बिरजीस क़दर के लिए कहा। वहां से जवाब मिला कि अगर फ़ौज को और बेगमात शाही को मंज़ूर हो तो मुमकिन है. . . .मीर वाजिदअली बुलाये गये। सब बेगमात जमा हुईं। कुछ ने कहा कि बादशाह के रहते किसी और को तख़्त पर न बिठाओ।

१. ख़तूत पृष्ठ ३५ २. नवाब ख़ास महल को पत्र, पृष्ठ ४५

शगुन बद है। कुछ ने कहा कि सुलताने आलम का बेटा उनके सामने तख़्त पर बैठ रहा है और बाप को तख़्त व ताज दिलाने का इन्तज़ाम कर रहा है। मैं सब सुन रही थी। बेगम हज़रत महल ने सबसे हाथ जोड़कर कहा कि "बेटा तुम्हारा है। जो चाहो वह करो।" नवाब ख़ुल्द महल ने बड़ी बुद्धिमानी से कहा कि अगर हम तुम्हारे (बाग़ियों के) राज़ीनामे पर मुहर लगा दें तो कलकत्ता में अंग्रेज़ सुलतान आलम को मार डालें तो क्या हो? राजा जवाहरसिंह चला गया। हज़रत महल निराश हो गयीं।

"मगर महमूदखां को तलवे से लगी हुई थी। उसने बेगम हजरत महल से फ़ौज के सवारों को ख़त भिजवा दिया। १२ ज़ीकादा, १२७३ हिजरी, इतवार के दिन पानी बहुत ज़ोरों से बरस रहा था। राजा अपने अफ़सरों के साथ क़सरुल-ख़ान में आकर बैठे....मिर्ज़ा बिरजीस क़दर हुजूर आलम के तामजाम पर सवार होकर आये और मसनद जलूस जन्नत आरामगाह पर आकर बैठे। किसी ने कहा छोटा है। किसी ने कहा कि ऐशो-इशरत में फंसकर ग़ाफ़िल न हो जाय। आख़िर शहाबुद्दीन और सय्यद बरकात अहमद १५ रिसाले के रिसालदार ने उठकर मंदील मिर्ज़ा बिरजीसक़दर के सर पर रख दी। मुबारकबाद दी गयी। अफ़सरों ने तलवारों की नज़रें दिखायीं। जहांगीर बख्श सूबेदार तोपख़ाना फ़ैज़ाबाद ने २१ तोपों की सलामी दी। शहर में मसनद नशीनी का शोर हुआ। गर्मी का ज़ोर था। मिर्ज़ा बिरजीसक़दर महल में गये। घमंडीसिंह सूबेदार बेहूदा बातें बकता रहा। नायब दीवान हिसामुद्दौला को बनाना चाहा मगर वे राज़ी न हुए। हजरत महल ने मिसाहुद्दौला से कहा। वह भी तैयार नहीं हुए। सर्फ़ुद्दौला मुहम्मद इब्राहीम ख़ां की तजवीज हुई। मम्मू ख़ां[1] बिगड़ बैठे। फिर सफ़ाई हो गयी। नवाब हिसा-मुद्दौला ने जनाबे आलिया यानी बेगम हज़रत महल के हाथ में ११ अशर्फ़ियां नज़र कीं....

"बिरजीसक़दर ने दूसरे दिन ख़िलअत नयाबत इनायत किया। ख़िलअत दीवानी महाराजा बालकिशन को, कोतवाली मिर्ज़ा अली रज़ा बेग को; मुहतमिम रौन्द[2] मीर यावर हुसेन, ख़िलअत जरनैली हिसामुद्दौला बहादुर को। फिर तमाम

१. मम्मू खां (महमूद खां) ने सत्तावन की क्रान्ति में बड़ा ऊंचा भाग लिया था।

२. गश्त यानी Rounds **का विभाग**

ने बिरजीसक़दर को, हज़रत महल को और शाहंशाह महल को नज़रें दीं। दारोग़ा दीवान ख़ास मम्मू खां अली मुहम्मद खां बहादुर रवाना हुए। मुंशी कचहरी ख़ास अमीर हैदर, दारोगा ड्यूढ़ीयात मीर वाजिदअली, अख़बार मुल्की मुहम्मद हसन खां (दामाद नवाब सर्फ़ुद्दौला) को दिया गया। जेनरल हिसामुद्दौला को हुक्म भरती १३ पल्टन नजीव का हुआ और, अंग्रेजों से लड़ाई शुरू कर दी। बेलीगारद पर हमला कर दिया। वहीं अंग्रेज़ जमा थे। मौलवी अहमदुल्ला शाह बड़ी बहादुरी से बेलीगारद तक पहुंच गये। मगर और कोई साथी न था। घायल होकर लौट आये। मैं महलात से उठकर शहर आ गयी हूं।"

बेगम सरफराज़ महल ने जवाब अख़्तर महल के नाम कलकत्ता पत्र भेजा :—[1]

"एक दिन मशहूर हुआ कि कल या परसों फ़ौज़ बेलीगारद पर हमला करेगी। बेगमात को तशवीस हुई। सब ने मिलकर हज़रत महल से कहा कि ऐसी हालत में कलकत्ता वालों की जान का ख़तरा है। हम सब लावारिस हुई जाती हैं। ऐसी सलतनत को चूल्हे में डालो। जनाबे आलिया हज़रत महल ख़फ़ा हो गयीं और जवाब दिया कि मालूम हुआ कि तुम सब हमारा बुरा चाहती हो, और बिरजीसक़दर को लेकर दालान में चली गयीं। यह बात अफ़सरों को मालूम हो गयी। मिसाहुद्दौला वग़ैरह हज़रत महल के पास आये और कहा—"महलात अंग्रेज़ों से मिली हुई हैं। इनको निकाल बाहर करो।" वह बोलीं कि सब्र से काम लो। दूसरे दिन वे लोग बेलीगारद पर हमला करने चले पर पहले शहर पर हाथ साफ़ किया। मगर बिरजीसक़दर के मना करने पर अफ़सरों ने कहा कि अब शहर न लुटेगा। दिल्ली को दूत भेजा कि हुजूर बहादुरशाह से सनद मसनद नशीनी ली जाय। हज़रत महल ख़ुद हाथी पर बैठकर तिलंगों के आगे-आगे अंग्रेज़ों से मुक़ाबला करती हैं। आँख का पानी ढल गया है। उनको डर बिलकुल नहीं है।

"आलमबाग़ पर बड़ा मुकाबला रहा। हजरत महल की फ़ौज़ अहमदुल्ला शाह से मिल गयी। दोनों ने बड़ी मेहनत की। मगर क़िस्मत को क्या करते। २२ दिसम्बर सन् १८५७ का दिन था। जेनरल आउट्रम और जेनरल हैवलाक मुक़ाबिल थे। अंग्रेज़ों की तोपों ने गोले बरसाये। तिलंगे पलटे, मम्मू ख़ां और सर्फ़ुद्दौला ने हटकर नाका चारबाग़ लिया। राजा मानसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखायी। १००० फ़ौज़ से ऐसा मुक़ाबला किया कि अंग्रेज़ों के छक्के छूट गये। शाम

१. ख़तूत—पृष्ठ ५०।

हो गयी थी। जनाब आलिया ने मानसिंह को ख़िताब फ़र्ज़न्दी दिया। ख़िलअत दुशाला, रूमाल और मतलूसे ख़ास डुपट्टा दिया। उनकी बहादुरी की बड़ी तारीफ़ की। मगर यह सब तदबीरें उलटी रहीं। और, हम लोगों की हार हुई। कानपुर से नाना राव पेशवा आया। दिल्ली से जेनरल बख़्त ख़ां रोहेला रिश्तेदार मलका ख़ास का है। शहज़ादा फ़िरोज़शाह आये। अहमदुल्ला ने बड़ी बहादुरी दिखायी। सब ने मुँह की खायी। अंग्रेजों ने जान तोड़कर तिलंगों को पस्पा किया। क़ैसरबाग के महलात पर गोले गिरे। बेगमात भागीं। पानदान और क़ीमती वस्तुएं साथ में लिए भागती फिरती थीं। जनाब आलिया मय साथ साहेबाने महल और शागिर्द पेशा नौकरानियों का, पैदल झुंडबाग़ के कोठों पर से घसियारी मंडी के फाटक से बाहर निकलीं।[1] बिरजीसक़दर एक सय्यद की गोद में कंधे से चिपटे हुए थे और ग़लीचा और चांदनी से ढंके हुए थे। गलियों में गिरते पड़ते ये लोग टीला शाह पीर जलील से गुज़र कर पुल मौलवीगंज में जवाहर अली ख़ां के यहां पहुंचे। वहां से पीनस में सवार होकर ग़ुलाम रज़ा ख़ां के यहां उतरीं। फिर शर्फ़ुद्दौला के यहां गयीं। रात को शाहजी के मकान में ठहरीं। जनरल आउट्रम ने कहला भेजा कि तुम अपने महल में आराम से रहो। हम बाग़ियों को निकाल कर तुम्हारा आदर करेंगे। हज़रत महल ने कष्ट सहकर हिम्मत नहीं हारी। २१ रजब १२४७ को क़रीब शाम बिरजीसक़दर को लेकर, पीनस में सवार होकर नाका आलम बाग़ की तरफ़ से मम्मू ख़ां को लेकर घोड़े पर सवार लखनऊ से रवाना हुईं। रास्ते में राजा मर्दनसिंह ज़मींदार अनादर से पेश आया। मौलवी इमदादुद्दीन देवा उर्फ़ मौलवी मुहम्मद नाज़िम बिसवां बाड़ी तीन कोस से जनाब आलिया के स्वागत के लिए आये। बड़ी धूम व नक्क़ारा व जलूस सवार से मिर्ज़ा बन्देह अली बेग के इमामबाड़े में उतारा। राह में फ़क़ीरों को २००० रुपया दान दिया। जब शहर के अन्दर गयीं तोपें सलामी चलीं। वहां सलाह हुई कि बरेली चलें। चुनांचे यह काफ़ला आगे को रवाना हुआ। मेरी छोकरी यासीमा साथ थीं। वह लौट आयी और उसने सब हाल कहा।"[2]

१. इस पत्र में कई दिनों की घटनाएं एक साथ लिख दी गयी हैं। बेगम हज़रत महल १७ मार्च, १८५८ को भागी थीं।

२. सन् सत्तावन के काग़ज़ातों में मानसिंह को "पूरबिया सरदार" लिखा गया है।

नवाब फ़ख़रे महल ने क्रान्ति के दिनों में जाने आलम (बादशाह सलामत) को कलकत्ता लिखा था :—

"हर एक मकान वीरान है। कालों ने ऊधम मचायी है। गोरों ने मात खायी है। दो चार दिन में देखिए क्या हो।"

सन् सत्तावन की क्रान्ति के संबंध में बेगमात के ये पत्र, उनका आँखों देखा वर्णन बड़े महत्व का है तथा इतिहास के लिए अमूल्य सामग्री है। क्रान्ति के शान्त होने के बाद लखनऊ की जनता, राज परिवार, राजा तथा रईस इन सब पर क्या बीती तथा कितने भयंकर अत्याचारों को सहन करना पड़ा, इस विषय पर यहां प्रकाश डालने की गुन्जायश नहीं है। जब मिर्ज़ा ज़ायर ऐसे ब्रिटिश-पक्षपाती लेखक भी लिखते हैं कि केवल कानपुर में ही २००० व्यक्ति फांसी पर लटका दिये गये तो अवध में कितना जुल्म हुआ होगा, इसका वर्णन कठिन है। इस क्रान्ति से और जो कुछ लाभ हुए हों, पर बादशाह वाजिदअली शाह को किसी रूप में भी गद्दी वापस मिलने का प्रश्न सदा के लिए समाप्त हो गया। जिस समय मौलवी मसीहुद्दीन, मेजर बर्ड, ब्रैंडन, लिविन ऐसे लोगों की आवाज़ अपना असर करने जा रही थी, सन् सत्तावन की क्रान्ति ने समूचा अध्याय उलट दिया था।

वाजिदअली शाह की गिरफ़्तारी

आत्म-रक्षा में अंग्रेज़ भी अपना संतुलन खो बैठे थे। वे हरेक चीज को शंका की दृष्टि से देखते थे। राजा मानसिंह ३५,००० रुपए का लगान न जमा करने के कारण सन्यासी का वेष बनाकर घूमते-घूमते कलकत्ता पहुंचे थे और बादशाह से मिलने गये। बादशाह ने मिलने से इंकार कर दिया। पर गुप्तचरों द्वारा उनके मटियाबुर्ज जाने की सूचना अंग्रेजों को लगी और यह समझा गया कि क्रान्ति का संदेश लेकर राजा आये थे। मुखद्दरेउज़मा नवाब ख़ासमहल ने अपना कई लाख रुपया बंगाल बैंक में जमा कर दिया था। उसका सूद लेने के लिए दीवान टिकैतराय को बैंक भेजा। अंग्रेज़ों ने समझा कि लखनऊ में क्रान्तिकारियों को आर्थिक सहायता देने के लिए रुपया मंगाया जा रहा है। पटना के एक पुस्तक विक्रेता ने वहां क्रान्ति का नेतृत्व किया था। उनके पास से जो काग़ज़ात बरामद हुए थे उनसे पता चला कि लखनऊ से पटना की क्रान्ति का संबंध था। अवध से हिदायतें आ रही थीं। अतएव पटना तथा लखनऊ का संबंध होते ज़्यादा देर नहीं लगती थी। पटना तथा कलकत्ता में सम्बंध स्थापित होने का भय था।

बादशाह के लिए चारों ओर हमदर्दी थी, इसके अनेक प्रमाण हैं। २६ मार्च,

१८५६ को गवर्नर जेनरल के पास कानपुर से एक गुमनाम पत्र आया था[१] जिसमें लिखा था कि "किसी भी दशा में अवध का अपहरण उचित तथा वैध नहीं है। अवध के बादशाह ने लाहौर या ग्वालियर के नरेशों की तरह ब्रिटिश से लड़ाई नहीं की। उन्होंने अपनी सेना के हथियार रखा दिये थे। तोपें उतरवा दी थीं। ब्रिटिश सरकार का यह काम सौजन्य रहित तथा अत्याचारपूर्ण है। अवध सरकार पर बदइन्तज़ामी का अभियोग लगाया गया है। इसके विपरीत अवध में रहने वाले किसी व्यक्ति ने ऐसी शिकायत नहीं की। हरेक आदमी अपने इक़रारनामे को मानता है। सरकार को उसे नहीं तोड़ना चाहिए। गाज़ीउद्दीन हैदर को वज़ीर से बादशाह बनाया था। अगर सरकार बादशाह को नीचे गिराना चाहती थी तो नवाब को बादशाह क्यों बनाया? बादशाह की मुहर बिना उनकी रज़ामन्दी के लगा दी गयी। दरबार से संबंधित हज़ारों आदमी तबाह हो गये। पिछले ज़माने में किसी शासक ने ऐसी हरकत नहीं की थी।"

२८ जिलहिज्जा, १२७२ हिजरी यानी ३० अगस्त, १८५६ को बादशाह ने बड़े लाट को काफ़ी गर्म ख़त लिखा था जिसमें वे लिखते हैं कि "जो सलूक मेरे साथ किया गया उसका दसवां हिस्सा भी ब्रिटिश सरकार ने अपने किसी दुश्मन के साथ नहीं किया होगा।" बादशाह के पदच्युत होने से चारों ओर अशान्ति छा गयी थी, यह कई ब्रिटिश इतिहासकार स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं—"पहले जो वस्तु कठिन थी वह अवध के अपहरण के इस अन्तिम कार्य से सरल बन गयी। केवल बादशाह के मंत्रीगण ही चारों ओर कम्पनी की सेना में तथा सर्वत्र झूठ का प्रचार तथा अशान्ति नहीं पैदा कर रहे थे बल्कि हमारे इस अपहरण से लोग आपस में बातें करते थे और उनमें यह धारणा बन गयी थी कि अब किसी की रक्षा का कोई ठिकाना नहीं है; वफ़ादारी से कोई लाभ नहीं है; जब अवध के बादशाह ऐसे सच्चे साथी तथा मित्र के साथ, जो हमेशा मौक़े पर काम आये, ऐसा सलूक हो सकता है तो फिर . ."

१. यह पत्र फ़ारसी में है। इस पर १६ मार्च, १८५६ की तारीख़ पड़ी हुई है। कई लाख आदमियों ने हस्ताक्षर करके कलकत्ता एक प्रार्थनापत्र भेजा कि हम बादशाह से सन्तुष्ट हैं। हमें उनका ही शासन चाहिए। गद्दी छिनने के बाद लोग बादशाह के पास आकर ढाढ़स बंधाते थे। सग़ीर लिखते हैं:—

"सब इस तरह समझाते थे शाह को, कि अब कीजिए याद अल्लाह को।
वो बिगड़े हुए भी बनाता है काम, दोआ करके नाकाम पाता है काम।"

ब्रिटिश सरकार का क्रान्ति के समय वाजिदअली शाह से चौकन्ना हो जाना स्वाभाविक था। पर बादशाह स्वयं क्रान्ति के कितने विरुद्ध थे, इसका अनुमान तो बेगम शैदा महल के नाम उनके पत्र से लगता है। वे लिखते हैं कि "उन कम्बख़्तों से कहो कि हम चुपचाप चले आये।"––यही नहीं, मिर्जा फ़िदाहुसेन खां नजूमी ने हिन्दुस्तानी फ़ौज का पैग़ाम बादशाह के पास भेजा तो उन्होंने कहा––"ज़िनहार[1] ऐसे उमूरे रक़ीक़[2] मेरे सामने फिर ज़िक्र न करना। यहां सरकार की क़ैद में रहकर ऐसी हरकत करूं। अपने घर में जब था कभी ऐसा ख़्याल क़ासिद न गुजरा।"[3]

पर अंग्रेज़ों को बादशाह के भीतरी विचार या तो ज्ञात नहीं थे या उनको विश्वास नहीं था। क्रान्ति के प्रारम्भ होने के सोलह दिन बाद उन्होंने यह प्रबंध कर दिया था कि कलकत्ता के बाहर पहले तो कोई जाने न पाये और अगर जाय तो उसकी तलाशी ली जाये। बादशाह के घर पर तथा उनके नौकरों पर कड़ी नज़र रखी जाने लगी। शाह स्वयं काफ़ी बीमार पड़े थे। किसी प्रकार अच्छे हुए। उनके अच्छा होने तथा बीमारी से उठने के बाद प्रथम स्नान की (सेहते ग़ुस्ल की) ख़ुशी में गार्डन रीच के भवन में जलसा किया गया। जलसा, नाच गाना आदि देखकर अंग्रेज़ों ने समझा कि ग़दर की ख़ुशी में जलसा हो रहा है। बस, सबेरे तड़के गोरे सिपाहियों का दो बटालियन तथा ४०० बर्कन्दाज़––देशी सिपाही––कोठी को घेर कर खड़े हो गये। १२ तोपें बड़े फाटक पर लगा दी गयीं। नदी किनारे स्टीमर पर तोपें लगा दी गयीं। भरा तमंचा लिये मेजर हर्बर्ट व मेजर कोनिया कोठी में घुस आये। बड़ी बदतमीज़ी के साथ[4] बादशाह से कहा कि गवर्नर जेनरल ने हुक्म दिया है कि कुछ दिनों फ़ोर्ट विलियम में रहो। बादशाह उस वक्त नमाज़ पढ़ रहे थे। उन्होंने क़ुरान शरीफ़ लेकर शपथ खायी कि क्रान्ति से उनका कोई संबंध नहीं है। पर उन्हें गिरफ़्तार करने वाले कब सुनते थे। वे स्टीमर पर बिठाकर बादशाह को फोर्ट विलियम ले जाना चाहते थे। पर उन्होंने स्टीमर पर चलना मना कर दिया। अतएव बड़े लाट की बन्द पालकी गाड़ी मंगायी गयी। बादशाह के साथ एक मेजर बगल में बैठना चाहता था। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। राहतुस्सलतान करबलाई गोरों से लड़ती झगड़ती बादशाह के पास आ पहुंची। बादशाह ने उन्हें शान्त किया। शाह के फूफा मुजाहिदुद्दौला उनकी बगल में

१. कदापि नहीं। २. ख़राब बातें। ३. सलातीने अवध, अध्याय १६८
४. वही

गाड़ी पर बैठे। उनके साथ सिर्फ़ ७–८ आदमियों को जाने का हुक्म हुआ।[1] यह घटना ७ सव्वाल ,१२७३ हिजरी यानी १५ जून, १८५७ की है।

उस समय कोठी में बादशाह के साथ १२०० व्यक्ति थे। एहसानहुसेन खां को फाटक पर तोप के सामने खड़ा कर दिया गया कि अगर बादशाह की गिरफ़्तारी में ज़रा भी दिक्क़त हो तो उनको तोप से उड़ा दिया जाय। बादशाह की सवारी रवाना होने के बाद सेना हटा ली गयी। कोठी में रहने वाले हरेक व्यक्ति का नाम पता नोट कर लिया गया। बहुत से व्यक्ति चहारदीवारी कूद कर भाग गये। ऐसे बहुत से भगेड़ू कई महीने तक लुकते-छिपते लखनऊ पहुंचे। बहुत से गिरफ़्तार होकर कलकत्ता वापस आये और जेल भेजे गये।

बादशाह से संबंध रखने वाले कलकत्ता निवासी अनेक सम्भ्रान्त मुसलमान गिरफ़्तार हो गये। उनके पत्र-व्यवहार पर निगरानी होने लगी। बादशाह या अली नक़ी ख़ां से संबंध रखने के सन्देह में सय्यद हुसेन सूबेदार १६ अगस्त, १८५७ को कलकत्ता जेल भेजे गये। २४ अगस्त को शाह के तीन भूतपूर्व कर्मचारी इलाही-बख़्श ख़ां, सय्यद अमीन अली और काज़ी जवाद अली कलकत्ता जेल भेजे गये। वाजिदअली शाह ने अपने अन्य साथियों का हाल शैदा बेगम के पत्र में दिया है। वज़ीर नक़ीखां भी क़ैद हो गये।

जेल में यातना

यद्यपि शाह राजबन्दी थे पर उनको कोई सुविधा नहीं दी गयी। जीवन में उन पर यह नयी विपत्ति थी। "पड़ गयी कैसी अल्लाह एक और नयी।" ३२ घंटे तक उन्होंने भोजन नहीं छुआ। बड़े लाट ने जब घर से खाना मंगाने की अनुमति दी तो उस भोजन की तलाशी लेने के लिए एक गोरे ने उसमें हाथ डाल दिया। बादशाह ने वह खाना भी नहीं छुआ। ४८ घंटे बिना अन्न के हो गये। आखिर हुक्म हुआ कि बादशाह के नौकर गोरों के सामने खाने की तलाशी लें। तब शाह ने भोजन किया। एहसान अली ख़ां को जेल में ८ दिन भोजन न मिला। शाह को बड़े गन्दे स्थान में, मच्छड़ तथा खटमलों से भरे स्थान में, पाख़ाने के बगल में रखा गया था। क़िले में आग नहीं ला सकते थे अतएव खाना भी ठण्ढा मिलता

१. तारीख़े अवध के अनुसार ७-८ आदमी साथ थे। सलातीने अवध के अनुसार पहले ६ आदमी थे, बाद में २४ साथ में रखने की अनुमति मिली।

था। गोरे सिपाही बड़ा अनादर करते थे। एक गोरा उनके कमरे में घुस आया और बड़ी गालियां दीं। शाह ने शिकायत की तब उसका केवल तबादला ही हुआ। गोरे सिपाही बड़ी उच्छृंखलता के साथ रात को पहरा देते थे। आवाज़ लगाते थे—"तुम सोता है या मर गया।" इन सब बातों से बादशाह के नौकर अधीर हो उठे। वे क़िले में ही बलवा कर देना चाहते थे पर बादशाह ने मना किया।[1] उनकी चिकित्सा के लिए हकीम तबीबुद्दौला साथ आये थे। वे ऊब कर भाग गये।

दस दिन तक बड़ी सख़्ती रही। इधर शाह के हिमायतियों ने कलकत्ता में तथा मौलवी मसीहुद्दीन ने लन्दन में काफ़ी भाग दौड़ शुरू की। तब जाकर उनको क़िले के भीतर ही एक कोठी में रहने की आज्ञा मिली। ९ जुलाई, शनिवार १८५९ को यानी पौने दो वर्ष जेल भोगकर बादशाह घर वापस आये। उन्हें जेल से छुड़ाने के लिए कलकत्ता में बेगमों ने काफ़ी प्रयत्न किया था। दुष्ट लोगों ने इस अवसर से फ़ायदा उठाकर बेगमों से काफ़ी रुपया कमा लिया था। एक साहब नवाब माशूक़महल से ३ लाख रुपया इस काम के लिए ले गये थे। जब वाइसराय (बड़े लाट) को यह बात बादशाह के छूटने के बाद मालूम हुई तो उन्होंने वह रुपया वापस कराया। जेल में भी बादशाह का साहित्यिक कार्य जारी था। उन्होंने "हुज़्न अख़्तर" वहीं लिखा था। जेल में भी उनका ख़र्च इतना अधिक था कि उन्होंने छः लाख रुपया क़र्ज़ लिया था। छूटकर आने पर, उन पर बढ़ते हुए क़र्ज़ को देखकर वाइसराय ने मेजर कोनिया को, जिनसे जेल में बादशाह की मित्रता हो गयी थी और जिन्होंने बादशाह की सहायता भी की थी, उनका मैनेजर बनाना चाहा। पर बादशाह ने स्वीकार नहीं किया। मुंशी अमीरअली ख़ां मैनेजर नियुक्त हुए और उन्होंने बहुत सम्हाल कर काम चलाया वरना वाजिदअली शाह कलकत्ता भरके कर्ज़दार हो जाते।[2]

पर, जेल से छूटने के बाद बादशाह के जीवन में कोई रस नहीं रह गया था। माता, भाई तथा वली अहद मर चुके थे। आधा परिवार लखनऊ में क्रान्ति में नष्ट हो चुका था। पास में न तो पैसा था और न इज्ज़त ही। जेल-जीवन का दिल पर बड़ा बुरा असर पड़ा था। केवल बुढ़ापे की थोड़ी बहुत अय्याशी तथा

१. सलातीने अवध अध्याय १६८ भाग २। इस पुस्तक में लिखा है कि बादशाह से चुनारगढ़ जाने के लिए कहा गया, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

२. सलातीने अवध, अध्याय १७१

साहित्यिक काय रह गया था। वह जारी था। रचनाएं बराबर करते जाते थे। अब उन्होंने शहर के मुशायरों में भी भाग लेना शुरू कर दिया था। गान-विद्या का प्रेम भी जारी था। पर स्वयं उनका गाना बजाना बन्द हो गया था। नक़ी खां लखनऊ वापस चले गये। अपनी बेटी बेगम अख्तर महल को कलकत्ता छोड़ गये।

जेल जीवन का बादशाह पर इतना बुरा असर पड़ा था कि यदि कुछ समय और बन्द रहते तो जीवित न रहते। छूटकर आने पर उन्होंने मुमताज महल को १७ जुलाई, १८५९ को लखनऊ पत्र भेजा:—

"अल्लहमदुलिल्लाह कि तुम्हारी क़ल्बी[१] क़बूल हुई। मुसर्रत जावेद हुसूल हुई। यानी जुलाई की सातवीं तारीख़ हफ़्ते के दिन बलाये नागहानी बलाए आफ़त आसमानी से नजात पाके अपने फ़रोदगाह क़दीम में आये। गुलहाये वहजद व शादमानी जैबोदांनीन तबीयत में लाये। उस दिन को शबे मेराज ऐशोनिशात कहना बजा है। और ईद इशरत इमाबिसात समझना रवा है।"[२]

७५ वर्ष की उम्र में बादशाह की मृत्यु हुई। पर १८५९ से १८९६ तक का उनका जीवन इतिहास के लिए महत्व का नहीं है।

वाजिदअली शाह की रचनाएँ

स्थान-स्थान पर हम बादशाह की रचनाओं का नमूना देते आये हैं। पर, उतने बड़े साहित्यकार की जीवनी के साथ अन्याय होगा यदि हम उनकी कविताओं के कुछ अधिक नमूने यहां न दे दें। इनकी कविताओं के छ: दीवान प्रसिद्ध हैं। इनमें "कुल्लियात अख़्तर" सबसे अच्छा दीवान समझा जाता है। वैसे तो इनकी चालीस पुस्तकों में काफ़ी साहित्य भरा पड़ा है पर पाठकों की जानकारी तथा मनोरंजन के लिए कुछ चुनी हुई कविताएं हम उद्धृत कर रहे हैं।

आप बीती—अपनी यात्रा और आप बीती के संबंध में बादशाह लिखते हैं—

लखनऊ से जो चले हम ऐ जां
कानपुर में मिला गज़ब का मकां।

१. हार्दिक इच्छा

२. तारीखे मुमताज, पत्र सं० १९। इस पत्र में बादशाह ने अपनी रिहाई की तारीख़ ७ जलाई ी है। सलातीने अवध में ९ जुलाई है।

यह ब्रैंडन का एक बंगला था
अपनी टोपी से भी था तंग सेवा।
रात दिन सबके दिल में ख़तरये जां
पांव फिसले तो फिर अदम को रवां।।

काशी-नरेश के व्यवहार के बारे में शाह ने लिखा—

एक राजा मिला वहां वह नेक
लाख राजाओं में था राजा एक
पांच सौ रुपए बराए निसार
बहरे दावत की भेजे सात हज़ार
टट्टियां ख़स की नस्ब हर्जा थीं।
चश्मे गर्मी की वह तमाशा थीं।।

स्टीमर की यात्रा के बारे में लिखा है—

रहे उन्नीस दिन जहाज़ पर हम
क्या कहें ग़म से क्या हुआ आलम
तारे मिश्तर सी हो गयी थी रगें
पांव मुमकिन न था ज़मीं पर जमें
हुआ दौराने सर मुझे इतना
चर्ख़ फिरता है रात दिन जितना।

फ़ोर्ट विलियम के क़ैदख़ाने में शाह ने लिखा—

यह अहवाले आज़ा हैं जैसे कवाब
न ज़ुल्फ़ों में बल है न वो पेचो ताब
न चेहरे का वो ढब न वो दिल का हाल
हरेक बाल है जानों तन को वबाल
हरेक रोंयटा मिस्ले अर्रा है तेज़
न है जाये मुन्दन[1] न पाये गुरेज़।

× × ×

१. ठहरने की जगह।

फिर उस पर गज़ब चार सन्डास हैं
कि मुझ दिल जले के वो सब पास हैं
तपिश में जो होती है बरसात की
यह घुट्टस जो होती है हर रात की
उभरती है हर इत्रदां की जो बू
कि जिस तरह मिर्चों की हो तुन्द खू
सुलगता है उससे दिमाग़े ज़ईफ़
हुआ जाता है और भी दिल नहीफ़।

× × ×

वो मच्छड़ वो मच्छड़ गज़ब अल अमां
हरेक रोंगटे में है जिनकी ज़ुबां
उठा हाथ मच्छड़ हिलाने को गर
चिभोया वहीं पहले ही नेश्तर।

× × ×

वो दौड़े बदन में वो ख़ारिश का ज़ोर
वो खटमल की उल्फ़त की जैसे चकोर।

× × ×

न खाने का असबाब है कुछ नसीब
न पानी का है ज़िक्र लब के क़रीब।

फुटकर

१. ऐ परीज़ादों तुम्हारी आग ने फूंका यह घर
काफ़ से ताकाफ़ शुहरा और फ़साना हो गया।

२. यही तशवीश शबेरोज़ है बंगाले में
लखनऊ फिर भी दिखाएगा मुक़द्दर मेरा।

३. यों तो शाहाने जहां पर है पड़ा वक्त मगर
ख़त्म है 'अख़्तरे' बेकस पे जफ़ाये ग़ुरबत।

४. क़ैद होने से कहीं बूए रियासत जायेगी
लाख गर्दिश आसमां को हो ज़मीं होता नहीं।

५. सख़ावत क्या करूंगा दाग़हाये जिस्मे उरियां से
ख़ज़ाने में वो मुहरे जमां हैं जो बँट नहीं सकतीं।
तवक़्क़ो सुबह होने की किसे होती है फ़ुरक़त में
वह राहें हिज्र की हैं ऐ ख़ुदा जो कट नहीं सकतीं।

पहला दीवान से—

१. इलाही इश्क़ तेरा मेरे दिल से दूर न होगा
गुनहगार हूं पर अब क़सूर न होगा।
तू ऐसी शमा है तेरा जमाल गर नज़र आये
चिराग़े ख़ाना का हरगिज़ वहां पे नूर न होगा।
करिश्मे लाख बदल कर दिखाए वह रुख़े रंगी
तेरे नज़ारे के क़ाबिल जमाले हूर न होगा।
लबाये[1] हम्द[2] का साया जो चाहता है तू अख़्तर
तो सर पर साये बाले हुमा[3] ज़रूर न होगा।

२. थे शबे तार के मानिन्द हमारे अहबाब
छुप गए बादे फ़ना आँख से सारे अहबाब।
वह वतन याद है ग़ुरबत में वह सारे अहबाब
हाय कब मुझसे मिलेंगे मेरे प्यारे अहबाब।
महरे ताबां वह है तो किरन उसके अज़ीज़
माहरू है वह परीरु तो सितारे अहबाब।
चश्म होकर हमा तन मूए बदन[4] रोते हैं
जब निहां होते हैं नज़रों से हमारे अहबाब।
महरुख़ों आन के समझाओ परेशां है बहुत
अख़तरे ज़ार ने आते ही पुकारे अहबाब।

३. यह शमा नहीं है कदे जानाना है उसका।
दिल सूरते परवाना है दीवाना है उसका॥

१. माला २. भगवान की प्रशंसा ३. एक चिड़िया जिसकी छाया पड़ने से राज्य मिलता है। ४. बदन के बाल।

उलफत में परीकी उसे दीवाना है उसका।
दिल मश्के तसव्वर से परीख़ाना है उसका ।।
बेकल है शबे हिज्र में सब मेरे अहिब्बा।
दुश्मन जो मेरे ख़्वाब का अफ़साना है उसका ।।
क्या फ़िक्रे जमाले रुखे रौशन है समाई।
अख़्तर तेरा हर शेर तो परवाना है उसका ।।

४. दारेफ़ानी[1] में इश्के हक़ बाक़ी
उसके नामों का है सबक़ बाक़ी।
पान खाकर जमाई है मिस्सी
सरे शब है मगर शफ़क़ बाक़ी।

५. गेसूपा परीरु के रसाई है किसी की
सर पर ये बला आज बुलाई है किसी की।
आईनए आरिज़[2] पे फिसल जाती हैं नजरें
यह मेरा सलीक़ा वह सफ़ाई है किसी की।

६. तसव्वरी[3] है हमारी हयात इतनी है
तमाम हो न उधर मुंह से बात इतनी है।
दुई को दूर करोगे तो एक पाओगे
वह लाशरीक़ है, बस उसकी ज़ात इतनी है।
बचाये कश्तिये इसियां को नाखुदाए जहां
हमारी आरज़ू बहरे नजात इतनी है।
मियादे[4] नालये दिलसे सियाह अख़्तर है
हमारे सफ़ये दीवां में रात इतनी है।

दीवाने अख़्तर–[5]

१. रंगे गुले गुलशन को कभी याद न करना
ऐ मुर्ग़े क़फस शिकवए बेदाद न करना।

१. मिटने वाली दुनियां। २. गाल ३. ख़्याली ४. रोशनाई ५. तीसरे दफ़्तर से उद्धृत।

ऐ बादे सबा तुझको क़सम दश्ते[१] जुनूं की
खाक़े दिले पज़मुर्दा को बरबाद न करना।
गुलशन में सरेगुल से न छू जायं तेरे पांव
यह बे-अदबी बुलबुले नाशाद न करना।
दिल लेके मेरा कहने लगा वह शहे ख़ूबी
उजड़ा हुआ किश्वर[२] है ये आबाद न करना।
ऐ दिल ये नसीहत किसी नासेह की है सुनले
भूले जो उसे उसको भी तू याद न करना।

२. बैठा जाता है दिल ऐ इश्क़े मसीहा उठ जा
तूने क्यों नाम ये अग़यार छुपाया उठ जा।
मैं न आऊंगा कभी जान तेरी महफ़िल में
रोज कहता है भरी बज़्म में उठ जा उठ जा।
सीधा चल सैर गुलिस्तां को तू ऐ सर्वे[३] चमन
क़ैद बाला से हुआ दिल तहे बाला उठ जा।
मुझसे क्या पूछते हो जाऊं न जाऊं अख़्तर
न कहेगा कोई मजनूं अरी लैला उठ जा।

३. रुख़ अपना हमको दिखलाया तो होता
ज़रा सूरज को शर्माया तो होता।
मेरे दिल का पता मिलता उन्हीं से
ज़रा ज़ुल्फों को सुलझाया तो होता।
मुझी को वायज़ा पंदो नसीहत
कभी उसको भी समझाया तो होता।
जो अपना जानकर मारा गिला क्या
मगर मरक़द[४] पर तू आया तो होता।
तुझे खुल जाती अख़्तर सोज़िशे इश्क़
कोई गुल हाथ पर खाया तो होता।

१. जंगल २. मुल्क। ३. सरो ४. क़ब्र।

४. मुहब्बत का बंदा बना लीजिएगा
मेरा दिल भी नामे ख़ुदा लीजिएगा
दिलो जानो रुहो जिगर तन है हाज़िर
बता दीजिए हमसे क्या लीजिएगा।
अभी इम्तहाने मुहब्बत न कीजै
कभी तेग़ से आज़मा लीजिएगा।
मुझे क़त्ल कीजै ये है सुर्ख़रूई
मेरे ख़ूं से मेंहदी लगा लीजिएगा।
ख़फ़ा कीजिए अब न अख़्तर को साहब
यह दिल लीजिये और क्या लीजियेगा।

दीवाने सोम--[1]

१. रविशें छानेंगी गुलशन में सबा मेरे बाद
बुलबुलें भूलेंगी फूलों की दुआ मेरे बाद।
सर्व[2] गड़ गड़ गए फ़व्वारे लहू रोते हैं
ख़ाक उड़ी बाग में क्या क्या न हुआ मेरे बाद।
क़त्ल क्यों करते हैं वो दस्ते निगारी से मुझे
तेज़ होगा न कभी रंगे हिना मेरे बाद।
याद करना मुझे ऐ रश्को गुलो सर्वे[3] चमन
बूए गुल से हो जिस वक्त जुदा मेरे बाद।
महफ़िले मेहर में क्या कोई चमक जाएगा
किसी अख़्तर का लगेगा न पता मेरे बाद।

२. लगाया दाग़ रुख़सारो की ज़ौ[4] ने माहेताबां को
सुहा[5] को बद्र[6] को नाहिद[7] को मेहरे[8] दुरख़्शां को।
शिकस्ता अहद तेरी बेवफ़ाई ने भुलाया है
वफ़ा को, क़ौल को, इक़रार को, वादे को, पैमां को।[9]

१. तीसरा २. पेड़ ३. पेड़ ४. प्रकाश ५. सितारा ६. चन्द्रमा ७. तारा ८. सूर्य ९. वादा।

तेरे क़द्देरुख़ो लब आरिज़े तर[1] ने है शरमाया
चमन को, सर्व को, लाले को, गुल को, बाग़ो बुस्तां को।
किया सरसब्ज़ औ शादाब अच्छे रुए रंगी ने
कली को, फूल को, पत्तों को, शाखों को, गुलिस्तां को।
तेरी उलफ़त ने सबको एकसाँ करके दिखाया है
अमीरों को, फ़क़ीरों को, हशमख़ाहों को, सुलतां को।
तेरे हुस्ने क़यामत ख़ेज़ ने बिलकुल मिटाया है
जमाले मुस्तरी को, ख़ुर[2] को, अख़्तर माहेताबां को।

क़ुल्लियाते अख़्तर—

१. सदमा न पहुंचे कोई मेरे जिस्मे ज़ार पर
आहिस्ता फूल डालना मेरी मज़ार पर।
लागर वह हूं समाता नहीं चश्मे यार में
मजनूं को भी हसद है मेरे जिस्मे ज़ार पर।
हरचन्द ख़ाक मैं था मगर ता फ़लक गया
धोखा है आसमान का मेरे ग़ुबार पर।
खटका ख़िज़ां का बाग़े जहां में लगा रहा
देखा कभी न गुलशने दुनियां बहार पर।
क्यों तूल इस ग़ज़ल को दिया बुत ख़फ़ा हुए
अख़्तर ख़ुदा का शुक्र है इस इख़तिसार[3] पर।

२. अनजुमन में भी हमीं थे और हमीं ख़िलवत में थे
या वही हम हैं कि अब बदतर हैं नामरहम[4] से हम।
रूह को भी सिलसिला इस क़ैद का बाक़ी रहा
मर के भी छूटे न दामे गेसुये पुरख़म से हम।
अबरूये दिलदार का मारा कभी बचता नहीं
अख़्तर अब बच जांय शायद क़ातिले आलम से हम।

३. उड़े बाग़ से बाग़बां कैसे कैसे
ख़िज़ां हो गये बोसतां कैसे कैसे।

१. रसीले २. सूर्य ३. संक्षेप ४. ग़ैर।

खुदा के लिए अपनी जुल्फ़ें उठाओ
यहां क़ैद है बेजुबां कैसे कैसे।
बढ़ी ख़ाकसारी से इज़्ज़त बशर की
ज़मीं पै मिले आसमां कैसे कैसे।
वह चितवन, वह अबरू, वह क़द, याद सब ह
सुनाऊं मैं गुज़रे बयां कैसे कैसे।
रहा इश्क से नाम मजनूं का वरना
तहे ख़ाक़ में बेनिशां कैसे कैसे।
कलेजे में अख़्तर फफोले पड़े हैं
मेरे उठ गये क़द्रदां कैसे कैसे।

४. वस्ल हो अगयार को हिजरत में जां दे गम से हम।
क्या यही उम्मीद रखते थे तुम्हारे दम से हम॥
चेहरये अनवर तेरा देखा है यह मुमकिन नहीं।
आंख झपकाये फ़रोगे नय्यरे आज़म से हम॥
अंजुमन में भी हमीं थे और हमीं खिलवत में थे।
या वही हम हैं कि अब बदतर हैं नामरहम[1] से हम॥
रूह को भी सिलसिला इस क़ैद का बाक़ी रहा।
मर के भी फूटे न दामे गेसुये पुरख़म से हम॥
अबरुये दिलदार का मारा कभी बचता नहीं।
अख़्तर अब बच जांय शायद क़ातिले आलम से हम॥

५. गुञ्चये दिल खिले जो चाहो तुम।
गुलशने दहर[2] में सबा हो तुम॥
बेमुरव्वत हो बेवफ़ा हो तुम।
अपने मतलब के आशना हो तुम॥
कौन हो क्या हो क्या तुम्हें लिखें।
आदमी हो, परी हो या क्या हो तुम॥
यही आशिक़ का यास करते हैं।
क्यों जी क्यों दरपये जफ़ा हो तुम॥

१. ग़ैर २. संसार।

उसी अख़्तर के तुम हुए माशूक़ ।
हँसो बोलो उसी को चाहो तुम ॥

× × ×

नसीब फ़तह हो या हो मुझे शिकस्त अख़्तर ।
ख़ुदा बचाये हुआ सामना मुहब्बत का ॥

× × ×

हमारी मोमदिली का असर नुमायां हो ।
बुतों के दिल को ख़ुदा दे मज़ा मुहब्बत का ॥

दो रुबाइयात—

नादां है, ग़मे फ़िराक़ से रोता है ।
अश्कों से अबस हिज्र[1] में मुंह धोता है ।
किससे था विसाल[2] अब किससे हिज्र ।
मंज़ूर ख़ुदा जो है, वही होता है ॥

और हम भी इस ग्रन्थ को, बादशाह की इन्हीं पंक्तियों में दुहरा कर समाप्त करते हैं :—

मंज़ूर ख़ुदा जो है, वही होता है ।

१. जुदाई २. मिलन ।

सहायक पुस्तकों की सूची

वर्षों के अध्ययन तथा परिश्रम से प्रस्तुत इस पुस्तक के लिखने में जिन पुस्तकों, सनद, मूल पत्र, दस्तावेज़ आदि से सहायता ली गयी है, उनकी सूची काफ़ी बड़ी है। सामग्री देने वाले कुछ कृपालु अपना नाम भी अज्ञात रखना चाहते हैं। अधिकांश सहायक ग्रन्थ अथवा काग़ज़ात फ़ारसी अथवा ऐसी कठिन उर्दू में हैं कि लेखक स्वयं उनको पढ़ नहीं सकता था। अतएव बहुत सी सामग्री मित्रों ने अनुवाद करके हमारे पास भेज दी। पुस्तक में स्थान-स्थान पर जिन ग्रन्थों का उद्धरण दिया गया है, वे प्राय: वही ग्रन्थ हैं जिनको मैंने या तो स्वयं पढ़ा, या अपने सामने पढ़वाकर सुना है। उद्धरण का विस्तार कम करने के लिए केवल ग्रन्थ का हवाला या लेखक का नाम दे दिया गया है। पृष्ठ अथवा अध्याय संख्या छोड़ दी गयी है। विशेष स्थानों पर यह सब भी दे दिया गया है।

आगे दी गयी सूची में उन बहुत सी पुस्तकों का नाम नहीं दिया गया है जो आजकल इतिहास प्रेमी पाठकों के सामने प्राय: आया करती हैं, सरलता से उपलब्ध हैं तथा जिनके द्वारा सन् १८२० से १८६० के युग के इतिहास की सामान्यत: अच्छी जानकारी हो जाती है। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका उद्धरण तो है पर उनकी मूल पुस्तक मैं नहीं पढ़ सका पर उनका हवाला कई स्थानों पर मिला, जैसे मौलवी मसीहुद्दीन की पुस्तक। कुछ सामग्री मुझे लन्दन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा ब्रिटिश म्यूज़ियम के वाचनालय में भी देखने को मिली थी। "ब्रिटिश पार्लमेन्टरी पेपर्स" कुछ मैंने लन्दन में देखे थे, कुछ भारत में प्राप्त पुस्तकों के उद्धरणों से दिया गया है।

कुछ सामग्री उत्तर प्रदेश के एक-दो विद्वानों के पास हैं। पर उन्हें पढ़ने की तो बात दूर रही, देखने की भी अनुमति नहीं मिली।

—लेखक

संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक
१	सवानेहाते सलातीन अवध अथवा कैसरुत्तवारीख़ (दो भाग)	सय्यद कमालुद्दीन हैदर (उर्फ़) सय्यद मुहम्मद मीर ज़ायर
२	अफ़ज़लुत्-तवारीख	मु० रामसहाय तमन्ना
३	तारीख़े अवध	नजमुल ग़नी ख़ाँ रामपुरी
४	तवारीख़े नादिरुल अस्र	मुन्शी नवल किशोर
५	तवारीख़ मय तसावीर (ब्रिटिश पक्ष की पुस्तक)	गवर्नमेंट पेंशनर दारोग़ा हाजी अब्बास अली
६	गुलदस्तये अवध	मुंशी बुलाक़ीदास सुपुत्र मुंशी जुम्मन लाल
७	महारबये ग़दर	मु० मेढ़ी लाल सुपुत्र मु० शिव प्रसाद
८	सुलतानुत्-तवारीख़	महाराजा रतनसिंह
९	ज़ुबदतुल कवायफ़	महाराजा जय गोपाल (वाजिदअली शाह के कर्मचारी)
१०	असरारे-वाजिदी	ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी
११	मुरक्क़ेय ख़ुसरवी	अज़मल अली काकोरवी
१२	अफ़सानये लखनऊ	आग़ा हज्जू शरफ़

प्रकाशक या मुद्रक	प्रकाशन तिथि या ई० सन्	कहाँ से प्राप्त हो सकती हैं
महाराजा बलरामपुर द्वारा नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित	१८९६	उत्तर प्रदेश स्वतंत्रता संग्राम इतिहास पुस्तकालय, लखनऊ
मतबये तमन्नाई लखनऊ	३४६ पृष्ठ (१८७९ ई०)	रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर
मतलउल उलूम प्रेस, मुरादाबाद	१९० पृष्ठ १९०५	वही
नवल किशोर प्रेस, लखनऊ	११७५ पृष्ठ (१८६३ ई०)	
वही	९६ पृष्ठ १८८०	वही
म्योर प्रेस, दिल्ली		वही
गुलशने अवध प्रेस, लखनऊ	१८७१	वही
		लखनऊ विश्वविद्यालय
		वही
		वही
हस्तलिखित		मक़बूल आलम लाइब्रेरी, पटना
"		लखनऊ विश्वविद्यालय

संख्या	पुस्तक का नाम	लेखक
१३	आफ़ताबे अवध	मिर्ज़ा मुहम्मद तक़ी
१४	तवारीख़े इक़्तेदारिया	इक़्तेदारुद्दौला (वाजिदअली शाह के फूफा)
१५	मिरातुल औज़ा	सम्पादक—महबूब काज़िम अली
१६	हुस्ने-अख़तर	दाहिए अदीब लखनऊ प्रकाशक-महबूब काज़िम अली
१७	फ़सानये इबरत	रजब अली बेग सरूर
१८	तारीख़े मुमताज़	सम्पादक—डा० मुहम्मद बाक़िर
१९	बेगमाते अवध के ख़ुतूत	सम्पादक—मुफ़्ती इन्तज़ामुल्ला शहाबी
२०	Dacoities in Excelsis or Spoliation of Oude	Major Bird
२१	Journey through the Kingdom of Oude, 1849-50 (दो भाग)	Major Gen. Sir W. H. Sleeman K. C. B.
२२	Blue Book बादशाह का कम्पनी को उत्तर	

प्रकाशक या मुद्रक	प्रकाशन तिथि या ई० सन्	कहाँ से प्राप्त हो सकती है
हस्तलिखित		लखनऊ विश्वविद्यालय
		निजाम लाइब्रेरी, हैदराबाद
केसर दास सेठ के प्रबन्ध से नवलकिशोर प्रेस में छपी	पृष्ठ १४९ दिसम्बर १९२१	हलीम मुस्लिम कालेज, कानपुर
प्रकाशक सय्यद मसूऊद हसन रिज़वी अदीब	लखनऊ १९५७	किताब नगर, दीनदयाल रोड, लखनऊ
उर्दू मरकज़, लाहौर	१९५२	स्वतंत्रता संग्राम यू० पी० पुस्तकालय,
	देहली	वही
Pub. J. R. Taylor, Chancery Lane London.	१८५७	पबलिक लाइब्रेरी, लखनऊ
Pub. Richard Bentley, London Publisher-in-ordinary to Her Majesty.		वही
	१८५६	वही

शब्दानुक्रमणिका

आ

घ

च

भ

य